भौतिक विज्ञान

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिए पाठ्य पुस्तक

संपादकीय समिति

लेखक (अंग्रेजी संस्करण)

प्रो० डी० डी० पन्त
प्रो० बी० रामचन्द्र राव
प्रो० एस० के० जोशी
प्रो० एच० एस० हंस
डा० के० डी० अभ्यंकर
डा० ए० बी० पाटनकर
श्री वी० एस० मूर्त्ती
श्री यू० एस० कुशवाहा
श्री एम० सी० दुर्गापाल
प्रो० बी० शरण
डा० एस० जी० गगोली

डी० डी० पन्त (मुख्य संपादक)

हिन्दी अनुवादक

डा० डी० पी० खण्डेलवाल
जयपुर विश्वविद्यालय
जयपुर

श्री एस० सी० सक्सेना
उप निदेशक
हिन्दी निदेशालय
नई दिल्ली

डा० आर० एन० राय
10 ए/4 शक्ति नगर
नई दिल्ली

श्री राजेन्द्र जोशी
(सपादक, अनूदित संस्करण)

भौतिक विज्ञान

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिए पाठ्यपुस्तक

कक्षा XI-XII

भाग 2

(प्रथम खण्ड)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक 10+2 शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत शैक्षिक धारा की 12वीं कक्षा के लिए भौतिकी के एक उपसत्रीय पाठ्यक्रम के लिए निर्दिष्ट है। अगले उपसत्र के लिए इस पुस्तक का दूसरा खण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित किया जायेगा।

भौतिकी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए विषयानुसार दृष्टिकोण, वैचारिक स्पष्टता तथा उपयुक्त ज्ञान प्रदान करना इस पुस्तक की मुख्य विशेषता है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक इस उद्देश्य के लिए लाभकारी सिद्ध होगी।

मैं सम्पादकीय समिति के सदस्यों, लेखकों एवं संपादकों का आभारी हूँ जिन्होंने इस पांडुलिपि को तैयार किया तथा इसके प्रकाशित होने तक संपूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। अल्पकाल मे अथक परिश्रम द्वारा इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए मै आप सबका आभारी हूँ।

मैं श्री राजेन्द्र जोशी, श्री गंगासिह रौतेला (शोध छात्र), श्री मनमोहन सिंह सजवान (शोध छात्र) तथा श्री धर्म नारायण वैद्य का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस अनुदित संस्करण की पांडुलिपि का संपादन करने एवं त्रुटियों का संशोधन करने में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

पुस्तक के सुधार हेतु सभी सुझावों का हम स्वागत करेंगे।

शिव० के० मित्र
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्

मार्च, 1978
नई दिल्ली

विषय-सूची

अध्याय 11

ऊष्मागतिकी (Thermodynamics)

'ऊष्मा' शीर्षक के अंतर्गत हम गैसों के गुण, अवस्था परिवर्तन, कैलॉरीमापन आदि से परिचित हो चुके है। अभी हमें अनेक अन्य बातों का अध्ययन करना है, जिनमें दो हैं : ऊष्मा और यांत्रिक ऊर्जा का संबंध, और पिंडों द्वारा ऊष्मा का विकिरण। इनका विस्तृत विश्लेषण इस स्तर पर अभीष्ट नहीं है, इसलिए हम केवल कुछ सामान्य सिद्धांतों का ही अध्ययन करेंगे और कुछ महत्वपूर्ण परिस्थितियों पर इन सिद्धांतों का अनुप्रयोग भी करेंगे।

11.1 ऊष्मा : ऊष्मागतिकी का शून्यवाँ नियम (Heat : Zeroth Law of Thermodynamics)

दो पिंडों A और B पर विचार कीजिए। मान लीजिए A ऐसा है कि छूने पर हमारे हाथ को ठंडा लगे और B ऐसा कि हाथ को गर्म लगे। तब हम कहते है कि पिंड B का ताप पिंड A के ताप से उच्चतर है। अब दोनों को परस्पर सम्पर्क में रखिए। कुछ समय उपरान्त हम देखेंगे कि A और B हमारे हाथ को बराबर ऊष्णता का अनुभव देंगे, और तब हम कहते हैं कि ये दोनों परस्पर तापीय संतुलन में हैं।

वस्तुओं के तापीय संतुलन के लिए एक महत्वपूर्ण सार्व नियम है। मान लीजिए वस्तु A किसी वस्तु C से तापीय संतुलन में है और वस्तु B भी उसी वस्तु C से तापीय संतुलन में है; तो वस्तु A सदैव ही वस्तु B से तापीय संतुलन में होगी। इस कथन को ऊष्मागतिकी का शून्यवाँ नियम कहते हैं। इस नियम के कारण हम वस्तुओं A,B, C की तापीय अवस्था को व्यक्त करने के लिए एक मापांक दे सकते हैं, जिसे इनका ताप कहा जाता है। अन्य पिंडों को इससे अधिक या कम ताप का कहने का आधार ऊपर बता ही चुके हैं। तापमापन का एक निश्चित पैमाना बनाना फिर अगला कदम होता है।

11.2 ऊष्मीय ऊर्जा (Heat Energy)

एक ठंडे पानी से भरे बर्तन में किसी गर्म पिंड को डालिए। पानी गर्म होता जायेगा और पिंड ठंडा, जब तक कि दोनों के ताप बराबर न हो जाएं। इस प्रक्रिया में गर्म वस्तु से ठंडी वस्तु की ओर ऊर्जा का प्रवाह होता है। दो गेंदों की टक्कर में भी ऊर्जा का आदान-प्रदान होता है। किन्तु जहाँ यह आदान-प्रदान पिंडों के तापांतर के कारण होता है वहाँ स्थानान्तरित ऊर्जा को ऊष्मीय ऊर्जा कहा जाता है, या केवल ऊष्मा ही। पानी और पिंड के उपरोक्त उदाहरण में जब तक दोनों पर अलग-अलग विचार करते हैं, ऊर्जा का ऊष्मीय स्वरूप प्रकट नहीं होता। यह स्वरूप

तभी प्रकट होता है जब सम्पर्क में आने पर ऊर्जा एक से दूसरे में प्रवाहित होती है। जब दोनों समान ताप ग्रहण कर लेते हैं तो ऊष्मीय ऊर्जा के प्रवाह की दर शून्य हो जाती है, और दोनों निकायों को तापीय संतुलन मे कहा जाता है। ऊष्मागतिकी में रूद्धोष्म प्रक्रिया उसे कहते हैं जिसमे ऊष्मीय स्वरूप मे ऊर्जा का स्थानांतरण नहीं होता, यद्यपि हम देखेंगे कि इस क्रिया मे यांत्रिक कार्य के रूप में ऊर्जा का स्थानान्तरण होता है।

प्रथा के अनुसार किसी निकाय को ऊष्मा प्राप्त हो तो ऊष्मा को धनात्मक (+Q) मानते है, जबकि निकाय से ऊष्मा अन्यत्र जाए तो उसे ऋणात्मक (−Q) कहते हैं। इस प्रकार + या − चिह्न विचाराधीन निकाय पर निर्भर करता है।

ऊष्मीय स्वरूप में ऊर्जा को मापने का मात्रक कुछ समय पहले तक 'कैलॉरी' था। यह वह ऊर्जा है जो 1 ग्राम पानी के ताप को 1° सेल्सियस बढ़ा दे।* किन्तु अब अंतर्राष्ट्रीय सहमति यह हो गई है कि सभी ऊर्जा परिवर्तनों को एक ही ऊर्जा मात्रक जूल (J) में व्यक्त किया जाए। एक न्यूटन बल द्वारा किसी वस्तु को बल की दिशा में एक मीटर चलाने में कृत कार्य को एक जूल कहते हैं। कैलॉरी तथा जूल का संबंध है : 1 कैलॉरी=4.18 जूल। यदि किसी निकाय को 5 कैलॉरी ऊष्मा दी गई, तो Q=+20.9 जूल।

11.3 आयतन परिवर्तन में किया गया कार्य
(Workdone in Volume Change)

चित्र 11.1 मे एक सिलिंडर तथा एक चल्य पिस्टन है। सिलिंडर में कोई गैस भरी है। मान लीजिए गैस का दाब P है, और सिलिंडर का काट-क्षेत्रफल A है। तो गैस द्वारा पिस्टन पर लगाया हुआ बल P A होगा। यदि इस बल की दिशा में पिस्टन अल्प दूरी dl चले, तो गैस द्वारा पिस्टन पर कृत कार्य dW इस प्रकार होगा :

$$dW = P\,A\,dl$$
$$= PdV$$
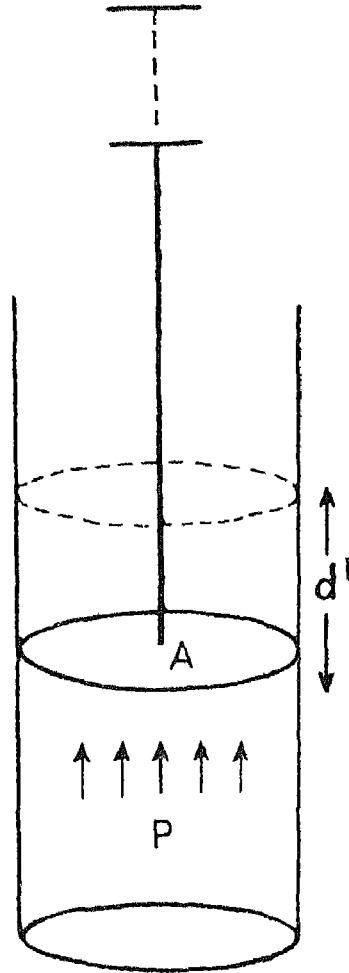
चित्र 11.1 : किसी सिलिंडर के भीतर गैस का प्रसार

जिसमे dV गैस के आयतन में वृद्धि A dl के लिए है। यदि पिस्टन इतना चले कि गैस का आयतन प्रारंभिक मान V_1 से बढ़कर अंतिम मान V_f पर पहुँच जाए, तो इस क्रिया में गैस द्वारा कृत कार्य W का मान होगा।

$$W = \int_{V_1}^{V_f} PdV \qquad ...(11.1)$$

* वास्तव मे 14.5° से. 15.5° से. तक भिन्न-भिन्न प्रारंभिक ताप से पानी को 1° से. गर्म करने के लिए ऊर्जा की विभिन्न मात्राएँ चाहिए।

इसमें हम मानकर चल रहे है कि क्रिया इतनी धीरे सम्पादित हुई है कि गैस के भीतर का ताप सदा स्थिर बना रहा है।

इस कार्य को घनात्मक कहें या ऋणात्मक ? इसके लिए यह प्रथा अपनाई जाती है : विचाराधीन निकाय द्वारा किया गया कार्य धनात्मक और विचाराधीन निकाय पर किया गया कार्य ऋणात्मक कहा जाता है। ऊष्मागतिकी में कोई पिंड या पिंड-समूह, जिन पर विचार करते हैं, विचाराधीन निकाय कहा जाता है, और उससे बाह्य जो कुछ हो उसे वातावरण या बाह्य तंत्र कहा जाता है। उपरोक्त उदाहरण में गैस विचाराधीन निकाय है, और सिलिंडर, पिस्टन तथा बाहरी वायुमंडल वातावरण है।

यह भी हो सकता है कि गैस का विस्तार न होकर संपीडन हो। यदि पिस्टन पर बाह्य दाब P' निरन्तर गैस के दाब P से जरा सा अधिक बनाए रखें तो गैस का संपीडन होगा। इस दशा में भी समीकरण (11.1) ही लागू होगा, किन्तु W का मान ऋणात्मक आएगा, क्योंकि $V_f < V_i$। ध्यान दें कि समीकरण में P' नहीं प्रयुक्त होगा, P (गैस का दाब) ही प्रयुक्त होगा, क्योंकि गैस ही हमारा विचाराधीन निकाय है।

यद्यपि समीकरण (11.1) गैस के उदाहरण से प्राप्त किया गया है, यह ठोस तथा द्रव के लिए भी सार्व रूप से लागू होता है। यह और बात है कि उनके आयतन परिवर्तन अल्प होने के कारण कार्य W का मान सामान्यतः नगण्य होता है।

उपरोक्त विचारों के अनुप्रयोग का एक उदाहरण नीचे दिया है।

उदाहरण 11.1 एक आदर्श गैस को स्थिर ताप 300 केल्विन पर आयतन 4 लीटर से 1 लीटर तक संपीडित किया जाता है। गैस की मात्रा 3 मोल है। संपीडन में किए गए कार्य की गणना कीजिए।

$$W = \int_{V_i}^{V_f} P dV$$

आदर्श गस के लिए $PV = nRT$, जिसमें R गैस का मोलीय स्थिरांक है और n मोल-संख्या है। अतः

$$W = \int_{V_i}^{V_f} \frac{nRT}{V} dV = nRT \int_{V_i}^{V_f} \frac{dV}{V}$$

$$= nRT \log_e \frac{V_f}{V_i}$$

क्योंकि परिवर्तन स्थिर ताप पर है। अब $n=3$, $R=8.31$ जूल/मोल डिग्री केल्विन $T=300$ केल्विन और $\log_e x = 2.30 \log_{10} x$ इसलिए

$$W = 3 \times 8{\cdot}31 \times 300 \times 2.30 \log_{10}(\tfrac{1}{4}) \text{ जूल}$$

$$= -10320 \text{ जूल}$$

ऋण (—) चिह्न बताता है कि गैस पर कार्य हुआ है।

इस उदाहरण में हमने P और V के बीच के संबंध के लिए समीकरण $PV=nRT$ का उपयोग किया। यदि P और V के बीच संबंध ज्ञात न हो तो यह विश्लेषिक विधि काम नहीं देती। उस दशा में ग्राफीय विधि काम आती है, जिसका हम नीचे वर्णन कर रहे हैं।

सूचक आरेख (Indicator Diagram) **:** किसी निकाय की कल्पना कीजिए जिसमें निकाय का आयतन V और दाब P हो; उदाहरणार्थ चित्र 11.1 में सिलिंडर के भीतर पिस्टन द्वारा बद्ध गैस। मान लीजिए निकाय का आयतन क्रमशः बदलता है, तो उसके साथ दाब के परिवर्तन को हम एक आरेख में प्रदर्शित कर सकते हैं, जिसमें V को X– अक्ष पर और P को Y– अक्ष पर बताया गया हो। चित्र 11.2 में ऐसा एक आरेख दिखाया गया है। गैस आदर्श हो या न हो, और आयतन परिवर्तन
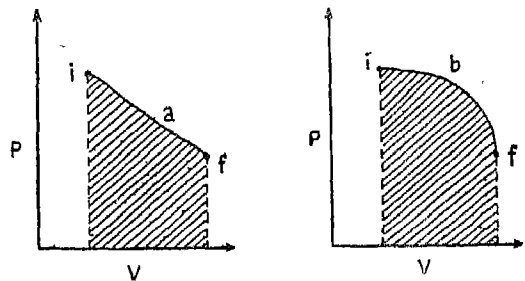
चित्र 11.2 : संसूचक आरेख

रुद्धोष्म या स्थिरताप या किसी भी दशा के अंतर्गत किया गया हो, यह आरेख V के साथ P के वास्तविक परिवर्तन को व्यक्त करता है । इसे P-V आरेख या सूचक आरेख कहते हैं ।

सूचक आरेख का महत्व यह है कि प्रारंभिक और अंतिम आयतन या दाब दिए हों तो आरेख के तत्संगत बिंदुओं से X– अक्ष पर लम्ब डालने पर वक्र के उस खण्ड तथा X– अक्ष के बीच जो क्षेत्रफल आता है वह इस परिवर्तन में हुए कार्य $\int P.dV$ के बराबर होता है ।

11.4 कार्य और ऊष्मा (Work and Heat)

हम कह चुके है कि ऊष्मा और कार्य दोनों को एक ही मात्रक (जूल) में मापा जाता है । ऊष्मा भी यांत्रिक कार्य की भांति ऊर्जा का ही एक स्वरूप है और इन दो स्वरूपों में परस्पर तुल्यता का संबंध है, यह सबसे पहले जूल ने स्थापित किया था । उसका प्रयोग इस प्रकार था ।

बहुत से पैडल लगी हुई एक मथनी को पानी से भरे एक सिलिंडर में लगाया गया । फिर चित्र 11.3 की भाँति एक घिरनी तथा डोरी द्वारा इस मथनी को घुमाया गया ।
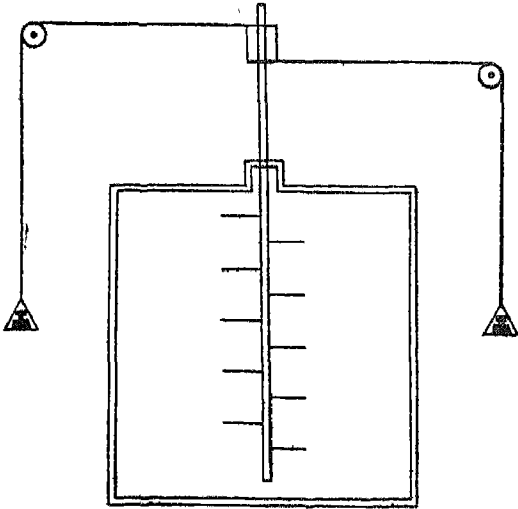
चित्र 11.3 : जूल के प्रयोग का उपकरण

इस क्रिया में पानी गरम हुआ । पानी ने कितनी ऊष्मा प्राप्त की यह तो पानी के द्रव्यमान तथा तापवृद्धि से ज्ञात हो गया, और मथनी को घुमाने से कितना कार्य किया गया यह धागे पर लटके भार तथा उसके गिरने की दूरी से ज्ञात किया गया ।

विकिरण से ऊष्मा की कितनी क्षति हुई, घर्षण में कितना कार्य व्यय हुआ, तथा अन्य बातों के संशोधन लगाने के बाद जूल ने यह पाया कि किए गए कार्य W तथा उत्पन्न ऊष्मा H में निश्चित संबंध है, जिसे उसने इस प्रकार व्यक्त किया

$$W = JH \qquad \ldots(11.2)$$

जिसमें W जूल में है, H कैलॉरी में, और J एक स्थिरांक है, जिसे जूल स्थिरांक अथवा ऊष्मा का यांत्रिक तुल्यांक कहते हैं । प्रयोगों से J का मान 4.18 जूल प्रति कैलॉरी प्राप्त होता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि 1 ग्राम पानी को 14.5° से० से 15.5° से० तक गर्म करने के लिए 4.18 जूल ऊष्मा चाहिए ।

समीकरण (11.2) का आशय यह है कि यदि W जूल कार्य को ऊष्मा में परिणत करें तो W/J कैलॉरी ऊष्मा प्राप्त होगी, और यदि H कैलॉरी ऊष्मा को कार्य में परिणत करें तो JH जूल कार्य प्राप्त होगा । किन्तु ये परिवर्तन हो सकते हैं या नहीं इसके बारे में यह समीकरण कुछ नहीं कहता । यह तो हम सामान्य अनुभव से जानते हैं कि यांत्रिक ऊर्जा को पूर्णत: ऊष्मीय स्वरूप में बदला जा सकता है (यथा घर्षण में) । किंतु कोई निकाय किसी स्रोत से ऊष्मा लेकर पूर्णत: उसको कार्य में परिणत कर सकेगा या नहीं, इस पर हम बाद में विवेचना करेंगे ।

11.5 आंतरिक ऊर्जा : ऊष्मागतिकी का प्रथम नियम (Internal Energy : First Law of Thermodynamics)

हम अब जानते हैं कि कार्य और ऊष्मा दोनों ही ऊर्जा के विभिन्न स्वरूप हैं और इनमें परस्पर रूपान्तर हो सकता है । एक सिलिण्डर में चल्य पिस्टन द्वारा बद्ध गैस पर विचार कीजिए । पिस्टन पर बाह्य दाब डालकर गैस का संपीडन करने में गैस पर कार्य किया जाता है
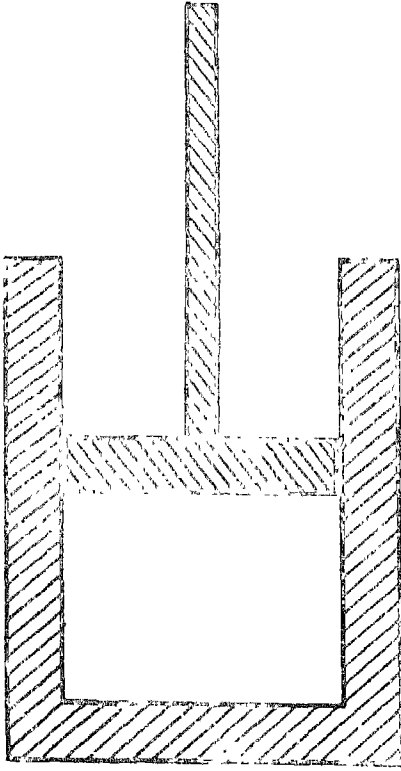
चित्र 11.4 : स्थिरोष्म प्रयोग के लिए उपकरण

और इस प्रक्रिया में उसका ताप बढ़ता है। यदि निकाय ऊष्मतः रोधित हो—अर्थात सिलिंडर की दीवारें तथा पिस्टन ऊष्मारोधी हों—तो ऊष्मा का स्थानान्तरण निकाय (गैस) मे या निकाय से नहीं होगा और संपीडन की यह प्रक्रिया रुद्धोष्म होगी (चित्र 11.4)। निकाय पर किया गया कार्य ऊर्जा के अन्य स्वरूप में परिणत हो जायेगा, जिसे हम निकाय की आंतरिक ऊर्जा कहते हैं। ऊर्जा संरक्षण के नियम को मानने के कारण आंतरिक ऊर्जा में वृद्धि को निकाय पर किए गए कार्य के बराबर मानना होगा। सूक्ष्मदर्शीय दृष्टि से विचार करें तो आंतरिक ऊर्जा निकाय के अणुओं की गतिज ऊर्जा तथा अणुओं के बीच परस्पर क्रिया से संबंधित स्थितिज ऊर्जा के रूप में होती है, गैस में सामान्यतः अणुओं की गतिज ऊर्जा ही आंतरिक ऊर्जा का प्रमुख अंग होती है।

कोई भी ऊष्मागतिकी निकाय एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता है तो उसकी आंतरिक ऊर्जा में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन अनेक प्रकार से किया जा सकता है, और प्रत्येक दशा मे हम किए गए कार्य W तथा स्थानांतरित ऊष्मा Q की गणना कर सकते हैं। प्रयोगों से सिद्ध होता है कि किसी निकाय को एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे ले जाने मे आतरिक ऊर्जा की वृद्धि केवल प्रारंभिक और अंतिम अवस्थाओं पर ही निर्भर करती है। आंतरिक ऊर्जा को U से व्यक्त करते है, और उपरोक्त कथन का अर्थ है कि यह राशि निकाय की अवस्था के लिए एकमानी फलन है।

रुद्धोष्म परिवर्तन मे $(Q=0)$ यदि निकाय पर किया गया कार्य $-W$ हो और आंतरिक ऊर्जा में वृद्धि $U_f - U_i$ हो, तो

$$-W = U_f - U_i \qquad \ldots(11.3)$$

मान लीजिए कोई गैस एक सिलिंडर में बन्द है, जिसकी दीवारे तथा पिस्टन तो ऊष्मारोधी है, किन्तु पेंदा सुचालक है (चित्र 11.5)। यदि पेंदे को किसी तप्त वस्तु के सम्पर्क में लाएं (यथा कोई ज्वालक) तो गैस उससे ऊष्मा की एक मात्रा Q प्राप्त करेगी। साथ ही गैस का ताप और दाब बढ़ेगा और फलतः उसका प्रसार होगा, जिसमे पिस्टन कुछ बाहर बढ़ेगा और गैस कुछ कार्य (W) बाह्य वातावरण पर करेगी। यदि इस प्रक्रिया मे गैस की आंतरिक ऊर्जा U_i से U_f हो जाए तो हमारी व्याख्या इस प्रकार होगी :

गैस द्वारा ऊष्मीय रूप में प्राप्त ऊर्जा $+Q$ है, जिसका एक भाग $+W$ बाह्य कार्य करने में लगा, तथा शेष भाग आंतरिक ऊर्जा में वृद्धि $U_f - U_i$ में लगा। ऊर्जा संरक्षण सिद्धांत के अनुसार*

$$Q = W + U_f - U_i \qquad \ldots(11.4)$$

* समीकरण (11.3) वास्तव में (11.4) का ही एक विशिष्ट रूप है, जब Q शून्य हो।
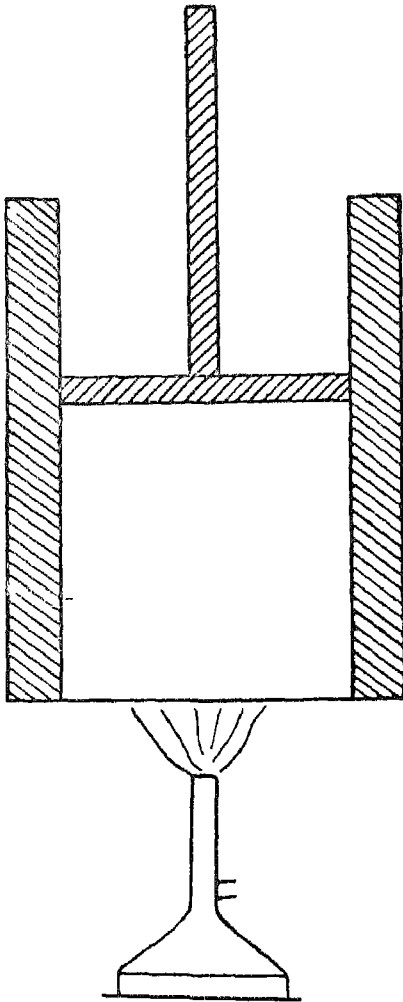
चित्र 11.5 : किसी सिलिंडर में बंद गैस द्वारा ऊष्मा ग्रहण करना

समीकरण (11.4) को ऊष्मागतिकी का प्रथम नियम कहते हैं। इसका वास्तविक आशय यह है कि इस समीकरण से प्राप्त $U_f—U_i$ अर्थात् आंतरिक ऊर्जा में परिवर्तन, निकाय की प्रारंभिक और अंतिम अवस्थाओं पर ही निर्भर करता है, परिवर्तन के पथ पर नहीं। दूसरे शब्दों में समीकरण $U_f—U_i \equiv Q—W$ से परिभाषित आंतरिक ऊर्जा U निकाय की अवस्था का एकमानी फलन है। यद्यपि Q और W दोनों ही परिवर्तन के पथ पर निर्भर करते हैं, राशि Q—W केवल प्रारंभिक और अंतिम अवस्थाओं (i और f) पर ही निर्भर करती है।

किसी भी निकाय की अवस्था उसके आयतन V, दाब P और ताप T मे से किन्हीं दो राशियों को व्यक्त करने से सुनिश्चित हो जाती है। अवस्था परिवर्तन अनेक प्रकार से हो सकते हैं, जिनमें अवस्था परिवर्तन (यथा द्रव से गैस में) भी सम्मिलित है, और प्रत्येक परिवर्तन में हम निकाय को प्राप्त ऊष्मा Q तथा निकाय द्वारा कृत कार्य W की गणना कर सकते हैं। समीकरण (11.4)—उष्मागतिकी के प्रथम नियम—का महत्व यह है कि निकाय की अवस्था को व्यक्त करने वाली एक और भौतिक राशि U (आंतरिक ऊर्जा) हमें प्राप्त होती है, अर्थात् अब हम V,P,T,U इन चार में से कोई दो राशियाँ निकाय की अवस्था को व्यक्त करने के लिए काम में ले सकते है।

उल्लेखनीय है कि जब P और T निकाय (यथा गैस) की मात्रा पर निर्भर नहीं होते, V और U दोनों ही निकाय की मात्रा के अनुपात में होते हैं। प्रथा यह है कि समीकरणों में प्रयुक्त V और U एक मोल पदार्थ के लिए माने जाते हैं, यदि और कुछ न कहा गया हो।

11.6 ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम के अनुप्रयोग (Applications of First Law of Thermodynamics)

(क) क्वथन क्रिया (Boiling Process) : हम जानते है कि ऊष्मा देने से कोई पदार्थ द्रव से वाष्प अवस्था में चला जाता है। उदाहरणतः पानी वायुमण्डलीय दाब के अंतर्गत 373 केल्विन ताप पर क्वथन करता है। इस प्रक्रिया की हम उष्मागतिकी के प्रथम नियम से विवेचना करेंगे।

मान लीजिए द्रव का द्रव्यमान m है, और वह नियत दाब P पर वाष्पीकृत होता है। द्रव का प्रारंभिक आयतन V_1 और वाष्प बनने पर आयतन V_2 मान लीजिए। तो

आयतन के इस प्रसार में विचाराधीन निकाय द्वारा किया गया कार्य होगा :

$$W = \int P dv = P \int dv = P (V_f - V_i)$$

क्योंकि क्रिया स्थिर दाब पर हुई है। मान लीजिए वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा L है। इसका अर्थ है कि एकांक द्रव्यमान को द्रव से वाष्प अवस्था में (दत्त नियत दाब और ताप के अंतर्गत) ले जाने के लिए आवश्यक ऊष्मा L है। तो m द्रव्यमान के द्रव द्वारा शोषित ऊष्मा होगी $Q = mL$.

ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम से

$$Q = U_f - U_i + W$$

या $$mL = U_f - U_i + P (V_f - V_i)$$

इसमें m, L, P, V_f तथा V_i ज्ञात होने से हम आंतरिक ऊर्जा की वृद्धि $(U_f - U_i)$ की गणना कर सकते है। उल्लेखनीय यह है कि दत्त ऊष्मा mL का कुछ ही भाग आंतरिक ऊर्जा वृद्धि में जाता है, शेष बाह्य कार्य करने में व्यय हो जाता है।

(ख) विशिष्ट ऊष्माओं का संबंध (Specific Heat Relation) : गैसों के गतिज सिद्धान्त के अध्ययन में हमने आदर्श गैस की स्थिरदाब विशिष्ट ऊष्मा C_p और स्थिरायतन विशिष्ट ऊष्मा C_v के लिए समीकरण $C_p - C_v = R$ की चर्चा की थी। अब हम इसे ऊष्मागतिकीय विचार से प्राप्त करेंगे।

किसी पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा, ऊष्मा की वह मात्रा है जिसे एकांक द्रव्यमान पदार्थ को देने से उसका ताप 1 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाए। एक मोल द्रव्यमान के लिए परिभाषित करने पर उसे मोलीय विशिष्ट ऊष्मा कहते हैं, और C से व्यक्त करते हैं।

n मोल आदर्श गैस पर विचार कीजिए। यदि इसके ताप को dT बढ़ाएँ और आयतन स्थिर रखें तो इस क्रिया में आवश्यक ऊष्मा $nC_v dT$ होगी, क्योंकि आयतन स्थिर रहने के कारण $W = 0$ ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम से

$$dQ = dU + PdV$$

अतः यहाँ $nC_v dT = dU$ क्योंकि $dV = 0$

अब यदि इसी गैस को दाब स्थिर रखकर हम उतनी ही तापवृद्धि dT करें, तो इसके लिए आवश्यक ऊष्मा होगी $nC_p dT$। इस बार आयतन मे वृद्धि होगी, और इस में किया गया कार्य PdV होगा। अत. प्रथम नियम से

$$nC_p dT = dU + PdV$$

आदर्श गैस के लिए आतरिक ऊर्जा पूर्णत: गैस के अणुओं की गतिज ऊर्जा के रूप में ही होती है, और गतिज सिद्धांत में हम देख चुके है कि यह गतिज ऊर्जा केवल ताप पर ही निर्भर होती है। इसलिए उपरोक्त दोनो स्थितियों मे ताप परिवर्तन dT बराबर होने के कारण आंतरिक ऊर्जा के परिवर्तन dU भी बराबर होंगे। फलत:

$$nC_p dT - nC_v dT = PdV$$

आदर्श गैस के लिए $PV = nRT$। अत: स्थिर दाब परिवर्तन के लिए $PdV = nRdT$ इसके उपयोग से

$$n (C_p - C_v)\, dT = nRdT$$

या $$C_p - C_v = R$$

11.7 ऊष्मा का कार्य में परिवर्तन : ऊष्मा इंजन (Conversion of Heat into Work, Heat Engine)

उस परिचित उदाहरण पर विचार करें जिसमें भाप का उपयोग कार्य करने में होता है। इसमें भाप को कार्यकारी पदार्थ कहते हैं, और उस यांत्रिक व्यवस्था को, जिसके कारण भाप कार्य कर पाती है, भाप-इंजन कहते हैं। ऊष्मा का स्रोत वाष्पित्र (बायलर) होता है, और इस ऊष्मा का कुछ भाग बाह्य वायुमंडल में चला जाता है, जिसे ऊष्मा का निकास कहते हैं। ये नामकरण ऊष्मा-स्रोत, ऊष्मा निकाय कार्यकारी पदार्थ और यांत्रिक व्यवस्था इंजन की प्रक्रिया को स्पष्टत: समझने में सहायक होते हैं।

ऊष्मा को कार्य में परिणत करने वाली किसी भी व्यवस्था में सार्व रूप से कार्यकारी पदार्थ स्रोत से ऊष्मा Q_1 लेता है, कुछ कार्य W करता है, और कुछ ऊष्मा Q_2 निकास में फेंक देता है (चित्र 11.6)। विश्लेषण में हम यह मान कर चलते है कि स्रोत, जो उच्चतर ताप पर है
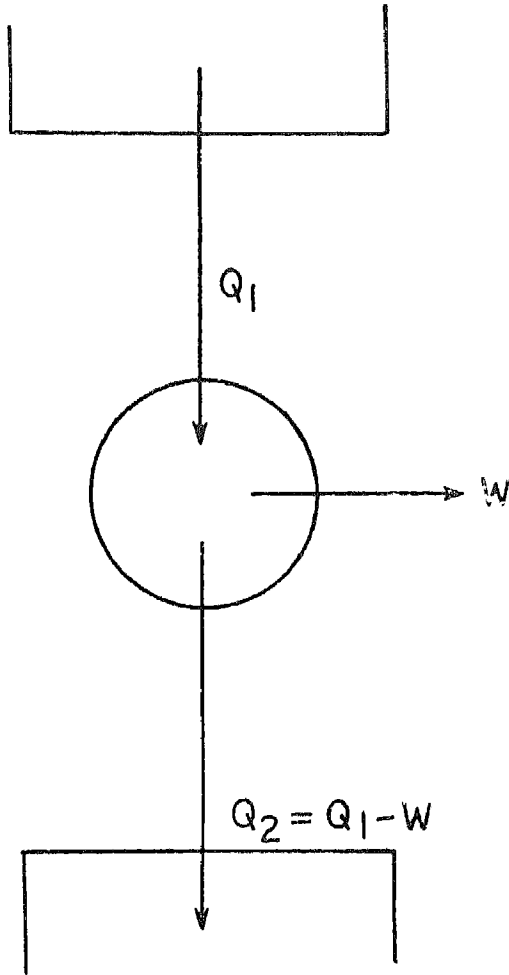
चित्र 11.6 : ऊष्मा इंजन

और जिससे ऊष्मा Q_1 प्रत्येक चक्र में ली जाती है, ऊष्मा का बहुत बड़ा भंडार है, अतः ऊष्मा लेने से उसके ताप में उल्लेखनीय अंतर नहीं पड़ता। इसी प्रकार निकास को भी हम विशाल आकार का मानते हैं।

इंजन की क्रिया चक्रीय क्रिया होती है। ऊष्मागतिकी में इसका आशय यह है कि कार्यकारी निकाय किसी प्रारंभिक अवस्था से चलकर कुछ प्रक्रियाओं से गुजरते हुए वापिस उसी अवस्था को बार-बार आता रहे। इसका आशय यह नहीं है कि निकाय उसी पथ पर लौटे जिस पथ से वह बढा था, वास्तव मे सूचक आरेख पर निकाय का पथ एक संवृत्त वक्र होता है, रेखा नहीं। प्रत्येक चक्र की समाप्ति पर निकाय के समस्त गुण आरंभ के समान हो जाते है। इंजन द्वारा कृत कार्य के विवेचन मे यह उचित और पर्याप्त होता है कि एक चक्र के विभिन्न भागों में प्राप्त या दत्त ऊष्मा और प्राप्त या कृत कार्य पर विचार करे।

ऊष्मा इजन को श्रेष्ठ तब माना जाता है जब स्रोत से प्रत्येक चक्र में प्राप्त ऊष्मा Q_1 के अधिकतम भाग को वह कार्य W में परिणत कर सके। अनुपात W/Q_1 को इंजन की दक्षता कहते है।

$$\text{दक्षता } (\eta) = \frac{\text{कार्य उत्पादन } (W)}{\text{ऊष्मा निवेश } (Q_1)} \quad \ldots(11.5)$$

यदि प्राप्त ऊष्मा Q_1 मे से इंजन द्वारा ऊष्मा Q_2 निकास (सिंक) मे फेंक दी जाती है, तो यह मानते हुए कि इजन के पुर्जे आदर्श है (घर्षण रहित) और अन्य कही ऊर्जा का आदान-प्रदान नहीं हो रहा है, हम ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम से लिख सकते हैं कि

$$W = Q_1 - Q_2$$

क्योंकि प्रत्येक चक्र के बाद कार्यकारी पदार्थ प्रारंभिक अवस्था मे आ जाता है, इसलिए आंतरिक ऊर्जा में कोई परिवर्तन नहीं होगा, यह बात उक्त समीकरण मे निहित है। अब समीकरण (11.5) से

$$\eta = \frac{Q_1 - Q_2}{Q_1} = 1 - \frac{Q_2}{Q_1} \quad \ldots(11.6)$$

इस प्रकार दक्षता का मान इकाई से सदा कम होगा। यदि $\eta=1$ होना है तो $Q_2=0$ होना चाहिए। ऐसा क्यों नहीं हो सकता--आदर्श इंजन में भी—इस बात का ऊष्मागतिकी के द्वितीय नियम से सीधा संबंध है।

11.8 ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम (Second Law of Thermodynamics)

हमारा अनुभव है कि यदि पानी के बर्तन में डूबी

मथनी को घुमाने में कार्य किया जाए तो पानी गर्म हो जाता है, अर्थात यांत्रिक कार्य पूर्णतः ऊष्मा मे बदल जाता है। लेकिन यदि गर्म पानी के बर्तन में मथनी को रखें तो मथनी चलना शुरू नहीं करती, अर्थात् ऊष्मा स्वयं यांत्रिक कार्य में नही परिणत होती।

ऊष्मा इंजन की सहायता से ऊष्मा को कार्य में परिणत किया जा सकता है। किन्तु उच्च ताप स्रोत से ऊष्मा Q_1 लें तो इस पूरी ऊष्मा को कार्य मे परिणत नहीं किया जा सकता। अन्य शब्दों में इंजन की दक्षता सदैव एकांक से कम होती है। स्मरण रहे कि उष्मा इंजन के लिए स्रोत और निकास चाहिए, अर्थात ताप अंतर वाले दो ऊष्मा-भंडार चाहिए। स्रोत से प्राप्त ऊष्मा Q_1 में से कुछ भाग Q_2 निकास को देना होता है, तभी इजन चक्रीय क्रिया पूरी कर सकता है। ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम इसी बात को व्यक्त करता है।

यदि किसी ऊष्मा इंजन को निरन्तर काम करना है और ऊष्मा को कार्य में परिणत करते रहना है तो या तो कार्यकारी पदार्थ अक्षय मात्रा मे होना चाहिए (इजन का आकार भी तदनुसार अनंत दीर्घ होना चाहिए) या इंजन को चक्रिय क्रिया मे काम करना चाहिए। पहला विकल्प व्यवहारिक नहीं है, इसलिए इंजन के संदर्भ में हमें चक्रीय क्रिया पर ही विचार करना चाहिए।

अब व्यवहार मे हम पाते हैं कि जितने भी इंजन बनाए गए हैं उनमे से कोई भी ऐसा नहीं है जो उच्चतर ताप वाले स्रोत से ली गई ऊष्मा में से कुछ ऊष्मा निरन्तर ताप वाले निकास में फेंके बिना चक्रीय क्रिया पूरी कर सकें। स्रोत से प्राप्त समस्त ऊष्मा को कभी भी कार्य में परिणत नहीं किया जा सका है। स्मरण रहे कि यहाँ हम इंजन के मशीन भाग पर विचार नहीं कर रहे हैं, उसमें घर्षण के कारण तथा ऊष्मा क्षरण के कारण जो क्षति होती है उसे हम शून्य मान रहे है। अर्थात् आदर्श अवस्था पर ही विचार कर रहे हैं। किन्तु कार्यकारी पदार्थ को पूर्वस्थिति पर लाने—अर्थात् चक्रीय क्रिया को पूरी करने—के लिए कुछ ऊष्मा निकास मे फेकनी ही पड़ती है, यह महत्वपूर्ण बात है। इस व्यावहारिक अनुभव को केल्विन ने, और प्लांक ने भी, विधिवत् वैज्ञानिक कथन के रूप मे व्यक्त किया, जिसे ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का केल्विन-प्लांक कथन कहते है :

"ऐसे किसी भी इंजन की रचना असंभव है जो चक्रीय क्रिया करते हुए किसी भंडार से ऊष्मा खीचे और बिना अन्य कोई प्रभाव छोड़े उस ऊष्मा के तुल्य कार्य कर दे।"

इस स्वरूप में यह नियम हमें केवल यह बताता है कि $W < Q_1$, अर्थात् इंजन द्वारा किया कार्य, आदर्श अवस्था में भी, स्रोत से ली गई ऊष्मा से कम होगा। कुछ ऊष्मा Q_2 निकास में देनी ही होगी, और इसलिए इंजन की दक्षता सदैव एकाक से कम होगी। अंश Q_2/Q_1 जब न्यूनतम होगा तब इंजन की दक्षता अधिकतम होगी; अर्थात् ली गई ऊष्मा का अधिकतम अंश कार्य में परिणत होगा। केल्विन-प्लांक स्वरूप मे ऊष्मागतिकी का द्वितीय नियम यह नहीं बताता कि Q_2/Q_1 का न्यूनतम मान कितना होगा, और किस बात पर निर्भर करेगा। बाद में हम देखेंगे कि यदि स्रोत और निकास के ताप क्रमशः T_1 तथा T_2 केल्विन हों, तो Q_2/Q_1 का न्यूनतम संभव मान T_2/T_1 के बराबर होता है।

ध्यान दें कि ऊष्मागतिकी का प्रथम नियम ऊष्मा और कार्य के रूप में ऊर्जा को तुल्य मानता है। उसके अनुसार स्रोत से Q_1 जूल ऊष्मा लेकर $W = Q_1$ जूल यांत्रिक कार्य उत्पन्न किया जा सकता है। यही नहीं, यदि निकास को प्रदत्त ऊष्मा Q_2 ऋणात्मक मानें (अर्थात् निकास से भी ऊष्मा लें) तो $W > Q_1$ भी हो सकता है, अर्थात् इंजन की दक्षता $\eta > 1$ हो सकती है। किन्तु ऊष्मागतिकी का द्वितीय नियम इन परिवर्तनों की सीमाएँ बाँधता है, जो स्रोत निकास के तापों पर निर्भर होती हैं।

11.9 द्वितीय नियम और प्रशीतक (Second Law and Refrigerator)

हमने देखा कि ऊष्मा इंजन में एक कार्यकारी पदार्थ, चक्रीय क्रिया करते हुए, किसी उच्च ताप भंडार से ऊष्मा लेता है, उसके कुछ अंश को कार्य में परिणत करता है,
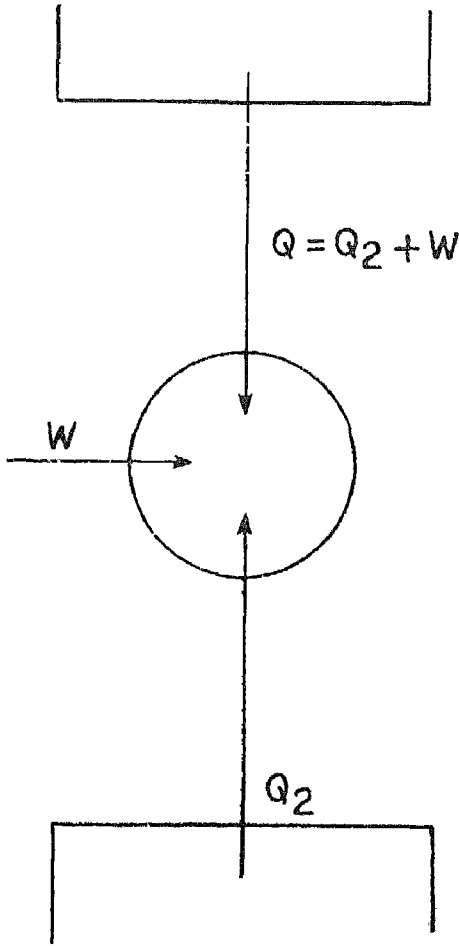
चित्र 11.7 : प्रशीतक

और शेष को किसी निम्नताप निकास में फेंक देता है। व्यवहार में ऐसी युक्ति बताना संभव है जो इसके विपरीत क्रिया करे। इसमे कार्यकारी पदार्थ किसी निम्नताप भंडार से ऊष्मा लेता है, उस पदार्थ पर कुछ कार्य किया जाता है, और ऊष्मा की उच्चतर मात्रा किसी उच्चताप भंडार मे फेंकी जाती है। ऐसे यंत्र को प्रशीतक कहते हैं। इस पर अब हम विचार करते है।

मान लीजिए प्रशीतक पदार्थ द्वारा निम्नतर ताप पर ऊष्मा Q_1 ली जाती है (चित्र 11.7), और इस पर किसी बाह्य साधन द्वारा कार्य W किया जाता है। उच्चतर ताप पर प्रशीतक पदार्थ द्वारा निकास को दत्त ऊर्जा Q_2 है, तो यह स्मरण रखकर कि चक्रीय क्रिया मे कार्यकारी पदार्थ की आंतरिक ऊर्जा में कुल अंतर शून्य होता है, और हम मशीन के अवयवों को आदर्श (घर्षणहीन और क्षरण-हीन) मान रहे हैं, ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम से

$$Q_1 - Q_2 = -W$$

अथवा

$$Q_2 = Q_1 + W \qquad ....(11.7)$$

ऊष्मागतिकी के द्वितीय नियम का यहाँ महत्व यह है : ऊष्मा Q_1 निरन्तर ताप पर ली, और Q_2 उच्चतर ताप पर दी जानी है, तो द्वितीय नियम के अनुसार Q_2 का मान Q_1 से अधिक होगा ही, और इसलिए प्रशीतक द्वारा Q_1 ऊष्मा निम्नताप स्रोत में निकालने के लिए हमें बाहरी किसी साधन द्वारा कार्यकारी पदार्थ पर कार्य W करना ही होगा। यदि निम्न और उच्च ताप क्रमशः T_1 और T_2 केल्विन हों तो Q_2/Q_1 का न्यूनतम मान T_2/T_1 होगा, जिससे हम न्यूनतम W की गणना कर सकते हैं।

पारिवारिक प्रशीतकों में कार्य W विद्युत मोटर द्वारा किया जाता है। सामान्यतः प्रयुक्त कार्यकारी पदार्थ फ्रीओन गैस होती है। यह प्रशीतक में रखे पदार्थों से ऊष्मा लेती है, और उसमें W जोड़कर अधिक ऊष्मा कमरे के वायुमण्डल में देती है।

11.10 उत्क्रमणीय प्रक्रम (Reversible Process)

ऊष्मागतिकी में किसी प्रक्रम को उत्क्रमणीय तब कहते हैं जब उसके प्रत्येक चरण को उलटी दिशा में पूरित करते हुए सर्वत्र उस निकाय तथा वातावरण में यथातथ वे ही परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा सकें जो सीधे प्रक्रम में तत्संगत चरणों पर थीं। स्पष्ट है कि प्रक्रम के अंत पर तो निकाय तथा वातावरण पूर्वावस्था पर आ ही जाएंगे। उत्क्रमणीय प्रक्रम को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी होती हैं, जिनके कारण प्रक्रम को बहुत ही धीरे-धीरे करना होता है :

(क) निकाय सदा यांत्रिक संतुलन में रहना चाहिए, अर्थात् उसके भीतर या उसके और वातावरण

के बीच कोई असंतुलित बल नहीं रहने चाहिए ।

(ख) निकाय सदा ऊष्मीय संतुलन में रहना चाहिए, अर्थात् उसके सभी भाग तथा वातावरण एक समान ताप पर रहने चाहिए ।

(ग) निकाय सदा रासायनिक संतुलन में रहना चाहिए, अर्थात् उसके अणुओं की संरचना स्वत: नहीं बदलनी चाहिए। इसमें रासायनिक क्रिया के अतिरिक्त विसरण आदि का भी प्रभाव हम शामिल कर लेते हैं ।

इन सब शर्तों को पूरित करने वाले निकाय को ऊष्मागतिकीय संतुलन में कहा जाता है, इसलिए हम उत्क्रमणीय प्रक्रम के लिए कह सकते हैं कि प्रत्येक चरण पर उसमें निकाय का ऊष्मागतिकीय संतुलन में होना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त क्षयकारी प्रभावों की अनुपस्थिति भी आवश्यक है—यथा घर्षण के कारण क्षय, आदि ।

कुछ सामान्य प्रक्रमों पर विचार करें। धरती पर किसी पिंड का चलना उत्क्रमणीय प्रक्रम नहीं है, क्योंकि घर्षण के कारण जो ऊर्जा ऊष्मा में परिणत हो जाती है उसे वापिस उत्क्रमणीय रूप में यान्त्रिक ऊर्जा में परिणत नहीं कर सकते । किसी द्रव का विलोडन भी इसी प्रकार का प्रक्रम है । तापांतर की अवस्था मे ऊष्मा-चालन अनुत्क्रमणीय है, क्योंकि उन्हीं ताप दशाओं को रखते हुए ऊष्मा का उलटा प्रवाह संभव नही है । रासायनिक प्रक्रम सभी अनुत्क्रमणीय होते हैं, क्योंकि अवयवों की रचना में जिस दिशा में परिवर्तन की अनुकूल परिस्थितियाँ हैं उसके विपरीत परिवर्तन उन्हीं परिस्थितियों में नहीं होंगे ।

अब इस विशिष्ट प्रक्रम पर विचार कीजिए। एक गैस को उसी के बराबर ताप वाले एक स्रोत के सम्पर्क में रखिए। गैस का बहुत धीरे-धीरे प्रसार कराइए। प्रसार के कारण उसका ताप कम होने लगेगा, किन्तु स्रोत से ऊष्मा प्राप्त होती रहने के कारण ताप गिरेगा नहीं। वास्तव में इस प्रक्रम के पत्येक चरण पर गैस का ताप स्रोत के ताप से जरा-सा नीचे रहेगा, किन्तु हम कल्पना कर सकते हैं कि प्रक्रम अनंत धीमे पूरा होता है, तो यह अंतर शून्य-तुल्य हो जायगा । इसे हम गैस का समतापीय प्रसार कहेंगे । इसका विपरीत प्रक्रम, यदि बहुत धीरे-धीरे किया जाय, तो गैस प्रत्येक चरण पर स्रोत से जरा-से ऊँचे ताप पर होगी, और ऊष्मा स्रोत मे चली जायेगी । प्रक्रम को अनंत मानने पर तापांतर फिर शून्य-तुल्य हो जायेगा । इसे हम गैस का समतापीय संपीडन कहेंगे। स्पष्ट है कि समतापीय प्रसार उत्क्रमणीय प्रक्रम होगा; लेकिन यह भी स्पष्ट है कि इसके लिए प्रक्रम को अत्यन्त धीमी गति से पूरा करना होगा ।

एक और प्रक्रम पर विचार कीजिए। एक गैस को उच्चदाब पर रखिए। अब बाह्य दाब तनिक-तनिक कम करते जाइए ताकि विचाराधीन गैस का प्रसार हो। इसमें विचाराधीन गैस बाह्य वातावरण पर कार्य करेगी और स्वयं उसका ताप कम होगा । किन्तु हम कल्पना करते है कि गैस ऊष्मारोधी परिस्थितियों में प्रसार कर रही है। इस प्रक्रम में बाह्य दाब सदा ही गैस के दाब से जरा-सा नीचे रहेगा, किन्तु अत्यन्त धीमे प्रक्रम की कल्पना से हम इस अंतर को शून्य-तुल्य मान सकते हैं। यह गैस का रूद्धोष्म प्रसार हुआ । इसके विपरीत प्रक्रम में हम बाह्य दाब को निरंतर गैस के दाब से जरा-जरा ऊपर करते जाएँ, तो गैस का रूद्धोष्म संपीडन हो जायेगा। अत्यंत धीमे प्रक्रम में इस बार भी प्रत्येक चरण पर गैस उन्हीं अवस्थाओं से गुजरेगी जिनसे सीधे प्रक्रम में । इसलिए स्थिरोष्म प्रसार उत्क्रमणीय प्रक्रम होगा, यदि उसे अनंत धीरे पूरा किया जाए।

11.11 कारनो इंजन (Carnot Engine)

हमने देखा कि किसी भी ऊष्मा इंजन की दक्षता एकांक से कम होती है । अब प्रश्न यह है कि किसी भी इंजन का प्रक्रम कैसा रखें कि हमें अधिकतम दक्षता प्राप्त हो । कुछ संभावित उपायों पर विचार कीजिए। माना हम एक ऊष्मा इंजन से समतापीय रूप में काम लेते हैं और कार्यकारी पदार्थ आदर्श गैस है । तो स्रोत से ऊष्मा लेने पर गैस का प्रसार होगा और वह कार्य करेगी।

अधिकाधिक कार्य लेने के लिए हम इंजन के आकार को अधिकाधिक बड़ा ले सकते हैं, किन्तु यह व्यावहारिक नहीं है। अतः इंजन को चक्रीय रूप में चलाना होगा, अर्थात् कार्यकारी पदार्थ बार-बार लौटकर पूर्वावस्था मे आए और प्रत्येक बार कुछ ऊष्मा लेकर कार्य में परिणत करे। यदि समतापीय प्रसार के बाद कार्यकारी पदार्थ को समतापीय संपीडन से ही पूर्वावस्था पर लाएँ तो संसूचक आरेख उसी रेखा पर उलटा चलता है जिससे प्रसार को व्यक्त किया गया था। इसका अर्थ यह हुआ कि समतापीय संपीडन मे उतना ही कार्य पदार्थ पर हुआ जितना प्रसार के समय पदार्थ ने किया था, या यों कहे कि पूर्ण प्रक्रम को व्यक्त करने वाले संसूचक आरेख को व्यक्त करने वाले वक्र मे घिरा क्षेत्रफल शून्य हो गया, और कुल प्राप्त कार्य इस प्रक्रम में शून्य हो गया।

यदि रुद्धोष्म प्रसार पर विचार करें तो उसमे कार्यकारी पदार्थ स्रोत से ऊष्मा नहीं खींचता है, स्वय अपनी आंतरिक ऊर्जा के कुछ भाग को कार्य मे परिणत करता है। अब पदार्थ को पूर्वावस्था पर लाने के लिए हमे पदार्थ पर कार्य करना होगा, जिससे उसकी आंतरिक ऊर्जा बढ़कर पूर्ववत हो जाए। रुद्धोष्म संपीडन में पदार्थ पर किया गया कार्य रुद्धोष्म प्रसार में पदार्थ द्वारा किए गए कार्य के बराबर ही होगा (क्योंकि कुल प्रक्रम में $dQ=0$, $dU=0$ अतः $dW=0$, प्रथम नियम से); इस प्रकार कुल प्राप्त कार्य शून्य हो गया।

एक फ्रांसीसी इंजीनियर सादी कारनो ने बताया कि यदि चक्रीय क्रिया में संसूचक आरेख का क्षेत्रफल—अर्थात् प्रक्रम में प्राप्त कार्य—अशून्य रखना है तो हमें समतापी और रुद्धोष्म परिवर्तनों का समुचित संयोजन काम मे लेना होगा। उसने इन प्रक्रमों का एक पूरा चक्रीय संयोजन बताया जिसे कारनो चक्र कहते है; किसी भी इंजन में इस प्रकार का प्रक्रम-समूह काम में लिया जाए तो उसे कारनो इंजन कहते हैं। इसकी महत्ता इसलिए है कि कारनो ने सिद्ध किया कि चक्रीय क्रिया वाले इंजन के लिए (i) ऊष्मा-स्रोत के अतिरिक्त एक ऊष्मा-निकास की भी अनिवार्य आवश्यकता है, (ii) स्रोत और निकास के
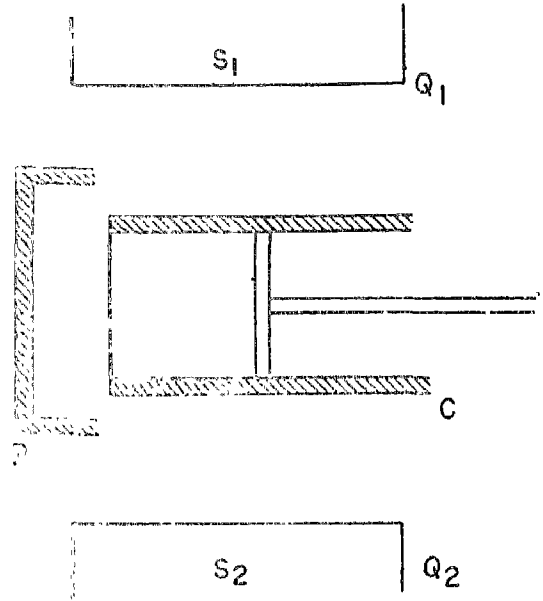
चित्र 11.8 · कारनो इंजन

दत्त तापों के बीच क्रिया करने वाले किसी भी इंजन में से श्रेष्ठतम दक्षता उसकी होती है जिसका प्रक्रम पूर्णतः उत्क्रमणीय हो, और (iii) यह महत्तम दक्षता $(1-T_2/T_1)$ होती है, जिसमे T_1 स्रोत का और T_2 निकास का केल्विन ताप है। कारनो चक्र पर हम चित्र 11.8 की सहायता से विचार करते है।

मान लीजिए S_1 स्रोत है जिसका ताप T_1 है, और S_2 निकास है जिसका ताप T_2 है। C इंजन का सिलिंडर है, जिसकी दीवारें और पिस्टन ऊष्मारोधी है (अचालक), और पेंदा सुचालक है, जिस पर आवश्यकतानुसार एक अचालक टोपी लगाई जा सकती है। सिलिंडर में भरा कार्यकारी पदार्थ आदर्श गैस है। कारनो चक्र के चार चरणों में इस गैस पर हुए प्रक्रमों पर हम चित्र 11.9 की सहायता से विचार करते है।

प्रथम चरण मे सिलिंडर के पेंदे पर अचालक टोपी नहीं लगाते और पेंदे का सम्पर्क ऊष्मीय स्रोत से रखते है।
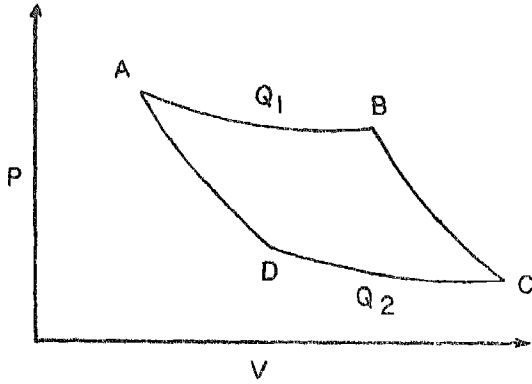
चित्र 11.9 : कारनो चक्र

गैस का प्रारंभिक दाब और आयतन संसूचक आरेख के बिंदु A से व्यक्त होता है। अब गैस का प्रसार होने दीजिए, इस प्रकार कि पिस्टन बहुत धीरे-धीरे बढ़े और प्रसार में जितना कार्य गैस करे उतनी ही ऊष्मा स्रोत से चालन द्वारा गैस को मिलती रहे। प्रसार से गैस का ताप गिरने की प्रवृत्ति होगी, किन्तु S_1 से ऊष्मीय सम्पर्क के कारण गैस को ऊष्मा निरंतर मिलती रहेगी, इसलिए समस्त क्रिया के दौरान गैस को T_1 ताप पर ही मान सकते है, अर्थात् यह प्रसार समतापीय है। जैसा हम पहले बता चुके है यह प्रक्रम उत्क्रमणीय है। इस समतापीय प्रसार में कार्यकारी पदार्थ को व्यक्त करने वाला बिन्दु A से B पर चला जाता है, जो एक समताप वक्र है।*

अब प्रक्रम का दूसरा चरण प्रारंभ होता है। सिलिंडर के पेंदे पर अचालक टोपी P पहना दी जाती है ताकि गैस पूर्णतः ऊष्मारुद्ध हो जाए। अब पिस्टन को आगे बढ़ने देते हैं। कल्पना यह है कि गैस का दाब वायु-मडलीय दाब से अधिक है, किंतु हम निरंतर बाह्य दाब को ऐसा नियंत्रित रखते है कि वह गैस दाब से अत्यल्प ही कम रहे, ताकि प्रसार धीरे-धीरे हो। इस प्रकार यह प्रसार उत्क्रमणीय होगा। इस प्रसार में ऊष्मा का आदान-प्रदान नही होता, किन्तु गैस की आतरिक ऊर्जा आयतन प्रसार में कार्य करती है, और फलतः उसका ताप गिरता जाता है। इस प्रक्रम को इतनी दूरी तक चलने देते है कि गैस का ताप घट कर निकास के ताप T_2 के बराबर हो जाए। संसूचक आरेख में यह प्रक्रम वक्र BC से व्यक्त है।

बिन्दु C से संगत अवस्था में गैस का दाब काफी कम हो जाता है अब और कार्य करने के लिए आवश्यक है कि गैस को प्रारंभिक अवस्था तक ले जाएँ, जो बिन्दु A से व्यक्त है। गैस के सपीडन की यह क्रिया तीसरे और चौथे चरण में होती है, और उत्क्रमणीय रखने के लिए धीरे-धीरे होती है।

प्रक्रम के तीसरे चरण मे सिलिंडर से टोपी P हटाकर गैस को T_2 ताप के निकास के ऊष्मीय संपर्क मे ले आते है। गैस का समतापीय संपीडन किया जाता है। संपीडन में गैस के ताप मे वृद्धि की प्रवृत्ति होगी, किन्तु निकास से ऊष्मीय संपर्क के कारण ऊष्मा निकास में चली जायेगी और ताप T_2 के बराबर ही बना रहेगा। इस समतापीय सपीडन में संसूचक बिन्दु C से D तक चला जायेगा। यह सपीडन तब तक चलाया जाता है कि D से चौथे चरण की रुद्धोष्म संपीडन क्रिया द्वारा गैस प्रारंभिक अवस्था A पर पहुंच जाए।

चौथे चरण के लिए सिलिंडर के पेंदे पर अचालक टोपी P पहना देते हैं, और फिर गैस का रुद्धोष्म संपीडन करते हैं, जिसे उत्क्रमणीय रखने के लिए क्रिया धीमे-धीमे करते हैं। रुद्धोष्म संपीडन मे ताप-वृद्धि होती है और अंततः गैस प्रारंभिक अवस्था A पर पहुंच जाती है। इस प्रकार एक चक्र पूरा होता है।

इंजन द्वारा एक चक्र मे किया गया कार्य वक्र ABCDA से घिरे क्षेत्रफल से व्यक्त होता है। गैस को बार-बार चक्रीय प्रक्रम में ले जाकर इंजन से अधिकाधिक काम करा सकते है।

* प्रक्रम A से B को कितनी दूर तक ले जाएँ, यह इंजन के आकार पर निर्भर करता है, किंतु B तय कर लेने के बाद शेष प्रक्रम BC,CD,DA हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं हैं, दत्त तापों पर ही निर्भर होते है।

11.12 कारनो इंजन की दक्षता (Efficiency of a Carnot Engine)

कारनो इंजन प्रथम चरण मे स्रोत से ऊष्मा Q_1 लेता है, और तृतीय चरण में निकास को ऊष्मा Q_2 दे देता है। द्वितीय और चतुर्थ चरण रूद्धोष्म है, इसलिए ऊष्मा के आदान-प्रदान से संबंधित नहीं है। हम यह भी जानते है कि कारनो इंजन मे चक्रीय प्रक्रम है, अत: कार्यकारी पदार्थ प्रारंभिक अवस्था में लौट आता है; उसकी आंतरिक ऊर्जा में परिवर्तन शून्य होता है। इसलिए बंद वक्र ABCDA द्वारा बताया गया कार्य W कार्यकारी पदार्थ द्वारा प्राप्त और निर्गत ऊष्माओ के अतर Q_1-Q_2 के बराबर होना चाहिए। इस प्रकार

$$W=Q_1-Q_2$$

अत: कारनो इजन की दक्षता

$$\eta = \frac{\text{कृत कार्य}}{\text{दत्त ऊष्मा}} = \frac{W}{Q_1}$$

$$= \frac{Q_1-Q_2}{Q_1} = 1 - \frac{Q_2}{Q_1}$$

आदर्श गैस के लिए हम Q_1 और Q_2 की गणना कर सकते हैं। इस गणना से हम पाते है कि

$$\frac{Q_2}{Q_1} = \frac{T_2}{T_1} \qquad \ldots(11.8)$$

जिसमे ताप T_1 और T_2 आदर्श गैस तापक्रम पर हैं। इसलिए

$$\eta = 1 - \frac{T_1}{T_2} \qquad \ldots(11.9)$$

11.13 कारनो इंजन की उत्क्रमणीयता (Reversibility of Carnot Engine)

कारनो इंजन एक काल्पनिक आदर्श इंजन है, क्योंकि सब पुर्जों को घर्षणहीन और सारे तंत्र को ऊष्मा क्षय से मुक्त माना गया है। इसके प्रक्रम में चारों चरण अनंत धीरे-धीरे पूरित करने होते है, क्योंकि उत्क्रमणीयता की शर्तें हम पूरी करना चाहते हैं। शून्य-तुल्य तापांतर रखते हुए समतापीय प्रसार या संपीडन, और शून्य-तुल्य दाबांतर रखते हुए रूद्धोष्म प्रसार या संपीडन उत्क्रमणीय होते है, यह हम पहले बता चुके है। कारनो चक्र में ये ही क्रियाएँ सम्मिलित है, इसलिए कारनो इंजन उत्क्रमणीय है। इसका अर्थ यह हुआ कि संसूचक आरेख के अनुसार यदि क्रिया को AD (रूद्धोष्म प्रसार), DC (समतापीय प्रसार), CB (रूद्धोष्म संपीडन), BA (समतापीय संपीडन) —इस क्रम में करें तो इंजन प्रत्येक चक्र में निकास से ऊष्मा Q_2 लेगा, स्रोत को ऊष्मा Q_1 देगा, और कार्यकारी पदार्थ पर बाह्य किसी साधन द्वारा कार्य $W (=Q_1-Q_2)$ किया जायेगा।

कारनो के आदर्श इंजन और उसकी उत्क्रमणीयता का महत्व यह है कि इसी के आधार पर सिद्ध कर सकते है कि (*i*) दो नियत तापों के बीच कार्य करने वाला कोई भी अनुत्क्रमणीय इंजन उत्क्रमणीय इंजन से अधिक दक्षता का नही हो सकता और (*ii*) दो नियत तापों के बीच कार्य करने वाले सभी उत्क्रमणीय इंजन—चाहे कार्यकारी पदार्थ कुछ भी हो—बराबर दक्षता के होते हैं। हम इन्हें सिद्ध नहीं करेंगे। इतना ही कहेंगे कि केल्विन तथा प्लांक ने ऊष्मागतिकी के द्वितीय नियम का जो कथन दिया है उसका उल्लंघन नहीं हो सकता, इस आधार पर उपरोक्त परिणाम प्राप्त किए जाते हैं। कथन (*i*) तथा (*ii*) को संयुक्त रूप से कारनो का सिद्धांत कहते हैं। स्पष्ट है कि यह ऊष्मागतिकी के द्वितीय नियम पर आधारित है। समीकरण (11.9) अब दो तापों के बीच काम करने वाले किसी भी इंजन की महत्तम संभव दक्षता व्यक्त करता है। यह परिणाम कार्यकारी पदार्थ पर निर्भर नहीं करता। इसलिए उत्क्रमणीय इंजन में कोई भी कार्यकारी पदार्थ लें, समीकरण (11.9) उसकी दक्षता के लिए लागू होगा।

व्यवहार में सभी इंजन—यथा भाप इंजन, डीजल इंजन आदि अनुत्क्रमणीय होते हैं और इसलिए उनकी दक्षता कारनो इंजन से कम होती है। लेकिन यह स्पष्ट है कि स्रोत तथा निकास का ताप-अनुपात T_1/T_2 जितना

अधिक हो उतनी ही इंजन की दक्षता बढ़ेगी।

11.14 विकिरण (Radiation)

ऊष्मीय ऊर्जा के स्थानान्तरण की तीन विधियाँ होती हैं : चालन, संवहन और विकिरण। किसी पदार्थ के अंदर ऊष्मा के चालन मे ऊष्मा एक कण से दूसरे कण में क्रमश: स्थानांतरित होती जाती है और पदार्थ के कण (या अणु) स्वयं स्थानान्तरित नही होते। संवहन क्रिया मे पदार्थ के कण स्वयं गति करके ऊष्मा को स्थानान्तरित करते है। विकिरण की क्रिया में ऊष्मा एक पिंड से दूसरे पिंड तक बीच मे किसी माध्यम के अभाव मे भी स्थानान्तरित हो जाती है।

माध्यम के बिना ऊर्जा का यह स्थानान्तरण वैसा ही है जैसा प्रकाश और रेडियो संदेशों में होता है, इस स्थानान्तरण की गति भी प्रकाश की गति के बराबर होती है। प्रयोगों में यह सिद्ध किया जा चुका है कि जिस प्रकार प्रकाश और रेडियो संदेश अनुप्रस्थ विद्युतचुम्बकीय तरंगों के रूप में संचरित होते है, उसी प्रकार विकिरण में भी ऊर्जा का स्थानांतरण अनुप्रस्थ विद्युतचुम्बकीय तरंगों द्वारा ही होता है। इसे हम तापीय विकिरण कहते हैं क्योंकि ऊर्जा का विभिन्न तरंगदैर्ध्यों में वितरण स्रोत के ताप पर मुख्यत: निर्भर होता है। प्राय: ये तरंगदैर्ध्य दृश्य प्रकाश के तरंगदैर्ध्यों से अधिक होते हैं, और इसलिए अवरक्त विकिरण कहलाते है।

11.15 विकिरण का उत्सर्जन और अवशोषण (Emission and Absorption of Radiation)

किसी पिंड द्वारा उत्सर्जित विकिरण की दर पिंड के आकार, ताप और पृष्ठ की प्रकृति पर निर्भर होती है। यह हर पृष्ठ के क्षेत्रफल के सीधे अनुपात में होती है। अधिक ताप वाले पिंड से कम ताप वाले पिंड की अपेक्षा अधिक विकिरण उत्सर्जित होता है। साथ ही, समान पृष्ठ क्षेत्रफल तथा ताप वाले पिंडों में से जो खुरदुरे काले पृष्ठ का होता है उससे अधिक विकिरण उत्सर्जित होता है। चमकीले श्वेत पृष्ठ से कम उत्सर्जन होता है। किसी पिंड के प्रति एकांक क्षेत्रफल से उत्सर्जित ऊर्जा की दर को उस पृष्ठ की उत्सर्जकता e से व्यक्त करते है। स्पष्ट है कि e का मात्रक जूल/मी^{2} सेकिंड होगा, और इसका मान पिंड के ताप और पृष्ठ के स्वरूप पर निर्भर होगा।

क्योंकि विकिरण तरंग स्वरूप का होता है और किसी भी पिंड द्वारा उत्सर्जित विकिरण विभिन्न तरंगदैर्ध्यों में वितरित होता है, इसलिए श्रेष्ठतर होगा कि कुल उत्सर्जकता e के बजाए हम यह विचार करें कि तरंगदैर्ध्य λ और $\lambda+d\lambda$ के बीच विकिरण की दर क्या है। यदि यह दर $e_\lambda \cdot d\lambda$ हो, तो हम e_λ को उस पिंड की तरंगदैर्ध्य λ पर उत्सर्जकता कहते है।

अनुभव से हम जानते है कि किसी पॉलिश किए हुए चमकीले पृष्ठ पर पड़ने वाला अधिकांश विकिरण परावर्तित हो जाता है, और किसी खुरदुरे काले पृष्ठ पर पड़ने वाला अधिकांश विकिरण अवशोषित हो जाता है। इस प्रकार अवशोषण की दृष्टि से पृष्ठों का व्यवहार भिन्न-भिन्न होता है। यदि किसी पृष्ठ पर पड़ने वाले कुछ विकिरण का a अंश अवशोषित हो, तो a को उस पृष्ठ की कुल अवशोषकता कहते हैं। यदि λ और $\lambda+d\lambda$ तरंगदैर्ध्यों के बीच पड़ने वाले विकिरण का a_λ अंश अवशोषित होता हो, तो a_λ को उस पृष्ठ की तरंगदैर्ध्य λ से संगत अवशोषकता कहते हैं। किसी भी पृष्ठ के लिए a_λ का मान न केवल λ पर बल्कि पृष्ठ के ताप पर भी निर्भर करता है।

11.16 कृष्णपिंड (Black-body)

यदि कोई पिंड अपने ऊपर गिरने वाले समस्त विकिरण को अवशोषित कर ले—अर्थात् उसके किसी भी अंश को परावर्तित या पारगमित न करे—तो उसे कृष्ण (काला) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कृष्णपिंड की अवशोषकता $a=1$ होती है; और भी स्पष्टता से कहें तो इसका आशय यह है कि समस्त तरंगदैर्ध्यों के लिए उसकी अवशोषकता $a_\lambda=1$ होती है।

कोई पूर्णत: कृष्णपिंड तो प्राप्त करना असंभव है, किंतु कुछ युक्तियाँ ऐसी हैं जो आदर्श कृष्णपिंड के बहुत निकट होती है। उदाहरणत: खोखले गोले के रूप के
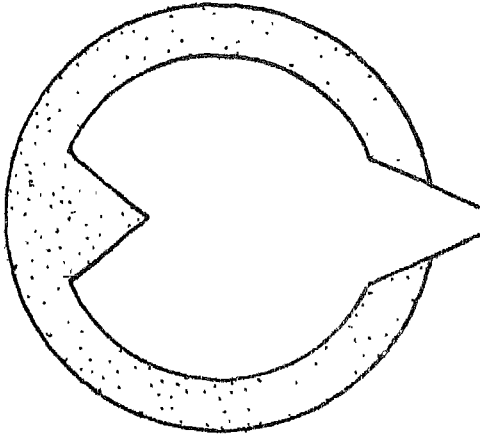
चित्र 11.10 : एक कृष्णपिंड

किसी कोटर को भीतर से किसी काले पेन्ट से पोत दें, तो उस कोटर के पृष्ठ पर बना एक छोटा छिद्र (चित्र 11.10) आदर्श कृष्णपिंड के तुल्य काम करेगा, अर्थात् उस छिद्र पर पड़ने वाला समस्त विकिरण अवशोषित हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, यदि बाहर से प्रकाश डालकर हम कोटर के भीतर देखना चाहें तो कुछ भी दिखाई नहीं देगा। आगे हम देखेंगे कि इस प्रकार के कोटर में बने छिद्र से जो विकिरण उत्सर्जित होता है उसकी तीव्रता और तरंगदैर्घ्यवार वितरण कोटर के ताप पर ही निर्भर होता है, कोटर के पदार्थ या स्वरूप पर नहीं।

व्यवहार में प्रयुक्त कृष्णपिंड एक धातु (पीतल या प्लैटिनम) का बना प्रकोष्ठ होता है, जिसे भीतर से काला पोत देते हैं और विद्युतीय विधि से गरम करते हैं। इस प्रकोष्ठ में बने एक छोटे छिद्र से आने वाले विकिरण को कृष्णपिंड विकिरण के रूप में प्रयोगों में काम लेते हैं।

11.17 किरकॉफ का नियम (Kirchoff's Law)

किसी पिंड पर विचार कीजिए जो वातावरण से ऊष्मीय संतुलन में हो। वह वातावरण को कुछ विकिरण उत्सर्जित करता है, और वातावरण से प्राप्त विकिरण को अवशोषित भी करता है। ऊष्मीय संतुलन का आशय यह हुआ कि उत्सर्जन की दर और अवशोषण की दर बराबर होनी चाहिए: कुछ विचार से यह भी स्थापित किया जा सकता है कि यह समानता प्रत्येक तरंगदैर्घ्य के लिए सत्य होनी चाहिए।

मान लीजिए एक ही वातावरण में ऊष्मीय संतुलन में विभिन्न पिंड रखे हैं, जिनके पृष्ठों की अवशोषकताएँ तरंगदैर्घ्य λ पर क्रमश: a''_λ, a_λ, a_λ''....हैं, और उत्सर्जकताएँ उसी तरंगदैर्घ्य λ पर e_λ, e'_λ e''_λ....हैं। यदि वातावरण से उनके प्रति एकांक पृष्ठ क्षेत्रफल पर λ और $\lambda+d\lambda$ के बीच आपतित विकिरण dQ है, तो ऊष्मीय संतुलन के अनुसार प्रत्येक पिंड के लिए अवशोषित और उत्सर्जित ऊर्जाएँ प्रत्येक समान होंगी। अत:

$$a_\lambda dQ = e_\lambda d\lambda$$
$$a'_\lambda dQ = e'_\lambda d\lambda$$
$$a''_\lambda dQ = e''_\lambda d\lambda$$

इसलिए हम देखते हैं कि एक ही ताप पर रखे विभिन्न पिंडों के लिए

$$\frac{e_\lambda}{a_\lambda} = \frac{e'_\lambda}{a'_\lambda} = \frac{e''_\lambda}{a''_\lambda} = \cdots\cdots \cdots = \text{स्थिरांक}$$

किसी एक पिंड को कृष्णपिंड मान लें, तो उसके लिए $a_\lambda = 1$ होगा, तत्संगत उत्सर्जकता को E_λ कहें तो परिणाम हुआ किसी समान पिंडों के लिए

$$\frac{e_\lambda}{a_\lambda} = E_\lambda \qquad \ldots(11.10)$$

यह समीकरण प्रत्येक तरंगदैर्घ्य के लिए सत्य होगा। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि किसी नियत ताप पर नियत तरंगदैर्घ्य के लिए सभी पृष्ठों के लिए उत्सर्जकता और अवशोषकता का अनुपात बराबर होगा, और इस अनुपात का मान उस ताप और तरंगदैर्घ्य पर कृष्णपिंड की उत्सर्जकता के बराबर होगा।

यह किरकॉफ का नियम कहलाता है। उल्लेखनीय है कि यह प्रत्येक तरंगदैर्घ्य के लिए अलग-अलग लागू होता है। अत: यदि कोई पिंड कुछ विशिष्ट तरंगदैर्घ्यों के लिए श्रेष्ठ अवशोषक है, तो ठीक उन्हीं तरंगदैर्घ्यों के लिए वह

श्रेष्ठ उत्सर्जक भी होगा। इस नियम के अनेक अनुप्रयोग है।

11.18 किरकॉफ नियम के अनुप्रयोग (Applications of Kirchoff's Law)

किसी पालिश किए हुए धातुपिंड पर एक काला धब्बा लगा हो, और पिंड को लगभग 1200 केल्विन तक गर्म करके अचानक किसी अँधेरे कमरे में ले जाएँ, तो काले धब्बे वाला भाग शेष पालिशकृत भाग की अपेक्षा अधिक चमकता है। कारण यह है कि काला धब्बा श्रेष्ठतर अवशोषक होने के साथ ही श्रेष्ठतर उत्सर्जक भी होगा। हरे काँच की प्लेट श्वेत प्रकाश मे से लाल भाग को अन्य रंगों की अपेक्षा अधिक अवशोषित करती है। यदि हरी प्लेट को उच्च ताप तक गर्म करके भट्टी से बाहर निकालें तो उसमें से लाल रंग का प्रकाश निकलता है।

सूर्य के वायुमण्डल का अध्ययन करने में भी किरकॉफ नियम उपयोगी होता है। यह इस प्रयोग से समझ सकते हैं। यदि श्वेत प्रकाश को सोडियम ज्वाला* से गुजारकर स्पेक्ट्रमदर्शी (वर्णक्रमदर्शी) से देखे तो अनवरत स्पेक्ट्रम के पीले भाग में दो काली रेखाएँ प्रकट होनी हैं। अब यदि सोडियम ज्वाला का ही स्पेक्ट्रम देखें तो ठीक उन्हीं स्थानों पर दो उज्ज्वल रेखाएं दीखती है, जहाँ पहले काली रेखाएं थीं। इसी प्रकार सूर्य के स्पेक्ट्रम में उपस्थित काली रेखाओं की व्याख्या की जाती है।

सूर्य का केन्द्रीय भाग एक दीप्त पिंड है, जिसका स्पेक्ट्रम अनवरत होना चाहिए—अर्थात् उसमें काली रेखाएँ नहीं होनी चाहिए। जब यह प्रकाश सूर्य के वायुमण्डल से गुजरता है, तो उसमें उपस्थित अनेक तत्व अपनी-अपनी लक्षणात्मक तरंगदैर्ध्यों का प्रकाश अवशोषित कर लेते है; और स्पेक्ट्रम के तत्संगत भागों में काली रेखाएँ आ जाती हैं। ये काली रेखाएँ सर्वप्रथम फ्राउनहोफर ने देखीं और इसलिए उसी के नाम पर फ्राउनहोफर रेखाएँ कहलाती हैं। स्पष्ट है कि जिन तरंगदैर्ध्यों पर ये काली रेखाएँ प्रकट होती है उन्हीं तरंगदैर्ध्यों पर लाक्षणिक उत्सर्जन देने वाले तत्व हम प्रयोगशाला में खोज ल, तो सूर्य के वायुमंडल में उपस्थित तत्वों का पता लग जाएगा। इस प्रकार हमे यह ज्ञात हो जाएगा कि सौर वायुमण्डल में कौन-कौन तत्व है।

11.19 स्टीफान का नियम (Stefan's Law)

किसी कृष्णपिंड के एकांक क्षेत्रफल द्वारा उत्सर्जित कुल विकिरण की दर केवल उस पिंड के ताप पर ही निर्भर रहती है, पिंड के पदार्थ या आकार का कोई प्रभाव नहीं होता। ताप और उत्सर्जित विकिरण की दर के बीच संबंध स्टीफान ने ज्ञात किया। उसके अनुसार किसी कृष्णपिण्ड के प्रत्येक वर्ग मीटर पृष्ठ द्वारा प्रति सेकंड उत्सर्जित विकिरण उस पिंड के ताप के चतुर्थ घात के अनुपाती होता है,

अर्थात् $$E = \sigma T^4 \quad ...(11.11)$$

जिसमें σ— एक स्थिरांक है। इसे स्टीफान स्थिरांक कहते हैं, और इसका मान 5.735×10^8 जूल/(मीटर^2 सेकिंड डिग्री^{4}) है। किसी वस्तु और उसके वायुमण्डल के बीच आदान-प्रदान में वस्तु द्वारा प्राप्त विकिरण दर ज्ञात करने के लिए उपरोक्त नियम से ही यह परिणाम निकालते हैं। यदि परमताप T का कोई कृष्णपिंड परमताप T_0 के कृष्णपिंड से घिरा हो तो पिण्ड के प्रति वर्ग मीटर पृष्ठ द्वारा प्रति सेकंड खोयी हुई ऊर्जा होगी :

$$E_{net} = \sigma (T^4 - T_0^4)$$

समीकरण (11.11) को स्टीफान ने प्रयोगात्मक दृष्टि से व्यक्त किया था, बाद में बोलट्जमान ने इसकी सैद्धांतिक उपपत्ति दी थी। अतः प्रायः इसे स्टीफान-बोलट्जमान नियम भी कहा जाता है। तप्त वस्तुओं के ताप निर्धारित करने में इसका उपयोग होता है, जैसा हम आगे देखेंगे।

---

* प्रयोगशाला के सामान्य ज्वालक में यदि NaCl के घोल में डूबा एस्बस्टस रखें, तो ज्वाला में Na वाष्प आ जाती है और उसे सोडियम ज्वाला कहते हैं।

11.20 कृष्णपिंड विकिरण का प्रयोगात्मक अध्ययन (Experimental Study of Black-body Radiation)

किसी कृष्णपिंड द्वारा उत्सर्जित विकिरण के स्पेक्ट्रम में विभिन्न तरंगदैर्ध्यों में जो वितरण होता है उसका प्रयोगात्मक अध्ययन व्यापकता से हुआ है। लूमर और प्रिंगशाइम द्वारा किए गए प्रयोग का हम संक्षिप्त विवरण देंगे।

कृष्णपिंड विकिरण का स्रोत एक वैद्युत शक्ति प्रकोष्ठ लेते हैं; जिसका ताप एक ताप-वैद्युत-युग्म से मापा जाता है। विकिरण को स्पेक्ट्रम में विक्षेपित करने के लिए फ्लोराइट का प्रिज्म काम मे लेते हैं। स्पेक्ट्रम के विभिन्न भागों में तरंगदैर्ध्य विक्षेपण के ज्ञात सूत्र का उपयोग करके प्राप्त किया जाता है। प्रत्येक भाग मे स्पेक्ट्रम की तीव्रता मापने के लिए एक सुग्राही बोलोमीटर काम मे लेते है, जो प्लेटिनम प्रतिरोध तापमानी के सिद्धांत पर ही आधारित है। तापवृद्धि के साथ प्रतिरोधक का वैद्युत प्रतिरोध बदलता है, जिससे λ और $\lambda+d\lambda$ की परास में प्राप्त विकिरण की तीव्रता ज्ञात हो जाती है। इसमें उपयुक्त संशोधन लगाकर स्रोत की उत्सर्जकता E_λ भिन्न-भिन्न तरंगदैर्ध्यों पर प्राप्त कर लेते हैं।

723 केल्विन से 1046 केल्विन की परास मे कतिपय तापों के लिए स्पेक्ट्रम में ऊर्जा का वितरण चित्र 11.11 में वक्रों द्वारा प्रदर्शित है। यहाँ X-अक्ष पर माइक्रोन (10^{-6} मी) मात्रक में तरंगदैर्ध्य और Y-अक्ष पर उत्सर्जकता E_λ अंकित है। वक्रो को देखने से दो तथ्य स्पष्टत: प्रकट होते हैं। पहला यह कि तापवृद्धि के साथ E_λ सभी तरंगदैर्ध्यों के लिए बढ़ता है। दूसरा यह है कि प्रत्येक वक्र में एक निश्चित तरंगदैर्ध्य λ_m पर उत्सर्जकता एक महत्तम मान E_m पर पहुंच जाती है, और λ_m का यह मान तापवृद्धि के साथ कम तरंगदैर्ध्य की ओर खिसकता जाता है।

इन तथ्यों से अनेक रोचक प्रायोगिक बातों का समाधान हो जाता है। उदाहरणत: किसी वस्तु को गर्म करें तो पहले वह लाल प्रकाश देती है, जो क्रमश. श्वेत होता जाता है। दृश्य प्रकाश में लाल प्रकाश का तरंगदैर्ध्य सर्वाधिक होता है, अत: स्पष्ट है कि अल्पताप पर लालरंग प्रबल होता है, ताप बढ़ते जाने के साथ अल्पतर तरंगदैर्ध्यों वाला प्रकाश भी शामिल होता जाता है।
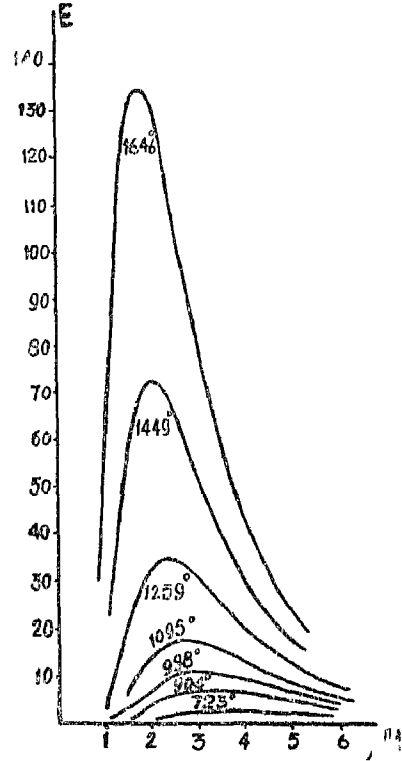
चित्र 11.11 : एक कृष्णपिंड स्पेक्ट्रम में ऊर्जा का वितरण

चित्र 11.11 के प्रयोगफलों से स्टीफान नियम का भी समर्थन होता है। वक्र और X-अक्ष के बीच क्षेत्रफल कुल उत्सर्जित विकिरण की दर व्यक्त करता है, और प्रत्येक ताप से संगत वक्र के लिए यह क्षेत्रफल निकालें तो वह T^4 के अनुपात में आता है, जो स्टीफान का नियम है।

11.21 वीन का विस्थापन नियम (Wien's Displacement Law)

हम चित्र 11.11 के संदर्भ में कह चुके हैं कि ताप T बढ़ाने से महत्तम उत्सर्जन वाला तरंगदैर्ध्य λ_m कम होता

जाता है। इसका परिमाणात्मक नियम है

$\lambda_m T$ = स्थिरांक ...(11.12)

वीन ने इस नियम को ऊष्मागतिकीय तर्कों से प्राप्त किया, अतः यह वीन का विस्थापन नियम कहलाता है। इस स्थिरांक का मान 28.84×10^{-6} मी डि होता है।

वीन नियम के उपयोग से हम सूर्य और तारों के ताप ज्ञात कर सकते हैं। उदाहरण के लिए सूर्य से प्राप्त विकिरण मे λ_m का मान 4753 एन्गास्ट्राम पाया गया है। वीन के नियम मे इसे काम में लेने से $T=6050$ केल्विन प्राप्त होता है। यह मान वर्तमान मे स्वीकृत सूर्यपृष्ठ के ताप से काफी निकट है, अतर का कारण यह है कि वीन का नियम लागू करने में हम सूर्य को कृष्णपिंड (पूर्ण अवशोषक) मान लेते हैं।

11.22 उत्तापमापी (Pyrometers)

अत्यन्त उच्च ताप मापने के लिए हम उन तापमापियों को काम में नहीं ले सकते जो माप्य पिंड के सम्पर्क में आएँ — क्योंकि इन तापों पर सभी पदार्थ द्रव या वाष्प बन जाते है। इसलिए ऐसे उच्च ताप मापने के लिए माप्य पिंड द्वारा उत्सर्जित विकिरण का उपयोग करके ही तापमापी बनाते है। इन्हें विकिरण तापमापी या उत्तापमापी (उच्च-ताप-मापी) कहते हैं। ये तप्त पिंड के सम्पर्क में नहीं आते, अतः चाहे जितना ऊँचा ताप हो उसे माप सकते है। हाँ, निम्नतम सीमा लगभग 90 केल्विन है, क्योंकि इस से नीचे ताप पर उत्सर्जन नगण्य होता है।

विकिरण तापमापी दो प्रकार के होते है—वे जो स्टीफान नियम का उपयोग करते हैं, अर्थात कुल विकिरण की मात्रा मापते हैं और वे जो वीन के नियम का उपयोग करते है, अर्थात् विकिरण का स्पेक्ट्रम प्राप्त करके उससे λ_m ज्ञात करते हैं। किन्तु दोनों ही दशाओं में प्राप्त ताप सन्निकट मान ही होते है, यथातथ नहीं, क्योंकि उनके निर्धारण में प्रयुक्त नियम कृष्णपिंडों पर ही लागू होते है और व्यावहारिक पिंड यदाकदा ही पूर्ण कृष्णता के निकट होते हैं।

चित्र 11.12 में सम्पूर्ण विकिरण को काम में लेने
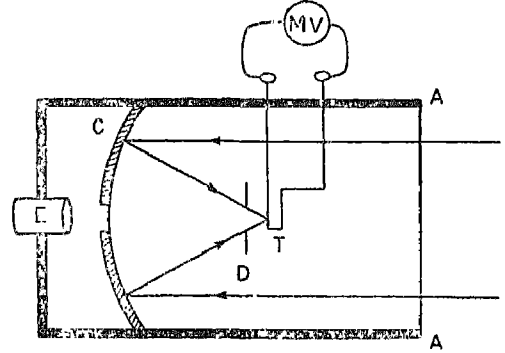
चित्र 11.12 : विकिरण उत्तापमापी

वाले विकिरण उत्तापमापी दिखाया गया है। तप्त पिंड से प्राप्त विकिरण पुंज यंत्र में द्वारकAA से प्रवेश करता है। अवतल दर्पण पुंज को अभिसरित करता है, और अभिसरित पुंज एक डायफ्राम D से गुजर कर ताप-वैद्युत-युग्म पर पड़ता है। इस युग्म में उत्पन्न विद्युतवाहक-बल (e.m.f.) को एक मिलीवोल्टमीटर मापता है।

यह विद्युत वाहक बल (e.m.f.) आपाती पुंज की तीव्रता के अनुपात में होता है। यदि तप्तपिंड स्रोत का ताप T और ताप-वैद्युत-युग्म के तप्त सिरे का (जिस पर पुंज अभिसरित होता है) ताप T_0 हो, तो प्राप्त विकिरण की प्रभावी तीव्रता $T^4—T_0^4$ के अनुपात में होगी। किन्तु व्यवहार में $T>>T_0$ अत: हम e.m.f. को T^4 के अनुपात में मान सकते हैं। यदि यंत्र को पहले किसी ज्ञात ताप के स्रोत पर काम में लेकर अनुपात का गुणांक निकाल लें, तो फिर अन्य स्रोतों के लिए e.m.f. से T का मान प्राप्त हो जाएगा।

व्यवहार में e.m.f. का मानT^4 के अनुपात में नहीं होता। उसके कुछ कारण ये हैं—(*i*) स्रोत कृष्णपिंड नहीं होता, (*ii*) T_0^4 का मान शून्य नहीं होता, और (*iii*) इधर उधर के विकिरण तथा चालन द्वारा ताप-वैद्युत-युग्म के शीतल सिरे का ताप बढ़ना। इसलिए अनेक ज्ञात तापों के लिए उत्तापमापी को अंशांकित कर लेना उचित होता है; या यह पता लगा लेना कि T पर घात कितना होना चाहिए—इसका मान 3.8 से 4.2 तक बदलता है।

प्रश्न-अभ्यास

11.1 ताप और ऊष्मा में स्पष्ट विभेद कीजिए।

11.2 जूल के प्रयोग में 5 किग्रा के दो बांटों मे से प्रत्येक ने 3 मीटर गिरकर एक पैडल चलाया था जिसने 0,1 किग्रा पानी का मंथन किया। पानी के ताप में क्या परिवर्तन हुआ ? (0.7 केल्विन वृद्धि)

11.3 20 ग्राम की 10 मी/से वेग से चलने वाली एक सीसे की गोली किसी लकड़ी के गुटके में धंस गई। तत्संगत उत्पन्न ऊष्मा की गणना कीजिए। यदि आधी ऊष्मा गोली में रह गई, तो गोली के ताप की वृद्धि क्या होगी, जबकि सीसे की विशिष्ट ऊष्मा 0.03 है। (23.8 कैलॉरी, 19.9 केल्विन)

11.4. 1 ग्राम पानी को 373 केल्विन ताप पर वाष्प में परिणत किया जाता है, जिसमें 1 सेमी^{3} पानी 1071 सेमी^{3} वाष्प बनाता है। यदि वाष्पन की गुप्त ऊष्मा 540 कैलॉरी/ग्राम है, तो इस वाष्पन मे निकाय की आंतरिक ऊर्जा की वृद्धि परिकलित कीजिए। (499 कैलॉरी)

11.5. ऊष्मागति के प्रथम नियम का उपयोग करके गलन की प्रक्रिया मे आंतरिक ऊर्जा के परिवर्तन के लिए व्यंजक प्राप्त कीजिए।

11.6 विवेचन कीजिए कि निम्नलिखित प्रक्रियाएं उत्क्रमणीय है या नहीं—

(क) जल-प्रपात
(ख) लोहे पर जंग लगना
(ग) वैद्युत अपघटन

11.7 उत्क्रमणीय प्रक्रिया के दो उदाहरण दीजिए और उनकी उत्क्रमणीयता का विवेचन कीजिए।

11.8 उत्क्रमणीय इंजन से क्या अभिप्राय है ? समझाइए कि दो नियत तापों के बीच कार्य करने वाले इंजनों में उत्क्रमणीय इंजन की दक्षता सर्वाधिक क्यों होती है।

11.9 एक भाप-इंजन बॉयलर से 500 केल्विन ताप पर भाप लेता है, और उसे वायु में 373 केल्विन पर फेंकता है। उसकी दक्षता कितनी होगी ? (25.4%)

11.10. एक प्रशीतक भीतर से 277 केल्विन पर ऊष्मा लेकर बाहर 300 केल्विन पर उसे कमरे में हस्तांतरित करता है। प्रत्येक जूल वैद्युत ऊर्जा के व्यय से कितने जूल ऊष्मा इस प्रकार हस्तांतरित हो जाएगी ? यदि प्रशीतक आदर्श है। (13 जूल)

11.11 किसी पृष्ठ की उत्सर्जकता से क्या आशय है ? समझाइए कि किसी कोटर के भीतर का विकिरण केवल दीवारों के ताप पर ही क्यों निर्भर करता है, उस पदार्थ पर निर्भर नहीं करता जिससे दीवारें बनी हैं।

11.12 समझाइए की सूर्य के वायुमंडल में निहित तत्वों की पहचान में किरकॉफ नियम का क्या उपयोग होता

है। लाल काँच के टुकड़े को गर्म करके फिर अंधेरे में ले जाएँ तो उसमे हरे रंग की चमक क्यों निकलती है ?

11.13 चन्द्रमा के प्रकाश का स्पेक्ट्रम लें तो महत्तम तीव्रता 14 माइक्रोन तरंगदैर्ध्य पर आती है। पुस्तक में दिये गए σ का मान लेकर चंद्रमा के ताप का आंकलन कीजिए। (200 केल्विन)

11.14 किसी गर्म भट्टी का ताप ज्ञात करने की एक विधि का वर्णन कीजिए।

11.15 स्टीफान के नियम के आधार पर न्यूटन का शीतलीभवन नियम प्राप्त कीजिए, जिसके अनुसार यदि किसी गर्म पिंड और उसके वातावरण मे तापांतर अधिक न हो तो उसके शीतलीभवन की दर तापांतर के अनुपात में होती है।

अध्याय 12

द्रव (Liquids)

12.1 अन्तराअणुक अन्योन्यक्रिया (Intermolecular Interactions)

गैसों के अणुगति सिद्धान्त के अध्याय मे हमने पढ़ा है कि द्रव्य बहुत छोटे-छोटे कणों का बना है जिन्हें अणु कहते हैं। वहाँ यह मान लिया गया था कि अणुओं के बीच कोई बल नहीं होता। दूसरे शब्दों में यह मान लिया गया था कि इनमें कोई अन्तराअणुक अन्योन्यक्रिया नहीं होती। किन्तु वास्तव में ये मान्यताएँ केवल सरलता के लिए की गयी हैं और गैसों के लिए भी अणुओं का परिमित आकार होता है और उनमें परस्पर अन्योन्यक्रिया होती हैं। इन्हीं कारणों से वास्तविक गैसों का अवस्था समीकरण आदर्श गैस समीकरण $PV=RT$ से भिन्न होता है। वान डर वाल ने दाब में संशोधन करके आदर्श गैस के अवस्था-समीकरण में थोड़ा परिवर्तन किया*। इस संशोधन का कारण वास्तविक गैसों में अन्तराअणुक अन्योन्यक्रिया की विद्यमानता ही है। अतः इस अन्तराअणुक अन्योन्यक्रिया को वान डर वाल की अन्योन्यक्रिया कहते हैं। यह क्रिया न केवल गैसों के अणुओं के बीच होती है अपितु द्रवों और ठोसों के अणुओं के बीच भी होती है (देखिए अनुच्छेद 16.6)। वान डर वाल की अन्योन्यक्रिया को तीन प्रधान वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(1) द्विध्रुव-द्विध्रुव बलों के कारण अन्योन्यक्रिया
(2) प्रेरित द्विध्रुव बलों (इन्हें प्रेरण बल भी कहते हैं) के कारण अन्योन्यक्रिया
(3) परिक्षेपण बलों के कारण अन्योन्यक्रिया

वान डर वाल की अन्योन्यक्रिया (ऊपर के तीनों में से प्रत्येक) $\frac{1}{r^6}$ की तरह परिवर्तित होती है जिसमें r अणुओं के बीच अन्तराअणुक दूरी है। इन बलों में द्विध्रुव-द्विध्रुव अन्योन्यक्रिया तीनों में सबसे प्रबल है और परिक्षेपण अन्योन्यक्रिया सबसे निर्बल है। स्पष्टतः ये बल $\frac{1}{r^7}$ के अनुपात में परिवर्तित होते हैं।

आगे बढने के पहले यह विचारना लाभप्रद होगा कि इन अन्योन्यक्रियाओं का स्रोत क्या है? यद्यपि अणु के कुल आयतन आवेश शून्य होता है, यह धन और ऋण आवेशों से बना होता है। किन्तु अणु की विद्युतीय उदा-

---

* वान डर वाल ने अणुओं के परिमित आकार के कारण भी एक संशोधन लगाया। हम यहाँ उस पहलू पर विचार नहीं कर रहे हैं।

सीनता के बावजूद उस पर धन और ऋण आवेशों का वितरण एकसमान नहीं होता। अणु मे परमाणुओं की व्यवस्था ऐसी होती है कि धन आवेशों का द्रव्यमान केन्द्र उसी बिन्दु पर नही होता जिस पर ऋण आवेशों का द्रव्यमान केन्द्र होता है।

धन और ऋण आवेशों की परस्पर दूरी के कारण वे एक विद्युतीय द्विध्रुव बनाते हैं। आण्विक द्विध्रुव के द्विध्रुवी आघूर्ण का विद्युत क्षेत्र में आचरण वैसा ही होता है जैसा चुंबक का आचरण चुंबकीय क्षेत्र मे होता है। जिन अणुओं में H_2O की तरह स्थायी द्विध्रुवी आघूर्ण होता है और जो CO_2, O_2, N_2 जैसे एकध्रुवी अणुओं से बिलकुल भिन्न होते हैं उन्हें ध्रुवी अणु कहते है। चूँकि द्विध्रुव-द्विध्रुव अन्योन्यक्रिया प्रबल होती है अतएव सामान्य भौतिक स्थितियों मे ध्रुवी अणु साधारणत: द्रव होते हैं (पानी, ऐलकोहल आदि)।

प्रेरणा और परिक्षेपण बलों की प्रकृति को समझना कठिन है और इस स्थान पर उनकी विवेचना नहीं की जाएगी। तथापि प्रेरण तथा परिक्षेपण बलों की मूलभूत प्रकृति भी द्विध्रुव-द्विध्रुव प्रकार की है। परिक्षेपण बल जो तीनों बलों में सबसे निर्बल है आर्गन आदिकी तरह की एकपरमाणुक गैसों में भी होता है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि अणुओं के बीच की अन्योन्यक्रिया की प्रकृति विद्युतीय होती है। आण्विक
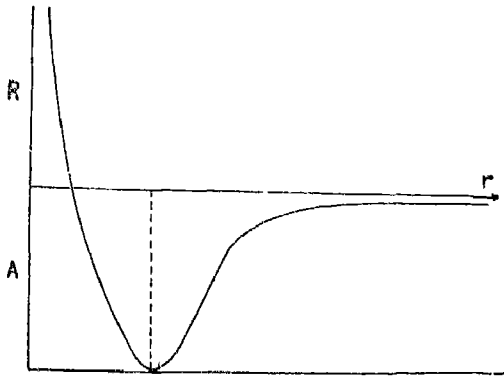
चित्र 12.1 : अन्तराणुक बल की प्रकृति
(A प्रकृतिकर्मी बल; R आकर्मी बल; r दूरी)

बल (1) अधिक दूरियों पर आकर्षी और (2) बहुत कम दूरियों पर अनिवार्यत. प्रतिकर्षी होते हैं। अंतराअणुक बलों की प्रकृति को (चित्र 12 1) में दिखाया गया है। अधिक दूरियों पर दूरी कम होने के साथ अणुओं के बीच के आकर्षी बल मे तेजी के साथ वृद्धि होती है। कभी-कभी यह कल्पना करना सुविधाजनक होता है कि अणु के चारों 10^{-9} मीटर अर्धव्यास का छोटा गोला होता है जिसे अणु का प्रभाव गोलक कहते हैं। चूँकि अन्योन्यक्रिया दूरी के साथ बहुत तेजी से घटती है यह मानना लाभप्रद है कि प्रत्येक अणु अपने प्रभाव गोलक के भीतर के अणुओं पर आकर्षी बल लगाता है और इस गोलक से बाहर के अणुओं के ऊपर के प्रभाव की उपेक्षा की जा सकती है। इस अध्याय के किसी-किसी आरेख में इस गोलक को खंडित रेखाओं के वृत द्वारा दिखाया गया है।

जब अणुओं के बीच की दूरी बहुत कम होती है तो प्रतिकर्षी बल और अधिक शीघ्रता से प्रभावशाली हो जाता है। यदि कोई प्रतिकर्षी बल न होता तो कुल द्रव्य एक बिन्दु पर सिमट जाता। अन्तराअणुक पार्थक्य (दूरी) (r_e) में संतुलन की स्थिति इस प्रकार की होती है कि प्रतिकर्षण तथा आकर्षण की स्थितिज ऊर्जा का मान न्यूनतम होता है। प्रतिकर्षण के इन बलों का स्रोत भी विद्युतीय होता है और अणु को बनाने वाले परमाणुओं के बिन्दु आवेश के कारण होता है।

स्थितिज ऊर्जा का न्यूनतम मान $r_e = 10^{-9}$ मीटर पर होता है और अन्तराअणुक पार्थक्य के कम होने पर प्रतिकर्षी बल बहुत तेजी से लगभग $\frac{1}{r^9}$ के अनुपात में परिवर्तित होता है।

अंतराअणुक बलों और तापीय गति के सम्मिलित प्रभाव से द्रव्य की तीन अवस्थाओं, ठोस, द्रव एवं गैस की उत्पत्ति होती है। ठोसों में आकर्षण का बल काफी प्रबल होता है और तापीय गति उन्हें प्रभावित नहीं कर सकती। ठोसों में अणु एक स्थिति में कम्पन करते रहते हैं। गैसों में अंतराअणुक बल इतने निर्बल होते है कि बहुत सहज ही वे तापीय यादृच्छिक गति द्वारा निष्प्रभावित हो जाते हैं जिससे अणु जहाँ-तहाँ घूमने के लिए मुक्त हो जाते हैं।

द्रवों की अवस्था इन दोनों के बीच की होती है। सरलता के लिए कभी-कभी द्रव की कल्पना घनीभूत गैस जैसी की जाती है। द्रव के अणु न तो स्थायी रूप से किसी संतुलन की स्थिति में रहने को बाध्य होते है न वे दूसरे अणुओं की संगति ही छोड़ने को मुक्त होते है। द्रव के भीतर अणु बिना किसी प्रयास के दूसरे अणुओं के ऊपर से फिसल सकते हैं।

संसंजक और आसंजक बल (Cohesive and Adhesive Forces) : आकर्षी बल जिसका विवेचन ऊपर किया गया है और जो एक ही प्रकार के अणुओं के बीच में होता है संसंजक बल कहलाता है। दो असमान अणुओं के बीच के आकर्षी बल को, उदाहरणतः काँच और पानी के बीच के बल को आसंजक बल कहते है। इस प्रकार के आकर्षकों को क्रमशः संसंजन और आसंजन कहते है। इस तरह हम द्रव की परिभाषा यह दे सकते हैं कि यह द्रव्य की वह अवस्था है जिसमे अणु अपनी स्थिति तो बदल सकते हैं पर अणुओं के बीच के बलों अथवा संसंजक बलों के कारण एक निश्चित आयतन बनाए रखने को बाध्य होते हैं। यह भी ज्ञात है कि यदि हम किसी द्रव को वाष्प मे बदलना चाहे तो हमें कुछ अतिरिक्त ऊर्जा देने की आवश्यकता होती है। दो अणुओं को पृथक् करने के लिए कम से कम अंतराअणुक अन्योन्यक्रिया की ऊर्जा के बराबर ऊर्जा देने की आवश्यकता होती है। हम द्रव के वाष्पन की गुप्त ऊष्मा से उस द्रव के अणुओं की अतरा-अणुक ऊर्जा की गणना कर सकते है।

उदाहरण 12.1 पानी के वाष्पन की गुप्त ऊष्मा 22.6×10^6 जूल/किग्रा है। अन्तराअणुक बन्धन ऊर्जा की गणना कीजिए। (एवोगैड्रो संख्या $N=6\times10^{23}$ प्रति मोल, 1 जूल$=0.62\times10^{19}$ev)।

हल

पानी का अणु भार$=18$

पानी के एक किलोग्राम में अणुओं की संख्या

$$N=\frac{6\times10^{26}}{18}=\frac{10^{26}}{3}$$

पानी के N अणुओं को मुक्त करने की ऊर्जा

$$=22.6\times10^5\times0.62\times10^{19}\text{ev}=1.4\times10^{25}\text{ev}$$

अणुओं की अंतराअणुक ऊर्जा का मान

$$=\frac{(1.4\times10^{25}\times3)}{10^{26}}\text{ev}$$

$$=0.4\text{ev}$$

12.2 पृष्ट-तनाव (Surface Tension)

एक मृत मक्खी अथवा भृंग पानी मे डुबोने पर वह उसके पेंदे तक डूबते चले जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि भृंग का औसत घनत्व पानी की अपेक्षा अधिक है। फिर भी प्रकृति में हम बड़े आकार के जल-भृंगों को झीलों की सतह पर बिना अपने पैरों को भिगोये तैरते हुए देखते हैं। कपड़ा सीने की सुई को सावधानीपूर्वक पानी के पृष्ठ पर रखने पर वह पृष्ठ पर तैरती है यद्यपि सुई के द्रव्य का घनत्व पानी के घनत्व का लगभग आठ गुना है। ड्रापर से धीरे-धीरे द्रव गिराने पर द्रव अनवरत धार के रूप में नहीं गिरता अपितु छोटी-छोटी बूँदों के क्रम मे निकलता है। वर्षा की बूँदों, कोहरे की बूँदों,साबुन के बुलबुलों आदि की आकृति हवा मे गिरते समय गोल होती है। ये और इसी प्रकार की अन्य घटनाएँ द्रव और किसी अन्य पदार्थ के बीच के परिसीमा पृष्ठ से सम्बद्ध है। अब हम द्रव के पृष्ठ के गुणों पर विचार करें।

अणुओं की अन्योन्यक्रिया पर विचार करते समय हमने देखा कि द्रवों की अपनी कोई आकृति नहीं होती जैसी ठोसों की होती है। द्रव के अणुओं के बीच अन्योन्य-क्रिया होती है यद्यपि यह क्रिया निर्बल होती है। जिस बर्तन में द्रव को रखा जाता है वह उसी बर्तन की आकृति को ग्रहण कर लेता है। चौड़े बर्तन में रखने पर गुरुत्वाकर्षण के कारण द्रव का पृष्ठ क्षैतिज होता है। आसंजक बलों के कारण बर्तन की दीवारों के पास द्रव के पृष्ठ की आकृति विकृत हो जाती है। अतः पतली नलिकाओं में द्रव का पृष्ठ या तो अवतल अथवा उत्तल हो जाता है। परन्तु चौड़े बर्तनों में, जैसा ऊपर कहा गया है, विकृति जो केवल परिसीमा पर होती है नगण्य होती है और द्रव का पृष्ठ चौरस रहता है। अंतराअणुक (अथवा संसंजक) बलों का विवेचन अनुच्छेद 12.1 में किया गया है। इससे
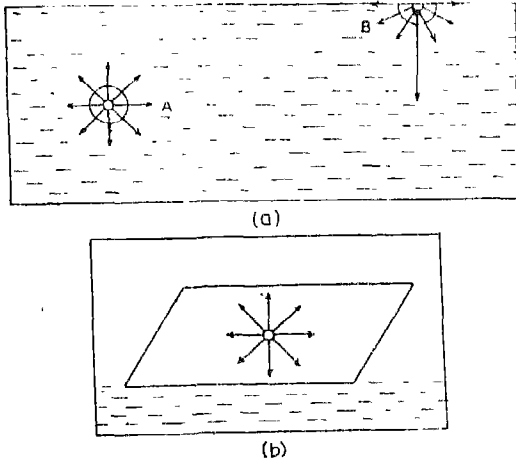
चित्र 12.2 : (a) द्रव के भीतर एक अणु
(b) द्रव के पृष्ठ पर एक अणु

द्रवों के रोचक आचरण की व्याख्या होती है (चित्र 12.2 a)। द्रव का प्रत्येक अणु उसी प्रकार के अन्य अणुओं द्वारा चारों ओर से घिरा रहता है। अतः ऐसे अणु पर परिणामी बल शून्य के बराबर होता है। द्रव के भीतर सभी अणु लगभग इसी प्रकार की परिस्थिति मे रहते हैं और उनकी स्थितिज ऊर्जा लगभग एक सी होती है। अतः द्रव के भीतर ये अणु एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना कोई कार्य किए फिसल सकते हैं। जब हम पृष्ठ पर के किसी अणु पर विचार करते है तब स्थिति भिन्न होती है। पृष्ठ पर का अणु B नीचे की ओर के अणुओं के द्वारा आकृष्ट होता है परन्तु पृष्ठ के ऊपर की ओर से कोई आकर्षक बल नहीं होता (वाष्प के अणुओं द्वारा आकर्षण को नगण्य माना जा सकता है)। अतः पृष्ठ पर का अणु नीचे की ओर से सभी दिशाओं में अन्य अणुओं द्वारा आकृष्ट होगा। इन सभी बलों के नीचे की ओर के घटकों पर हम विचार कर सकते है। परिणामी फल यह होगा कि पृष्ठ पर के प्रत्येक अणु पर ऊर्ध्वाधर दिशा में द्रव के भीतर नीचे की ओर एक खिंचाव होता है। नीचे की ओर के इस बल के कारण पृष्ठ पर के किसी अणु की स्थितिज ऊर्जा द्रव के भीतर के अणु की स्थितिज ऊर्जा से अधिक होती है। इसके फलस्वरूप द्रव के पृष्ठ की प्रवृत्ति अधिक से अधिक सिकुड़ने की होती है। दूसरे शब्दों में द्रव का पृष्ठ तनाव मे होता है। चित्र 12.2 b में यह दिखाया गया है कि पृष्ठ पर का एक अणु पृष्ठ के तल पर के आस-पास के अणुओं द्वारा सभी दिशाओं में संयमित रूप से आकर्षित होता है। अणु पर परिणामी बल शून्य है परन्तु पृष्ठ की प्रकृति एक तनी हुई झिल्ली की तरह होती है। झिल्ली के पृष्ठ के इस तनाव को पृष्ठ पर खींची हुई एक काल्पनिक रेखा की इकाई लम्बाई के आर-पार लगने वाले बल द्वारा मापा जाता है। अतः द्रव के पृष्ठ-तनाव की परिभाषा पृष्ठ को स्पर्श करती हुई एक काल्पनिक रेखा की इकाई लम्बाई पर आरोपित बल द्वारा की जाती है। स्पर्श रेखा और बल परस्पर अभिलम्ब होते हैं। पृष्ठ-तनाव के मात्रक को सी. जी. एस (C. G. S.) प्रणाली में डाइन प्रति सेमी और एम. के. एस (M.K S) प्रणाली मे न्यूटन प्रति मीटर (Nm^{-1}) में मापा जाता है।

सारणी 12.1
कुछ द्रवों के पृष्ठ-तनाव

द्रव	संस्पर्शी पदार्थ	न्यूटन/मीटर $\times 10^{-3}$
जैतून का तेल	वायु	35
बेंजीन	वायु	29
ग्लिसरीन	वायु	63
पानी	वायु	75
पारा	वायु	35

उदाहरण के लिए हम देखते है कि खटमल पृष्ठ-तनाव के कारण पानी के पृष्ठ पर तैरता रहता है। खटमल (चित्र 12.3) अपनी टाँगों को पानी के पृष्ठ पर
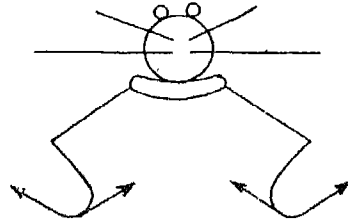
चित्र 12.3 : पृष्ठ-तनाव द्वारा पानी के पृष्ठ पर तैरता हुआ खटमल

इस प्रकार मोड़ता है कि पानी के विकृत पृष्ठ के कारण पृष्ठ-तनाव के बल चित्र 12.3 में दिखलाई दिशाओं में होते हैं। खटमल का भार उत्प्लावकता के कारण निष्प्रभावित नहीं होता अपितु विकृत पृष्ठ की स्पर्शरेखीय दिशा में लगे पृष्ठ-तनाव के कारण लगे बलों के ऊपर की दिशा की ओर के घटको के कारण निष्प्रभावित होता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है पृष्ठ-तनाव को समझने के लिए दूसरा उदाहरण यह है कि द्रवों की प्रकृति एक विशिष्ट गोल स्वरूप प्राप्त करने की होती है। द्रव की बूंद के भीतर का प्रत्येक अणु अपने चारों ओर के अन्य अणुओं द्वारा घिरा रहता है। अतः अणु A (चित्र 12.4)को बूंद के भीतर से बाहर निकालने के लिए आस-

चित्र 12.4 A. : बूंद के भीतर एक अणु
B. बूंद के पृष्ठ पर एक अणु
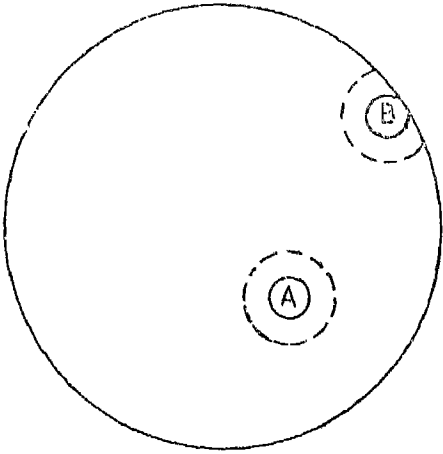
पास के अन्य अणुओं के आकर्षण के विरुद्ध कार्य करना पड़ेगा। चूँकि इस अणु को बूंद से बाहर निकालने में कुछ कार्य करना पड़ता है, स्पष्टतः जब यह अणु बूंद के अन्दर था तब निश्चय ही इसकी स्थितिज ऊर्जा का कुछ निश्चित परिमाण रहा होगा। यह स्थितिज ऊर्जा ऋणात्मक होगी। माना इसका मान—E_i था। अब यही प्रक्रिया दूसरे अणु B के साथ दोहरायें जो बूंद के बाहरी पृष्ठ पर है। चूँकि यह अणु बाहरी पृष्ठ पर है अतः यह अन्दर की ओर के अणुओं को छोड़ कर अन्य दिशा में अणुओं से घिरा नहीं है। अतः इस अणु को बाहर लाने में पहले की अपेक्षा कम कार्य करना पड़ेगा। मान लिया कि पृष्ठ पर के इस अणु B की ऊर्जा- E_s है। स्पष्ट है कि $|E_s| < |E_i|$ अथवा $-E_s > -E_i$ अर्थात् बूंद के अन्दर की अपेक्षा पृष्ठ पर ऊर्जा धनात्मक है। हम जानते है कि प्रत्येक भौतिक तंत्र अपनी न्यूनतम ऊर्जा की स्थिति मे आ जाता है यदि वह उच्च ऊर्जा के अपने अणुओं को कम कर सके अर्थात् अपनी कुल ऊर्जा को कम कर सके (जैसे कोई मोटर गाडी पहाड़ी से नीचे की ओर लुढ़कती है, एक गर्मपिंड ठंडा होता है, आदि)। अतः द्रव अपने पृष्ठ को जहाँ तक संभव हो कम से कम करने का पूरा प्रयत्न करेगा। वह ज्यामितीय आकृति जिसका पृष्ठ दिए आयतन के लिए न्यूनतम होता है, गोलक है। अतः द्रव जहाँ तक संभव हो गोल आकृति धारण करने का प्रयास करते है। गोल आकृति से भिन्न स्वरूप बूंद के भार के कारण और आसंजन बलों (विद्यमान हों तो) के कारण होता है। यह देखा जाता है कि ज्यों ही पानी की बूंद काँच की किसी पट्टिका पर गिरती है वह चपटी हो जाती है। ऐसा काँच के अणुओं और पानी के अणुओं के बीच के आसंजन बल के कारण होता है।

12 3 पृष्ठ ऊर्जा (Surface Energy)

हमने देखा कि द्रव के पृष्ठ पर के अणु अन्दर की ओर आकृष्ट होते है (जैसे ताक पर रखा भार गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी की ओर खिचता है) और उनमें स्थितिज ऊर्जा होती है। जब अणु द्रव के भीतर की ओर जाता है तब इसकी ऊर्जा में क्षति होती है। इस प्रकार चूकि द्रव के पृष्ठ के अणु की स्थितिज ऊर्जा द्रव के बहुत भीतर के अणु की स्थितिज ऊर्जा की अपेक्षा अधिक होती है, अतः द्रव के पृष्ठ को बनाने के लिए कुछ कार्य करने की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों मे यदि हम किसी अणु को द्रव के भीतर से पृष्ठ तक लाना चाहें तो अन्दर की ओर के आकर्षण के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है। अतः यदि हम पृष्ठ उत्पन्न करना चाहें अर्थात् यदि हम पृष्ठ पर के अणुओं की संख्या को बढ़ाना चाहते है तो हमें कार्य करना पड़ेगा। पृष्ठ उत्पन्न करने के लिए आवश्यक ऊर्जा को पृष्ठ ऊर्जा कहते है। एक सरल प्रयोग की सहायता से
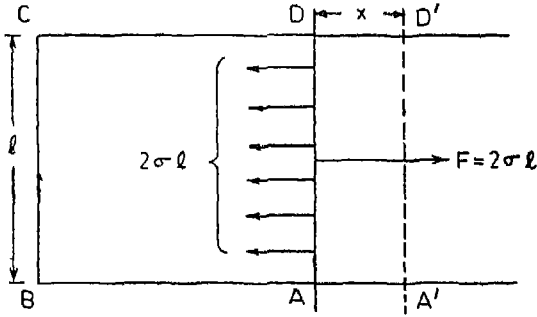
चित्र 12.5 : परत के क्षेत्रफल की बढ़ोत्तरी

इस ऊर्जा की गणना कर सकते हैं। इसके लिए तार का एक आयताकार फ्रेम लेते हैं। फ्रेम की भुजा AD फ्रेम में जड़ी नहीं है अपितु भुजा CD और भुजा BA के ऊपर खिसक सकती है। सावधानी से फ्रेम को साबुन के घोल मे डुबाया जाता है जिससे एक पतली परत ABCD बन सकें। मान लिया खिसकने वाली भुजा AD की लंबाई l है (चित्र 12.5) तथा द्रव का पृष्ठ-तनाव σ है। अतः पृष्ठ-तनाव की परिभाषा के अनुसार तार पर लगे बल का मान $F=\sigma\ 2\ l$ होगा; क्योंकि परत के दो पृष्ठ हैं। यदि AD को x दूरी तक खिसकाकर एक नई स्थिति A′D′ में लायें तो परत के पृष्ठ के क्षेत्रफल मे वृद्धि,

$$\triangle S = 2lx$$

क्षेत्रफल $\triangle S$ को उत्पन्न करने में किया गया कार्य

$$W = F \times x$$
$$= 2\sigma l x$$
$$= \sigma \triangle S$$
$= \sigma \times$ परत के क्षेत्रफल में वृद्धि

इस प्रकार परत के क्षेत्रफल को इकाई परिमाण में बढाने के लिए किया गया कार्य द्रव के पृष्ठ-तनाव के बराबर होता है। अतः इसे प्रति इकाई क्षेत्रफल मुक्त पृष्ठ ऊर्जा भी कहते हैं। वास्तविक व्यवहार में AD तार पर कार्य करने वाले बल को कमानीदार तुला के द्वारा मापा जा सकता है (चित्र 12.6)। ABCD की तरह के तार के फ्रेम को तुला के अँकुड़े से लटकाइये। भुजा CD को फ्रेम से जड़ दिया जाता है और फिसलने के लिए मुक्त नहीं है। ज्योंही भुजा CD को बीकर में रखे द्रव के पृष्ठ के सम्पर्क में लाया जाता है तार नीचे की ओर खिंचता
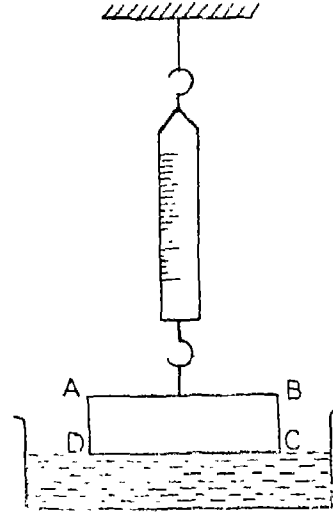
चित्र 12.6 : पृष्ठ-तनाव के बल की नाप

है। यह बल कमानीदार तुला द्वारा मापा जा सकता है। यह पाया जायगा कि कमानीदार तुला पर लगा बल $2\sigma\ l$ के बराबर है।

उदाहरण 12.2 : जब पारे की दो बूंदों को संपर्क में लाया जाता है तब वे मिलकर एक बूद बनाती है। इसकी व्याख्या कीजिए।

हल :

मान लिया कि प्रत्येक बूंद का अर्धव्यास r है तो प्रत्येक बूंद का आयतन $\frac{4}{3}\pi r^3$ होगा।

प्रत्येक बूँद के पृष्ठ का क्षेत्रफल $= 4\pi r^2$

दोनों बूँदों द्वारा बने तंत्र की कुल पृष्ठ ऊर्जा $= 8\pi r^2\sigma$

जिसमें σ पारे का पृष्ठ-तनाव है।

जब दोनों बूँदें परस्पर मिलती हैं तब उत्पन्न बूँद के आयतन के लिए समीकरण है $= \frac{4}{3}\pi R^3$
$$= \frac{8}{3}\pi r^3$$

जिसमें R परिमापी बूँद का अर्धव्यास है।

अतः $R = 2^{1/3} r$ तथा

बनी एक बूँद की पृष्ठ ऊर्जा $= 4\pi r^2 2^{2/3}\sigma$

अतः बनी बड़ी बूँद की पृष्ठ ऊर्जा दोनों छोटी बूँदों की कुल पृष्ठ ऊर्जा से कम है। चूँकि प्रत्येक भौतिक तंत्र

का प्रयत्न न्यूनतम ऊर्जा प्राप्त करने का होता है, अतः संपर्क में आने वाली बूँद मिलकर एक बूँद बनाती है ।

इसके विपरीत यदि आप द्रव की किसी बूँद को छोटी बूँदों में परिवर्तित करना चाहते हैं तो आपको कार्य करना पडेगा ।

पृष्ठ-तनाव के न्यून मान के कारण द्रव को पतली परत के रूप में फैलने मे सहायता मिलती है क्योंकि निम्न पृष्ठ ऊर्जा के कारण फैलना सहज होता है । न्यून पृष्ठ-तनाव के कारण द्रवों को संकरे स्थानों और रंध्रों में घुसना सहज होता है । पानी का पृष्ठ-तनाव अपेक्षाकृत ऊँचा होता है । परन्तु यदि इसमे कोई अपमार्जक मिलाया जाए तो पृष्ठ-तनाव कम हो जाता है । इससे घोल के साफ करने के गुण मे वृद्धि हो जाती है क्योंकि अब उन रंध्रों मे भी घोल घुस सकता है जहाँ पानी नही जा सकता था ।

अभी तक हमने द्रव के मुक्त पृष्ठ पर ही विचार किया है । परन्तु द्रव का पृष्ठ सर्वदा किसी ठोस, किसी वाष्प अथवा किसी अन्य द्रव के संपर्क मे रहता है । एक तंत्र पर विचार करे जिसमें एक ठोस S और एक द्रव
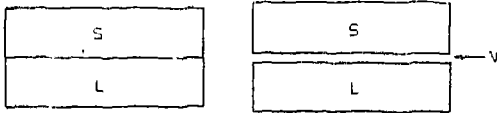
चित्र 12.7 : एक तंत्र जिसमें ठोस S,द्रव L और वाष्प V है

L है (चित्र 12.7) । मान ले कि आरंभ में वे संपर्क में है और फिर उन्हे अलग किया जाता है । मान लें कि उन्हें अलग करने के लिए आवश्यक ऊर्जा W_{SL} प्रति इकाई क्षेत्रफल है । अलग होने के पहले अन्तरापृष्ठ की स्थितिज ऊर्जा σ_{SL} प्रति इकाई क्षेत्रफल के बराबर है (σ_{SL} ठोस-द्रव परत का पृष्ठ-तनाव है) । पृथक होने के पश्चात ठोस और वाष्प के बीच की ऊर्जा प्रति इकाई क्षेत्रफल σ_{SV} है (σ_{SV} ठोस-वाष्प परत का पृष्ठ-तनाव है) और द्रव तथा वाष्प के बीच की ऊर्जा प्रति इकाई क्षेत्रफल σ_{LV} है (σ_{LV} द्रव वाष्प परत का पृष्ठ-तनाव है) । तंत्र की आरंभिक ऊर्जा तथा ठोस और द्रव को अलग करने के लिए तंत्र पर किए गए कार्य का योग पृथक् होने के पश्चात् उनकी कुल ऊर्जा के बराबर है । अतः हम पाते है कि—

$$\sigma_{SL}+W_{SL}=\sigma_{SV}+\sigma_{LV} \quad \ldots(12.1)$$

12.4 स्पर्श कोण (Angle of Contact)

द्रव को किसी बर्तन मे रखना होता है । बर्तन के अणु द्रव के अणुओं से भिन्न होते है । बर्तन की दीवारों पर तीन पृष्ठों की परते बनती है अर्थात् द्रव-वाष्प परत, ठोस-वाष्प परत और द्रव वाष्प परत । परतों की मोटाई
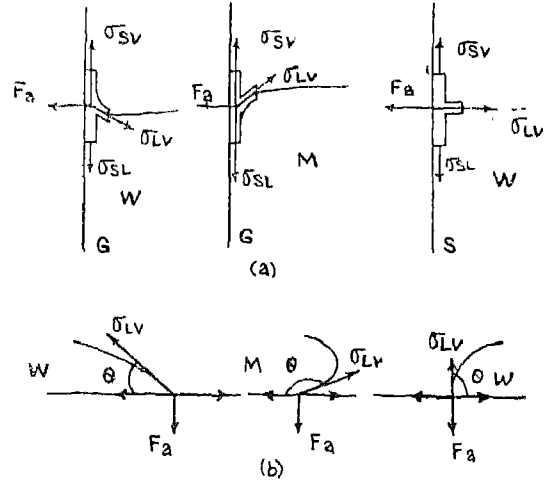
चित्र 12.8 : (a) बर्तन की दीवार के समीप द्रव की परत W—पानी, M—पारा, S—चांदी, G — काँच को प्रदर्शित करते हैं ।
(b) पृष्ठ पर द्रव की एक बूंद ।

केवल कुछ अणुओं के बराबर होती है । प्रत्येक परत के साथ उसका अपना उचित पृष्ठ-तनाव सम्बन्द्ध होता है (चित्र 12.8) । ठोस की दीवार के पास द्रव के पृष्ठ की वक्रता (अथवा पृष्ठ पर द्रव के बूँद की आकृति) σ_{SV} और σ_{SL} के अंतर पर निर्भर करती है । दीवार पर तीनों परतें मिलती हैं । यदि संधि स्थान पर तीनों परतों के एक छोटे टुकड़े को पृथक् करें और कल्पना करे कि परतों को आरेख के अभिलंब इकाई दूरी से बढ़ाया जाता है तो अलग किया भाग चार बलों के बीच संतुलन की

स्थिति में होगा। इनमे से तीन बल तीनों परतों के पृष्ठ-तनाव हैं। चौथा बल परत के अलग किए हुए भाग और दीवार के बीच आसंजन बल F_a है। संतुलन की अवस्था के फलस्वरूप हमें मिलता है कि—

$$\sigma_{LV} \sin\theta = F_a$$
$$\sigma_{LV} \cos\theta = \sigma_{SV} - \sigma_{SL}$$

जिसमें θ द्रव के भीतर σ_{SV} और σ_{SL} के बीच कोण है। इसे स्पर्श-कोण कहते है। $\sigma_{SV} - \theta_{SL}$ के विलोपन से

$$W_{SL} = \sigma_{LV} \quad (1+\cos\theta) \qquad ...(12.2)$$

यदि द्रव और ठोस को पृथक् करने के लिए प्रति इकाई क्षेत्रफल कार्य द्रव-वाष्प परत के पृष्ठ-तनाव से अधिक हो तो स्पर्श-कोण θ न्यून कोण होगा अर्थात् जब $W_{SL} > \sigma_{LV}$ तब $\theta < 90°$ और जब $W_{SL} < \sigma_{LV}$ तब $\theta > 90°$।

जब पानी को काँच की पतली नली में लिया जाता है तब पानी का नवचन्द्रक (तल) अवतल होता है किन्तु पारे के लिए यह उत्तल होता है। ऐसा इस कारण होता है कि काँच के पृष्ठ से पानी के इकाई पृष्ठ को अलग करने में किया गया कार्य पानी और वाष्प की परत के पृष्ठ तनाव से अधिक होता है। एक अन्य प्रकार से इसकी व्याख्या यह है कि पानी-काँच-पानी-वाष्प तंत्र के लिए $\sigma_{SV} > \sigma_{SL}$ है। पारा-कांच-पारा-वाष्प तंत्र के $\sigma_{SV} < \sigma_{SL}$ और स्पर्श-कोण अधिक कोण होता है। इस प्रकार काँच में पारे का नवचंद्रक उत्तल है। जब पानी को चाँदी के पात्र में रखा जाता है तब $\sigma_{SV} \approxeq \sigma_{SL}$; और θ का मान 90° है।

यदि θ का मान कम होता है तो ठोस का पृष्ठ गीला हो जाता है। परन्तु द्रव में अशुद्धियां अथवा अप-मिश्रण विद्यमान हों या डाले जाए तो स्पर्श कोण काफी बदल जाता है। कपड़े पर जलरोधी (वाटरप्रूफ) पदार्थों को डालने से इन कपड़ों के साथ पानी का स्पर्श-कोण 90° से अधिक हो जाता है।

12.5 पृष्ठ की परत के आर-पार दाब में अन्तर (Pressure Difference Across a Surface Film)

जब द्रव का मुक्त पृष्ठ समतल होता है (चित्र 12.9) तब पृष्ठ पर के अणुओं पर पृष्ठ-तनाव के कारण परिणामी बल शून्य होता है। यदि पृष्ठ वक्रित हो तो पृष्ठ पर अभिलम्ब दिशा मे एक परिणामी बल होता है। उत्तल पृष्ठ के लिए परिणामी बल की दिशा द्रव के अन्दर की ओर होती है (चित्र 12.9)। इस पृष्ठ को संतुलन में रखने के लिए पृष्ठ के द्रव की ओर का दाब वाष्प की ओर के दाब से अधिक होना चाहिए अर्थात् $P_L > P_V$ है। इसी प्रकार यह दिखलाया जा सकता है कि अवतल पृष्ठ के लिए $P_V > P_L$ होता है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि परत की अवतल दिशा की ओर दाब का मान उत्तल दिशा की ओर के दाब से सर्वदा अधिक होता है।

ऊपर जो तर्क दिया गया है उससे स्पष्ट है कि जब कभी द्रव का पृष्ठ वक्रित होता है तब पृष्ठ के भीतर और बाहर के दाबों में अंतर होता है। उदाहरण के लिए द्रव
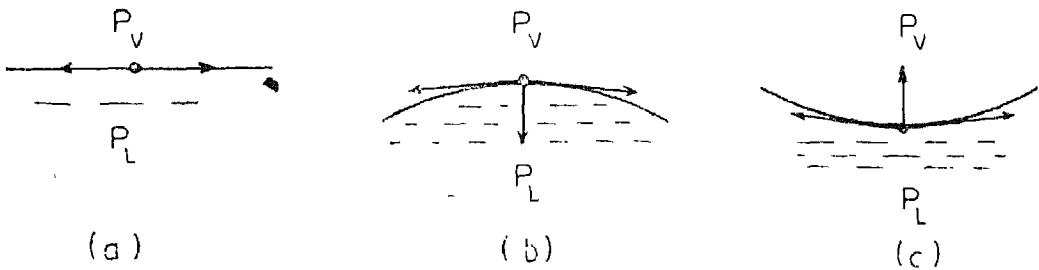
चित्र 12.9 : पृष्ठ पर की परत के आर-पार दाब का अंतर (a) समतल पृष्ठ (b) उत्तल पृष्ठ (c) अवतल पृष्ठ

की गोल बूंद पर विचार करें जिसका अर्धव्यास R है। गोल आकृति के कारण बाहर के वायुमंडलीय दाब की अपेक्षा द्रव के भीतर दाब अधिक होगा। मान लिया दाब का अंतर P है और इस द्रव की बूंद का अर्धव्यास R से R+dR तक बढ़ाते हैं। इससे बूंद के पृष्ठ का क्षेत्रफल S से बढ़ कर S+dS हो जाएगा। चूंकि $S=4\pi R^2$ है अत: $dS=4\pi RdR$। पृष्ठ तनाव की परिभाषा के अनुसार क्षेत्रफल बढाने मे किया गया कार्य σdS है। चूंकि किया गया कार्य बल और बल द्वारा तय की गयी दूरी के गुणनफल के बराबर भी है और बल का मान, दाब × क्षेत्रफल भी है,

अत: $$P\times 4\pi R^2 dR=\sigma 8\pi RdR$$

अथवा $$P=\frac{2\sigma}{R} \qquad ...(12\ 3)$$

इस फल से हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि यदि पृष्ठ-तनाव अचर रहे तो R का मान जितना कम होगा दाब का मान उतना ही अधिक होगा। इस विशाल आंतरिक दाब के कारण कोहरे की अत्यन्त छोटी बूंदों में ठोसों की तरह अनम्यता के गुण होते हैं। जिस सुगमता से स्केट चिकनी बर्फ के ऊपर फिसलते हैं वह इसका अच्छा उदाहरण है। स्केट की धातु के तेज किनारे द्वारा बर्फ पर भारी दाब के कारण बर्फ गल जाती है और सूक्ष्म बूंदो पर धावक इस तरह दौड़ते है जैसे उनके पैरों में बाल बेयरिंग लगे हों।

उदाहरण 12.3 : साबुन के एक बुलबुले का व्यास 5 मिमी है। उसके भीतर और बाहर के दाबों के अंतर की गणना कीजिए। यह मान लीजिए कि पृष्ठ-तनाव का मान 1 6 न्यूटन प्रतिमीटर है।

द्रव की बूंद में केवल एक परत होती है। इसके विपरीत बुलबुले के भीतर हवा होने के कारण उसमें भीतरी और बाहरी दो परतें होती है। दो गोलीय पृष्ठों के कारण साबुन के बुलबुले के अन्दर के अतिरिक्त दाब को निम्नलिखित संबंध द्वारा प्रकट किया जा सकता है

$$P_{\text{अधिक}}=\frac{4\sigma}{R}$$

$$=\frac{4\times 1{\cdot}6\ \text{न्यू.मी.}^{-1}}{2.5\times 10^{-3}\ \text{मी.}}=2560\ \text{न्यू. मी.}^{-2}$$

12.6 केशिकात्व (Capillarity)

पृष्ठ-तनाव का सबसे सुविदित उदाहरण पतले काट की खुली नलिकाओं में द्रव का चढना है। इस प्रकार के प्रभावों का वर्णन करने के लिए केशिकात्व' शब्द का
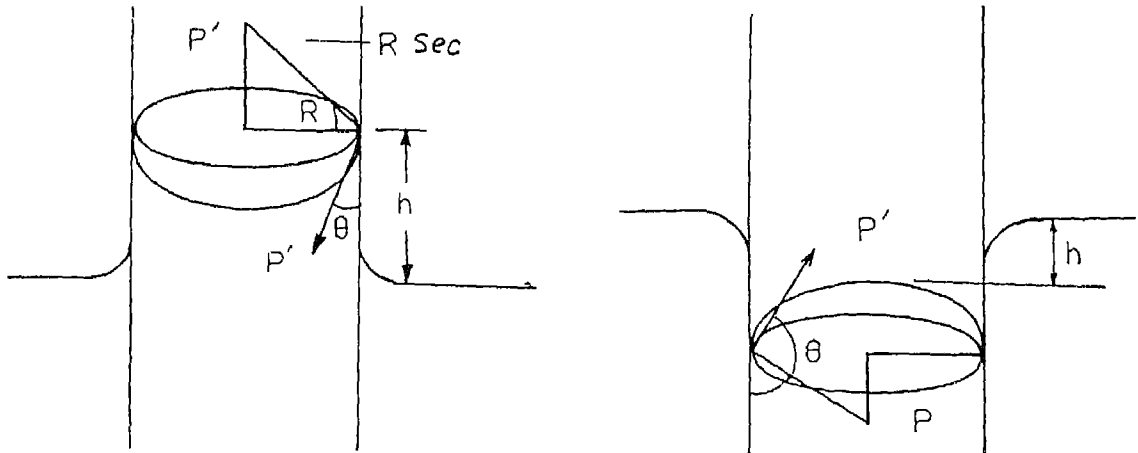
चित्र 12.10 : केशिका के भीतर का स्तम्भ

उपयोग किया जाता है। इस शब्द की उत्पत्ति पतली नलिकाओं के केशिका नाम से है। केशिका का अर्थ है 'केश की तरह' (चित्र 12.10)। ऐसे द्रव के लिए जो नलिका को आर्द्र करता है स्पर्श कोण का मान 90° से कम होता है और द्रव नलिका में तब तक ऊपर उठता है जब तक कि वह संतुलन की ऊंचाई h तक न पहुंच जाय। जब स्पर्श कोण 90° से अधिक होता है तब पारे की तरह द्रव केशिका नली में नीचे गिर जाता है। यदि नवचंद्रक के पृष्ठ के अवतल दिशा की ओर दाब P है और उत्तल दिशा की ओर दाब P′ है तो $P' = P - \frac{2\sigma}{R}$ (समीकरण 12.3 से)। हम सरलता से देख सकते है कि,
$P - P' = h'$ ऊंचाई के द्रव के स्तंभ के कारण दाब।

काँच की केशिका में जो द्रव अवतल नवचन्द्रक बनाता है उसके लिए P वायुमंडलीय दाब है और चूँकि P′ का मान P से कम है, अतः केशिका में द्रव इतनी ऊँचाई तक ऊपर उठेगा कि पानी के स्तम्भ का दाब इसके आधार पर P − P′ के बराबर हो जाये। यदि स्पर्श कोण θ है और केशिका का अर्धव्यास R है तो नवचन्द्रक का अर्धव्यास R Sec 0 होगा। अतः दाब के अधिक्य का मान होगा :

$$P - P' = 2\sigma / R \text{ Sec } \theta$$

अतः $2\sigma \cos\theta / R = h\rho g$ (ρ द्रव का घनत्व)

अथवा
$$h = \frac{2\sigma \cos\theta}{R\rho g} \qquad \ldots(12.4)$$

यहाँ हम ने नवचन्द्रक के अल्प आयतन को नगण्य मान लिया है। पानी के लिए $\theta = 0$ है और

$$h = \frac{2\sigma}{R\rho g}$$

केशिका में द्रव के अवनमन के लिए भी यही समीकरण हैं।

यदि हम किसी द्रव के लिए स्पर्श कोण माप सकें तो हम उसका पृष्ठ तनाव माप सकते है। केशिका नली में द्रव का चढ़ान तथा उसका अर्धव्यास चल-सूक्ष्मदर्शी द्वारा मापे जाते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिए कि द्रव में डालने के पहले नलिका को साफ कर लिया जाए। यदि नलिका के भीतरी पृष्ठ पर कोई मैल होगी तो इससे स्पर्श-कोण बदल जाएगा और इस तरह माप में त्रुटि आ जायगी। केशिकात्व की घटना के कारण ही दीप की बत्ती में तेल ऊपर चढ़ता है और सोखता स्याही को सोख लेता है, आदि। यदि केशिका नली की ऊँचाई समीकरण 12.4 में दिए मान से कम हो तो ऐसा नहीं होता कि पानी ऊपर की ओर उठता चला जाए और नलिका के सिरे से फुहारे के रूप में बह निकले। नलिका की उच्चतम परिरेखा पर नलिका की दीवारों को पानी स्पर्श करता नहीं रहेगा जिससे नवचन्द्रक की आकृति बदल जाएगी और उसकी वक्रता त्रिज्या ऐसी होगी कि कम ऊँचाई पर ही जल-स्तम्भ संतुलन में रखा जा सके।

12.7 द्रवों का प्रवाह (Flow of Liquids)

गर्मी के दिनों में नदियों और नहरों का पानी स्थिर रूप से बहता प्रतीत होता है। बाढ के दिनों में उन्हीं नदियों में जल का प्रवाह बहुत अस्थिर हो जाता है। पानी के पृष्ठ पर भँवरे और गर्त उत्पन्न होते है। यदि किसी बर्तन मे रखे द्रव को विलोड़ित करके छोड़ दिया जाए तो थोड़ी देर में द्रव की गति समाप्त हो जाएगी। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विभिन्न परिस्थितियों में द्रव का प्रवाह भिन्न-भिन्न रूप से होता है। द्रवों के प्रवाह में यह आवश्यक नहीं है कि किसी क्षण पर द्रव के सभी अणुओं का वेग एक ही हो। अणु अथवा अणुओं की परतें एक दूसरे की अपेक्षा भिन्न-भिन्न वेगों से प्रवाहित हो सकती है। विभिन्न आण्विक परतो के बीच आपेक्षिक गति के कारण उनके बीच घर्षण बल उत्पन्न होता है जिससे द्रव के गति में प्रतिरोध पैदा होता है। प्रतिरोध के इस गुण को श्यानता कहते हैं। अतः द्रव की एक परत को उसकी दूसरी परत पर फिसलने के लिए एक बाह्य बल की आवश्यकता होती है जिससे द्रव में एकसमान प्रवाह हो सके।

अब मान लें कि द्रव के कण गतिशील हैं। जब किसी निश्चित बिन्दु पर द्रव का वेग प्रत्येक समय पर अचर हो जाता है तब यह कहाजाता है कि द्रव की गति अपरिवर्ती है। अपरिवर्ती प्रवाह में जो कोई भी कण किसी बिन्दु A से गुजरता है उसका एक निश्चित वेग V_A होता है (चित्र 12.11)। जब एक कण बिन्दु A से V_A वेग से चला जाता है तब
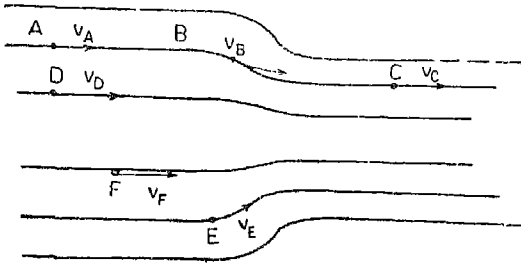
चित्र 12.11 : द्रव का अचर प्रवाह

वहाँ दूसरा कण आता है। जब यह कण भी A से जाता है तब इसका वेग भी V_A होता है। ऐसा ही द्रव के प्रत्येक विन्दु पर होता है अर्थात् द्रव का कोई कण जब किसी अन्य विन्दु B से जाता है तब उसका वेग V_B होता है, जब बिन्दु C से जाता है तब वेग V_C होता है, जब बिन्दु D से जाता है तब उसका वेग V_D होता है, इत्यादि।

मान लिया कि अपरिवर्ती प्रवाह में द्रव का कोई कण पथ ABC से होकर जाता है। यदि इससे पहले आने वाले द्रव के कण और इसके बाद में आने वाले कण भी इसी पथ से जाएं तो यह पथ धारा-रेखा अथवा प्रवाह-रेखा कहलाता है। प्रवाह-रेखा द्रव के कणों के वेग के समान्तर होती है। दो प्रवाह-रेखाएँ एक-दूसरे को काट नहीं सकती। प्रवाह-रेखा गमन तभी संभव होता है जब द्रव का वेग बहुत कम होता है और किसी पथ पर वेग में बहुत अधिक आकस्मिक परिवर्तन न हो। यदि वेग ऊँचा हो अथवा वेग में परिवर्तन बहुत बार और बहुत आकस्मिक हो तो गति प्रवाह-रेखीय नहीं रह जाती है।

श्यानताहीन द्रवों के लिए पाइप के किसी काट में सभी कणों का वेग बराबर होता है और द्रव एक इकाई
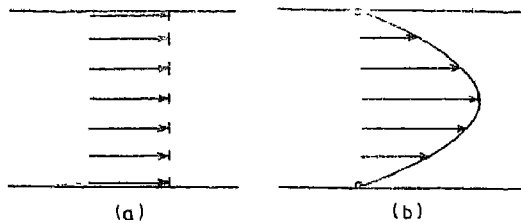
चित्र 12.12 : पाइप के भीतर से द्रव का प्रवाह
(a) श्यानताहीन द्रव
(b) श्यान द्रव

के रूप में पाइप मे आगे बढ़ता है। वेग सदिशों के शीर्षों द्वारा बनाया गया पृष्ठ समतल होता है और द्रव प्रवाह की विशिष्टता समतल वेग पार्श्विका की होती है (चित्र 12.12 a)। जब द्रव श्यान होता है और वेग अधिक नही होता तब प्रवाह अप्रक्षुब्ध होता है (द्रव की परत एक दूसरे पर फिसलती है)। वेग की पार्श्विका ऐसी होती है जैसी चित्र 12.12 b में दिखायी गयी है। पाइप के अक्ष पर वेग अधिकतम होता है और दीवार पर वेग शून्य होता है। जब वेग का मान एक निश्चित क्रान्तिक मान से अधिक हो जाता है तब प्रवाह की प्रकृति बहुत जटिल हो जाती है। इस स्थिति में संपूर्ण द्रव मे यत्र तत्र अनियमित स्थानीय वृत्तीय धारायें उत्पन्न हो जाती है जिन्हें भँवर कहते है तथा प्रवाह का प्रतिरोध बहुत बढ़ जाता है। इस प्रकार के प्रवाह को प्रक्षुब्ध प्रवाह कहते है।

प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि पाइप के भीतर श्याम द्रवों के प्रवाह की प्रकृति का निर्धारण चार अवयवों के संयुक्त संयोजन द्वारा होता है। इस संयोजन को रेनाल्ड्स संख्या N_R कहते हैं जिसको निम्नलिखित रूप मे परिभाषित किया जाता है।

$$N_R = \frac{\rho VD}{\eta} \qquad \cdots\cdots(12.5)$$

यहाँ ρ द्रव का घनत्व है, V इसका औसत वेग है, D पाइप का व्यास है और η द्रव का श्यानता गुणाक है। जब N_R का मान 0 तथा 2000 के बीच में होता है तब श्यान द्रवों का प्रवाह अप्रक्षुब्ध होता है। N_R का मान लगभग 3000 से अधिक होने पर प्रवाह प्रक्षुब्ध हो जाता है। N_R का मान 2000 और 3000 के बीच में होने पर प्रवाह अस्थायी (परिवर्ती) होता है और एक प्रकार के प्रवाह से दूसरे प्रकार मे बदल सकता है। रेनाल्ड्स संख्या एक संख्या मात्र है और किसी भी संगत मात्रक प्रणाली में इसके मान में परिवर्तन नहीं होता।

उदाहरण 12.4 : किसी 2.5 सेमी व्यास की नली में पानी का अधिकतम औसत वेग कितना होना चाहिए कि प्रवाह अप्रक्षुब्ध रह सके। पानी की श्यानता का मान 0.001 न्यू मी$^{-2}$ से है।

हल

अप्रक्षुब्ध प्रवाह के लिए रेनाल्ड्स संख्या का अधिकतम मान 2000 है। मान लिया कि अप्रक्षुब्ध प्रवाह के लिए अधिकतम औसत वेग V है। तब

$$\frac{\rho VD}{\eta}=2000$$

$$\text{अथवा } V=\frac{2000\times0.001 \text{ न्यू मी}^{-2} \text{ से}}{1000 \text{ किग्रा मी}^{-3}\times2.5\times10^{-2} \text{ मी}}$$

$$=0.08\ \frac{\text{न्यू से}}{\text{किग्रा}}=0.08 \text{ मी से}^{-1}$$

12.8 श्यानता (Viscosity)

जैसा पहले कहा जा चुका है श्यानता को द्रवों का आन्तरिक घर्षण समझा जा सकता है। श्यानता के कारण एक परत को दूसरी पर फिसलाने के लिए बल की आवश्यकता होती है। यदि दो चादरों के बीच द्रव की एक परत हो तो एक चादर को दूसरी के सापेक्ष सरकाने में बल की आवश्यकता होती है। मान लिया कि AB की तरह के एक अचर पृष्ठ पर पानी प्रवाहित हो रहा है (चित्र 12.13)।
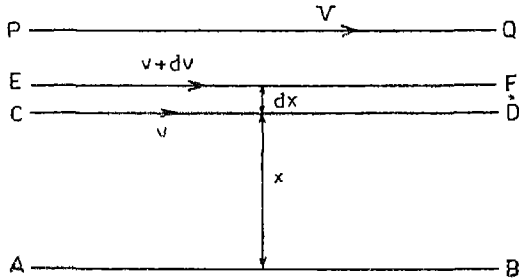
चित्र 12.13 : किसी पृष्ठ पर श्यान द्रव का प्रवाह

जो परत AB के संपर्क में है वह स्थिर रहती है जबकि सबसे ऊपरी परत PQ का वेग V अधिकतम होता है। AB से x+dx दूरी पर स्थित परत EF का वेग AB से x दूरी पर स्थित परत CD के वेग की अपेक्षा अधिक होता है। यदि दोनों के वेगों का अन्तर dV है तो CD और EF के बीच वेग की प्रवणता $\frac{dV}{dx}$ होगी। नीचे की ओर की प्रत्येक परत अपने से सटी हुई ऊपर की परत के प्रवाह को रोकने का प्रयत्न करती है। यह इस कथन के तुल्य है कि द्रव का प्रवाह परत के पृष्ठ पर लगे हुए एक स्पर्शी बल F के द्वारा रोका जाता है। प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि द्रव की परतों द्वारा प्रति इकाई क्षेत्रफल पर लगाया गया बल वेग की प्रवणता के अनुपात में होता है अर्थात्

$$\frac{F}{A}\propto\frac{dV}{dx}$$

$$\text{अथवा } F=\eta A\ \frac{dV}{dx} \qquad (12.6)$$

अनुपात के नियतांक η को श्यानता गुणांक अथवा केवल श्यानता कहते हैं। प्रति इकाई क्षेत्रफल पर लगे उस स्पर्शी बल को प्याज कहते हैं जो द्रव की परत द्वारा इकाई वेग-प्रवणता प्राप्त करने के लिए लगाया जाता है। η की विमा की गणना बड़ी सरलता से की जा सकती है

$$\eta=\frac{F}{A}\Big/\frac{dV}{dx}=\frac{MLT^{-2}}{L^2}\Big/\frac{L}{TL}=ML^{-1}T^{-1}$$

हमने पहले ही देखा है कि जब कोई श्यान द्रव किसी नली से प्रवाहित होता है तब द्रव का अप्रक्षुब्ध रूप से प्रवाहित होना नली की परिच्छेद काट के अर्धव्यास और द्रव के प्रवाह के औसत वेग पर निर्भर करता है। किसी नली के भीतर अप्रक्षुब्ध प्रवाह को बनाये रखने के लिए जिस बल की आवश्यकता होती है उसको सूत्र

$$F=8\eta l\frac{V}{r^2} \qquad ...(12.7)$$

से प्रकट करते है जिसमें l नली की लंबाई, r उसका अर्धव्यास और V नली के भीतर से प्रति सेकंड प्रवाहित होने वाले द्रव का आयतन है।

स्टोक का नियम (Stoke's Law)—अभी तक हमने ठोस पृष्ठ पर अथवा नली के भीतर द्रव के प्रवाह का विवेचन किया है। अब हम किसी पिंड के पास से श्यान द्रव के प्रवाह पर अथवा स्थिर श्यान द्रव मे होकर किसी पिंड के गमन पर विचार करेंगे। ग्लिसरीन की टंकी में गिरता हुआ इस्पात का गोला गमन प्रारंभ करने के थोड़ी दूर जाते-जाते अचर वेग से गिरने लगता है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिरोधी बल से उत्पन्न इस्पात के गोले का मंदन गुरुत्वाकर्षण के त्वरण के बराबर है। जब कोई गोल पिंड किसी श्यान द्रव के भीतर से गमन करता है
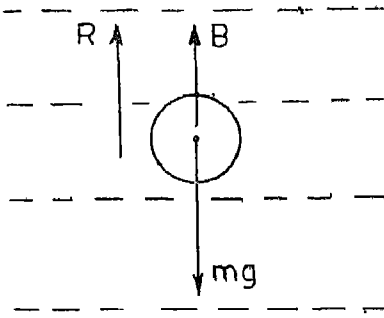
चित्र 12.14 : किसी तरल में गोले का गमन

जो स्वयं स्थिर है (चित्र 12.14), तब यह आशा की जाती है कि प्रतिरोधी बल (i) पिंड के आकार (ii) द्रव की अपेक्षा पिंड की सापेक्ष गति और (iii) श्यानता पर निर्भर करेगा। अत: पिंड पर प्रतिरोधी बल R सूत्र

$$R = \text{अचर} \times r^a \times v^b \times \eta^c$$

द्वारा प्रकट किया जाता है। जिसमें a, b तथा c क्रमश: अर्धव्यास r, वेग v और श्यानता η की घात है। विमीय विश्लेपण से हम जानते है कि समीकरण के वाम पार्श्व की विमा और दक्षिण पार्श्व की विमा एक ही होनी चाहिए।

अर्थात् $MLT^{-2} = L^a (LT^{-1})^b (ML^{-1}T^{-1})^c$

$$= M^c L^{a+b-c} T^{-b-c}$$

अत: a=b=c=1 और हम पाते है कि

$$R = \text{अचर } \eta rv$$

समानता का नियातक 6π के तुल्य है और प्रतिरोधी बल को निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात कर सकते है।

$$R = 6\pi\eta rv \qquad ...(12.8)$$

इस समीकरण को स्टोक का नियम कहते है। हम इसका संक्षिप्त विवेचन उस स्थिति के लिए करेंगे जब ρ घनत्व का गोला ρ_o घनत्व के श्यान द्रव मे गिर रहा है। गोले पर लगने वाले बल है

(i) गोले का भार (जिसकी दिशा नीचे की ओर है)

$$mg = \frac{4\pi}{3} r^3 \rho g$$

(ii) उत्प्लावकता का बल (जो ऊर्ध्वाधर दिशा मे ऊपर की ओर है) $B = \frac{4\pi}{3} r^3 \rho_0 g$

(iii) द्रव का प्रतिरोधी बल

$$R = 6\pi\eta rv$$

परिणामी त्वरण 'a' जिसके साथ गोला नीचे की ओर गिर रहा है उसके लिए समीकरण है

$$ma = mg - B - R$$

$$a = g - \frac{B - R}{m}$$

जब गोले को विराम की अवस्था से गिराया जाता है तब v=0 है और श्यानता का बल R भी शून्य है। अत: प्रारंभिक त्वरण है

$$a = g\frac{\rho - \rho_0}{\rho}$$

इसके फलस्वरूप गोला नीचे की ओर गतिशील होता है और तब स्टोक्स के नियम के अनुसार इस पर एक मंदक प्रतिरोधी बल लगता है। वेग के बढ़ने के साथ प्रतिरोधी बल भी बढता है। अन्त में जब नीचे की ओर त्वरण शून्य हो जाता है तब गोले का वेग अचर हो जाता है। इस स्थिति में गोला जिस वेग से गमन करता है, उसे अंतिम वेग कहते है। समीकरण में a=0 रखने पर हमें मिलता है कि,

$$\frac{4\pi}{3} r^3 \rho g = \frac{4\pi}{3} r^3 \rho_0 g + 6\pi\eta rv$$

अथवा $$v = \frac{2}{9} \frac{r^2 g}{\eta} (\rho - \rho_0) \qquad ...(12.9)$$

यह समीकरण तब तक लागू होता रहता है जब तक कि वेग इतना नहीं बढ जाता कि गमन मे प्रक्षोभ आ जाए। प्रक्षोभ की स्थिति में गोले के गमन पर लगा प्रतिरोध स्टोक्स के नियम के अनुसार के प्रतिरोध से बहुत अधिक होता है।

उदाहरण 12 5 : ग्लिसरीन मे गिरते हुए 2 मिमी व्यास के इस्पात के गोले के अंतिम वेग की गणना कीजिए

इस्पात का आपेक्षिक घनत्व = 8

ग्लिसरीन का आपेक्षिक घनत्व = 1.3

ग्लिसरीन की श्यानता = 8.3 प्वाज

अंतिम वेग का समीकरण है

$$v = \frac{2}{9} \frac{(0.1) \text{ सेमी}^2 \times 980 \text{ सेमी सेकंड}^{-2}}{8.3 \text{ ग्राम सेमी}^{-1} \text{ सेकंड}^{-1}} (8 - 1.3) \text{ ग्राम सेमी}^{-3}$$

$= 1.8$ सेमी सेकंड$^{-1}$

श्यानता मापने की यह भी एक विधि है।

12.9 बर्नूली-समीकरण (Bernoulli's Equation)

प्रत्येक द्रव की कुछ श्यानता होती है। श्यान तरलों के गमन के समीकरण बहुत जटिल होते है। परन्तु यह पाया गया है कि श्यानता की उपेक्षा करते हुए भी बहुत से भौतिक तथ्यों की व्याख्या गुणात्मकता के साथ और अच्छे सन्निकटन के साथ हो सकती है। अब हम एक पाइप के भीतर से स्थिर प्रवाह से बहते हुए असंपीड्य तथा श्यानताहीन द्रव पर विचार करे। मान लिया कि PQ पर पाइप की एकसमान परिच्छेद काट A_1 है, जो h_1 ऊँचाई पर है और h_2 ऊँचाई अर्थात् RS पर इसकी एकसमान परिच्छेद काट A_2 है (चित्र 12.15)। मान लिया A_1 पर द्रव का दाब p_1 और उसका वेग v_1 है। काल के अल्प अन्तराल $\triangle t$ में p_1A_1 बल द्वारा PQ पर द्रव की परत P'Q' तक हट जाती है। अतः PQ का विस्थापन $l_1 = v_1 \triangle t$ है। इस तंत्र पर किया गया कार्य

$$W_1 = p_1A_1l_1$$
$$= p_1A_1v_1 \triangle t$$

RS परत का विस्थापन R'S' तक होता है। यदि A_2 पर दाब p_2 और वेग v_2 है तो विस्थापन $l_2 = v_2 \triangle t$ और तंत्र पर किया गया कार्य

$$W_2 = p_2A_2l_2$$
$$= p_2A_2V_2 \triangle t$$

द्रव के दाब द्वारा कुल किया गया कार्य

$$Wp = W_1 - W_2$$
$$= p_1A_1l_1 - p_2A_2l_2$$
$$= (p_1 - p_2) V$$

जिसमे $V (= A_1l_1 = A_2l_2)$ द्रव का वह आयतन है जो $\triangle t$ काल अंतराल मे पाइप से प्रवाहित होता है। इस तरह हम देखते है कि

$$V = A_1v_1 \triangle t = A_2v_2 \triangle t$$

अर्थात् $A_1v_1 = A_2v_2$ ...(12.10)
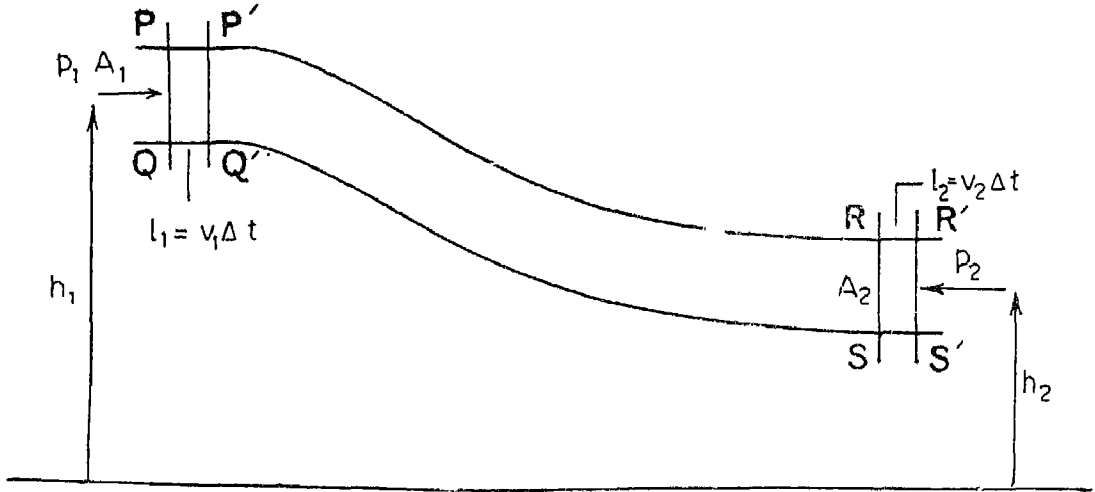
चित्र 12.15 : किसी ऐसे पाइप के भीतर से द्रव का प्रवाह जिसके सिरे विभिन्न ऊँचाइयों पर हैं

समीकरण 12.10 को सांतत्य-समीकरण कहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि द्रव के प्रवाह की गति पाइप के परिच्छेद काट के क्षेत्रफल के व्युत्क्रमानुपात में होती है।

$\triangle t$ काल में ρV द्रव्यमान की ऊँचाई h_1 से h_2 में

परिवर्तित हो जाती है। अत: गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र द्वारा इस पर किया गया कार्य

$$W_g = -(h_2 - h_1)\rho V g$$
$$= \rho g V (h_1 - h_2)$$

हम जानते हैं कि कार्य द्रव्यमान के V आयतन पर किया गया है जिससे इसकी गतिज ऊर्जा मे परिवर्तन होता है। अत:

गतिज ऊर्जा में परिवर्तन $= W_p + W_g$

= तंत्र पर कुल किया गया कार्य

अथवा $\frac{1}{2}\rho V (v_2^2 - v_1^2) = (p_1 - p_2) V + \rho g V(h_1 - h_2)$

अथवा $\frac{p_1}{\rho g} + \frac{v_1^2}{2g} + h_1 = \frac{p_2}{\rho g} + \frac{v_2^2}{2g} + h_2$

अथवा $\frac{p}{\rho g} + \frac{v^2}{2g} + h =$ नियतांक ...(12.11)

समीकरण (12.11) को बर्नूली-समीकरण कहते है। इस समीकरण के प्रत्येक पद की विमा लम्बाई की है और उसे शीर्ष कहते हैं। $p/\rho g$ को दाब शीर्ष; $\frac{v^2}{2g}$ को वेग शीर्ष और h को गुरुत्वाकर्षणीय शीर्ष कहते है। हम यह कह सकते है 'जहाँ तरल का वेग ऊँचा है वहाँ दाब नीचा है और जहाँ वेग नीचा है वहाँ दाब ऊँचा है।' बर्नूली के सिद्धांत के कुछ निदर्शी दृष्टान्तों की विवेचना हम कर सकते हैं।

(i) कभी-कभी आँधी अथवा चक्रवात में मकानों की छतें उड़ जाती हैं जब कि मकान के अन्य भागों को कोई क्षति नहीं पहुंचती (चित्र 12.16)। यह कोई विलक्षण घटना नहीं है जैसा साधारणतया कोई सोच सकता है क्योंकि इसे सरलता से समझा जा सकता है। छत के ऊपर तेज हवा होने के कारण वहाँ निम्न दाब उत्पन्न हो जाता है। छत के नीचे दाब p_1 (= वायु मंडलीय दाब) होता है जो p_2 से अधिक होता है। दाब में अन्तर $(p_1 - p_2)$ के कारण ऊपर की ओर एक धक्का लगता है जिससे छत उठ जाती है। एक बार उठ जाने पर छत हवा के साथ उड़ जाती है।
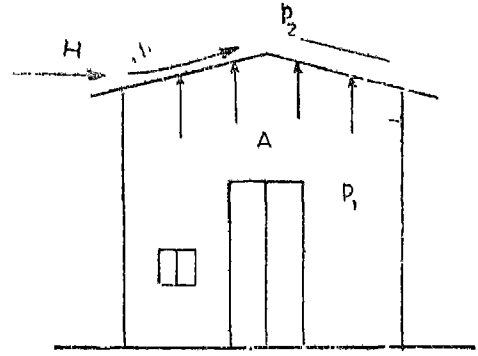
चित्र 12.16 : वायुमंडलीय दाब $p_1 >$ दाब p_2, जो छत के ऊपर दाब है। इससे छत ऊपर उठ जाती है। H — उच्च वेग की हवा

(ii) साधारण किस्म के कणित्र (आटोमाइजर) में बल्ब को दबाने पर टोंटी से तेल या सुगंधित इत्र की फुहार निकलती है (चित्र 12.17)। केन्द्रीय नलिका में
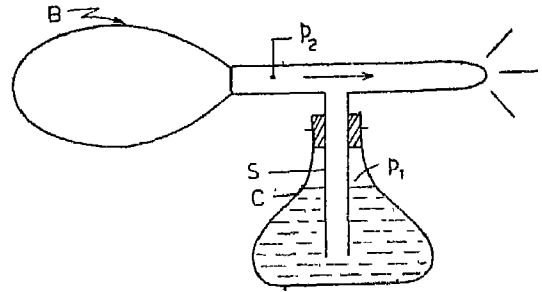
चित्र 12.17 : कणित्र, B — बल्ब, P_1 — वायुमंडलीय दाब, C — बर्तन, S — नली, P_2 — भीतर का दाब

द्रव इस कारण नही उठता कि वहाँ निर्वात उत्पन्न हो जाता है। होता यह है कि बल्ब को दबाने पर केन्द्रीय नली से हवा उच्च गति के साथ निकलती है जिससे भीतर की ओर निम्न दाब p_2 उत्पन्न हो जाता है। इससे बर्तन के द्रव के पृष्ठ पर के वायुमंडलीय दाब p_1 द्वारा द्रव नली में ठेल दिया जाता है और हवा के प्रवाह के साथ टोंटी से निकलता है।

(iii) वायुयान के पंखों का लिफ्ट—चित्र 12.18 में
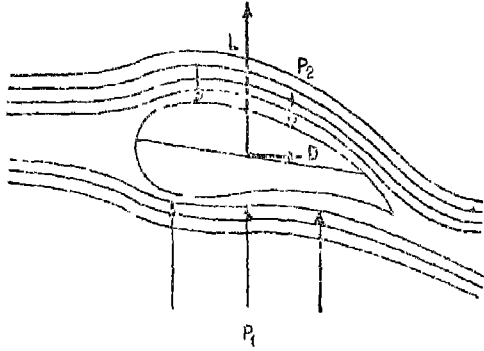
चित्र 12.18 : वायुयान के पंख की परिच्छेद काट और वायु-प्रवाह की रेखायें

वायुयान के पंख की परिच्छेद काट दिखाई गई है। जब वायुयान चलता है तब हवा पंख के नीचे और ऊपर से प्रवाहित होती है। वायुयान के पंख को इस प्रकार बनाया जाता है कि पंख के नीचे की अपेक्षा हवा को पंख के ऊपर चलते हुए अधिक दूरी तय करनी पड़ती है। इस कारण पंख के ऊपर हवा के प्रवाह का वेग नीचे के वेग की अपेक्षा अधिक होता है। बर्नूली के सिद्धांत से स्पष्ट है कि पंख के ऊपर का दाब p_2 पंख के नीचे के दाब p_1 की अपेक्षा कम होता है। दाबों के इस असंतुलन के कारण पंख पर बल F कार्य करता है। इस बल को ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज दो घटकों मे बाँधा जा सकता है। ऊर्ध्वाधर घटक अर्थात् लिफ्ट से वायुयान ऊपर उठता है और क्षैतिज घटक के कारण वायुयान पर पीछे की ओर कर्षण D लगता है। वायुयान पर लगा बल उसके आपात कोण पर निर्भर करता है। यदि आपात कोण बहुत अधिक हो तो पंख के ऊपर और पीछे धारा-रेखीय प्रवाह समाप्त हो जाता है और भँवरों और चक्करों का एक जटिल समूह उत्पन्न होता है जिसे विक्षोभ कहते है। अब बर्नूली का समीकरण लागू नहीं होता। पंख के ऊपर दाब बढ़ता है और लिफ्ट कम हो जाता है तथा वायुयान अनियंत्रित हो जाता है।

पाठक अपने दैनिक जीवन मे अन्य बहुत से उदाहरण देख सकते है जहाँ बर्नूली के सिद्धांत का उपयोग किया जाता है।

(iv) प्रचक्रमान (स्पिनिंग) गेंद का वक्रित पथ— जब किसी गेंद को क्षैतिज वेग v के साथ फेंका जाता है और साथ ही साथ उसे घुमाया भी जाता है तब गेंद का प्रक्षेपण पथ प्रचक्रण रहित गेंद के प्रक्षेपण पथ की अपेक्षा अधिक वक्रित होता है। मान लीजिए दाहिनी ओर जाते हुए क्रिकेट की गेंद को थोड़ा चक्रण भी दिया जाता है
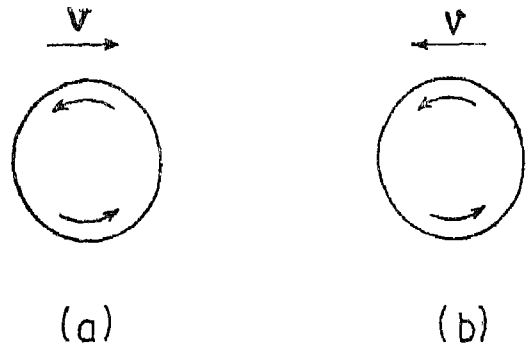
चित्र 12.19 : क्रिकेट के प्रचलित गेंद का गमन।

जैसा चित्र 12.19 (a) में दिखाया गया है। यह स्थिति वैसी ही है कि गेंद वेग v की विपरीत दिशा में हवा के वेग से चक्रित हो जैसा चित्र 12.19 (b) में दिखाया गया है। इस तरह गेंद के ऊपर हवा का वेग v से अधिक है क्योंकि चक्रण के कारण वेग का घटक v मे जुड़ जाता है। गेंद के नीचे इससे विपरीत स्थिति होती है। चक्रित गेंद के ऊपर और नीचे के दाब में अन्तर होने के कारण एक असंतुलित बल पैदा होता है जिससे चक्रित गेंद का पथ मुक्त प्रक्षिप्त के पथ से विचलित हो जाता है। यदि गेंद का प्रचक्रण विपरीत दिशा में हो तो ऊपर और नीचे के दाब का अन्तर उल्टा हो जाता है और गेंद का पथ विपरीत दिशा की ओर वक्रित होता है।

प्रश्न-अभ्यास

12.1 द्रव की D व्यास की एक बूँद 27 छोटी बूँदों में विभाजित हो जाती है। ऊर्जा में कितना परिवर्तन होता है ? ($2\pi D^2\sigma$)

12.2 हवा का एक बुलबुला जिसका अर्धव्यास 0.20 मिमी है पानी की सतह के किंचित नीचे है। इसके भीतर हवा का दाब वायुमंडलीय दाब से कितना अधिक होगा ? पानी का पृष्ठ-तनाव 0.07 न्यू मी$^{-1}$ है। (14×10^{-2} न्यू मी$^{-2}$)

12.3 एक U-नलिका की एक भुजा का व्यास 0.4 मिमी और (संकेत : साबुन के बुलबुले के विपरीत यहाँ एक ही पृष्ठ है) दूसरी भुजा का व्यास 0.8 मिमी है। दोनों भुजाओं के पानी के स्तर का अंतर निकालिए। ($\sigma=0.07$ न्यू मी$^{-2}$)

12.4 ऐसा क्यों होता है कि साफ पानी में सुई तैरती है पर अपमार्जक पानी में डालने पर डूब जाती है ?

12.5 पानी की धारा को किस गति पर इसका वेग शीर्ष पारे के 40 सेमी के बराबर होगा ?

(2.8 मी/से)

12.6 यदि टेबुल-टेनिस की गेंद को हवा या पानी की ऊर्ध्वाधिर प्रधार (जैट) के ऊपर रखा जाय तो वह टोंटी से कुछ ऊँचाई तक उठेगा और वहीं ठहरा रहेगा। इसकी व्याख्या कीजिए।

12.7 एक वायुयान का वेग मापने के लिए वायुयान के पंख पर एक पाइलट नली रखी जाती है (चित्र 12.20)। नली में ऐलकोहल भरा हुआ है और स्तर का अन्तर 40 सेमी दिखाई पड़ता है हवा के
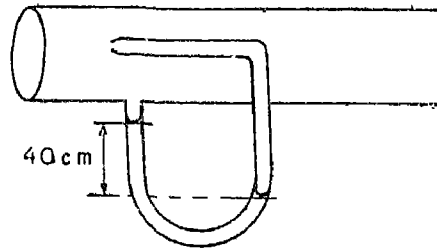
चित्र 12.20

सापेक्ष वायुयान का वेग क्या होगा (ऐलकोहल का आपेक्षिक घनत्व$=0.8$ और हवा का घनत्व$=$ 1 किग्रा मी$^{-3}$) ?

12.8 काँच की एक नली को ऊर्ध्वाधिर दिशा में पारे में डुबाया जाता है। काँच की नली का व्यास 2 मिमी है और इसका निचला सिरा पारे के पृष्ठ से 2 सेमी नीचे है। नली में हवा दाब का वायुमंडल के दाब से कितना अधिक हो कि इसके निचले सिरे पर आधा गोल बुलबुला बन सके ?

12.9 एक टंकी में पानी की गहराई H है। टंकी की दीवारें ऊर्ध्वाधर हैं (चित्र 12.21)। पानी की सतह के नीचे h गहराई पर एक दीवार में एक छेद बनाया जाता है।
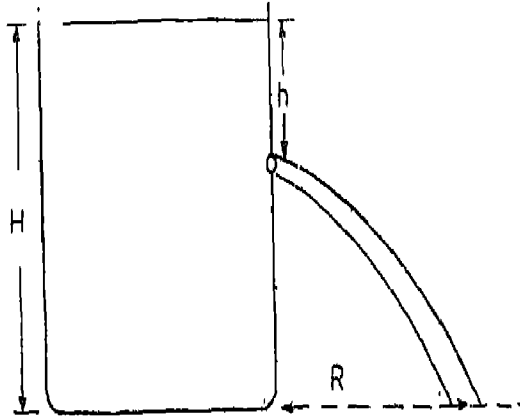
चित्र : 12.21

(i) दीवार के आधार से कितनी दूरी R पर पानी की निकली हुई धार फर्श पर गिरेगी ?

(ii) h के किस मान के लिए यह परास अधिकतम है ?

12.10 एक द्रव की श्यानता 0.15 न्यू मी$^{-2}$ से है और इसका आपेक्षिक घनत्व 0.9 है। 0.8 मिमी व्यास का हवा का बुलबुला किस अंतिम वेग से इसमें ऊपर उठेगा ? उसी बुलबुले का पानी में अंतिम वेग कितना होगा ?

12.11 गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र मे एक गोले को एक द्रव में गिराया जाता है जिसकी श्यानता η है। औसत त्वरण को प्रारंभिक त्वरण का आधा मान कर यह सिद्ध कीजिए कि अंतिम वेग द्रव के घनत्व पर निर्भर नही करता।

अध्याय 13

विद्युत (Electricity)

13.1 विद्युत धारा (Electric current)

शब्द 'धारा' किसी प्रकार की गति का बोध देता है। जहाँ विद्युत आवेश गति करता है, हम विद्युत धारा की उपस्थिति मानते हैं। आवेश के वाहक कण किसी माध्यम में गति कर सकते है—जैसे धातु में इलेक्ट्रॉन या द्रव अथवा गैस में आयन—या निर्वात में गति कर सकते है - जैसे निर्वात नलिका में इलेक्ट्रॉन।

परिमाणात्मक रूप से विद्युत धारा I की परिभाषा आवेश के प्रवाह की दर से करते हैं—

$$I = \frac{q}{t} \quad \cdots(13.1)$$

जिसमें q वह आवेश है जो विचाराधीन स्थान से समय t में गुजर गया। यदि आवेश प्रवाह की दर समय के साथ नहीं बदलती तो धारा को अपरिवर्ती कहा जाता है। किन्तु अनेक परिस्थितियों में धारा समय के साथ बदल सकती है। उदाहरणतः चित्र 13.1 में वक्र (a) अपरिवर्ती धारा बताता है, जब कि (b) और (c) में परिवर्ती धाराएँ व्यक्त करते है।

प्रथा के अनुसार धनात्मक आवेश के प्रवाह की दिशा को धारा की दिशा माना जाता है। किसी दिशा में
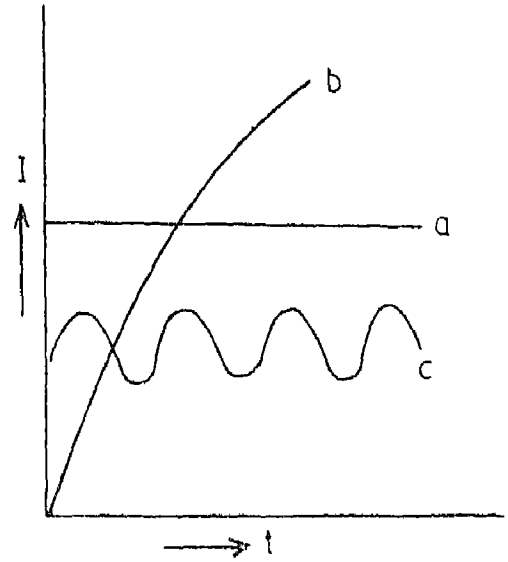
चित्र 13.1 : अचर और चर धाराओं के उदाहरण

ऋणात्मक आवेश का प्रवाह उसकी विपरीत दिशा में बराबर धनात्मक आवेश के प्रवाह के तुल्य है (चित्र 13.2)।

धारा के लिए मात्रक ऐम्पियर है :
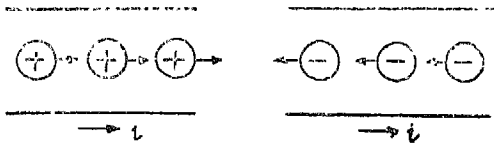
चित्र 13.2 : ऋणात्मक आवेश के प्रवाह और विपरीत दिशा में धनात्मक आवेश के प्रवाह की तुल्यता

1 ऐम्पियर = 1 कूलॉम/सैकण्ड ।

किंतु यह उल्लेखनीय है कि व्यवहार में विद्युत धारा को आवेश तथा समय मापकर ज्ञात नहीं किया जाता, विद्युत धारा के प्रभावों को माप कर ज्ञात किया जाता है- यथा चुम्बकीय प्रभाव ।

उदाहरण 13.1 किसी तार मे A से B की ओर 10^9 इलेक्ट्रॉन 10^{-3} सेकण्ड में गुजरते है । धारा का मान ऐम्पियर मे ज्ञात कीजिए । उसकी दिशा क्या है ?

हल

इलेक्ट्रॉन का आवेश $= -1.6 \times 10^{-19}$ कू ।

इसलिए

$q = -1.6 \times 10^{-19} \times 10^9 = -1.6 \times 10^{-10}$ कू,

$t = 10^{-3}$ से०

$$I = \frac{q}{t} = \frac{-1.6 \times 10^{-10}}{10^{-3}}$$

$$= -1.6 \times 10^{-7} \text{ कू/से} = -1.6 \times 10^{-7} \text{ ऐ}$$

इलेक्ट्रॉन का आवेश ऋणात्मक होता है, इसलिए धारा की दिशा B से A की ओर होगी ।

उदाहरण 13.2 हाइड्रोजन के परमाणु में इलेक्ट्रॉन 2.18×10^6 मी/से की चाल से प्रोटान की परिक्रमा करता है, और वृत्तीय पथ की त्रिज्या 5.3×10^{-11} मी है । तुल्य धारा की गणना कीजिए ।

हल

विद्युत धारा की परिभाषा है किसी नियत बिंदु से प्रति सेकंड गुजरने वाला आवेश । यदि हाइड्रोजन परमाणु का इलेक्ट्रॉन एक सेकंड में परिक्रमाएँ पूरी करता है, तो पथ के किसी भी बिंदु से एक सेकंड में ne आवेश गुजरता है, जहाँ e इलेक्ट्रॉन का आवेश है । अतः धारा =

पथ की त्रिज्या $= 5.3 \times 10^{-11}$ मी

पथ की परिधि $= 2\pi r = 2\pi \times 5.3 \times 10^{-11}$ मी

इलेक्ट्रॉन की चाल $v = 2.18 \times 10^6$ मी/से

एक सेकंड में पूरित परिक्रमाएँ

$$n = \frac{v}{2\pi r} = \frac{2.18 \times 10^6}{2 \times 3.14 \times 5.3 \times 10^{-11}} \text{ से}^{-1}$$

$$I = ne = \frac{2.18 \times 10^6}{2 \times 3.14 \times 5.3 \times 10^{-11}} \times 1.6 \times 10^{-19} \text{ कू से}^{-1}$$

$$= 1.05 \times 10^{-3} \text{ ऐ}$$

यद्यपि हम तार मे प्रवाहित विद्युतधारा से अधिक परिचित हैं, परंतु विद्युतधारा द्रवों और गैसों मे तथा निर्वात में भी प्रवाहित हो सकती है । शर्त यह है कि आवेश-वाहक हों और विभवान्तर उपस्थित हो । चल्य आवेश-वाहक धनात्मक हो तो आवेश उच्चतर विभव के भागों से निम्नतर भागों की ओर प्रवाहित होगा, ऋणात्मक हो तो विपरीत दिशा मे । विभवान्तर की उपस्थिति को ही वैद्युत-बलक्षेत्र भी कहते हैं । बलक्षेत्र की दिशा उच्चतर से निम्नतर विभव की ओर मानी जाती है, और
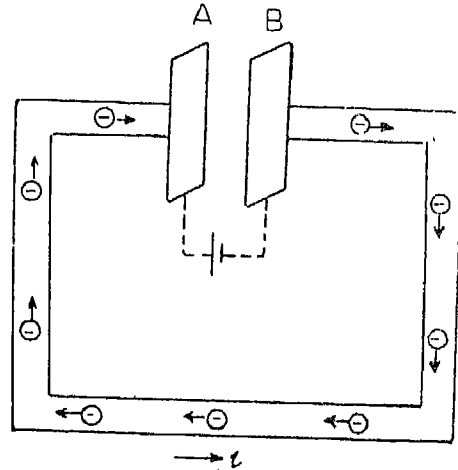
चित्र 13.3 : अचर धारा के लिए एक अचर विद्युत-वाहक-बल के स्रोत की आवश्यकता होती है ।

तीव्रता को 'विभवान्तर प्रति मीटर' में व्यक्त करते हैं। ठोस चालकों में आवेश वाहक अधिकांशतः इलेक्ट्रॉन होते है, द्रवों में धनात्मक और ऋणात्मक आयन, और गैसों मे इलेक्ट्रॉन और आयन दोनों ही। चित्र 13.3 में दो आवेशित प्लेटें दिखाई गई हैं, जिनमें A उच्चतर विभव पर है। यदि हम प्लेटों को एक तार से जोड़ दें, तो इलेक्ट्रॉन प्लेट B से A की ओर प्रवाहित होंगे, अर्थात् धारा A से B की ओर तार में से प्रवाहित होगी। अब प्लेट A पर इलेक्ट्रॉन के पहुँचने से A और B के विभव समानता की ओर प्रवृत्त होंगे, और धारा का प्रवाह शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा, यदि विभवान्तर को बनाए रखने का बाह्य कोई साधन न हो। स्पष्ट है कि किन्हीं दो बिंदुओं के बीच निरंतर रूप से धारा प्रवाहित रखने के लिए उनके बीच विभवान्तर बनाए रखना होगा, जो किसी बैटरी या उसके तुल्य उपाय से हो सकता है।

किसी चालक मे प्रवाहित धारा I उस चालक के सिरों के बीच विभवान्तर V पर निर्भर होती है। हम
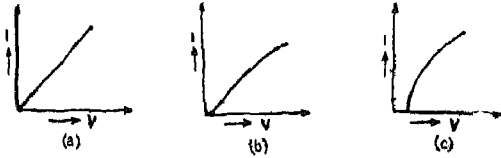
चित्र 13.4 : V-I आरेख (a) धात्वीय चालक के लिए, (b) निर्वात नलिका के लिए, (c) विद्युत अपघट्य के लिए

V के साथ I के विचरण का अध्ययन कर सकते हैं। चित्र 13.4 में ये परिणमन दिखाए है—(a) किसी धात्वीय चालक के लिए, (b) एक निर्वात नलिका के लिए, और (C) एक विद्युत अपघट्य के लिए। अनुपात

$$\frac{V}{I} = R \qquad ...(13.2)$$

को चालक का प्रतिरोध कहते है।

हम देखते है कि धात्वीय चालक के लिए V—I आरेख ऋजु रेखा है, अर्थात चालक का प्रतिरोध V पर निर्भर नही करता। इस दशा में हम कहते हैं कि चालक ओम के नियम का पालन करता है। जो भी चालक V—I के बीच ऋजुरेखीय व्यवहार दिखाए वह ओमी प्रतिरोधक कहलाता है। जिनके लिए V—I आरेख ऋजुरेखीय नहीं होता वे अन-ओमी कहलाते है। विद्युत परिपथों में विभिन्न उद्देश्यों से दोनों ही प्रकार के प्रतिरोधक काम में लिए जाते है।

13.2 किसी धात्वीय चालक में विद्युतधारा : अनुगमन वेग (Current Flow in a Metallic Conductor : Drift Velocity)

अब हम किसी धात्वीय चालक में धारा के प्रवाह की क्रिया पर विस्तृत विचार करते है।

ठोस अवस्था मे धातु के परमाणु एक नियत जमावट में बद्ध होते है, किंतु प्रत्येक परमाणु मे से कुछ इलेक्ट्रॉन इस प्रकार मुक्त होते है कि समस्त पिंड मे विचरण कर सकें, और फलस्वरूप परमाणु धन आवेशित आयन के रूप मे रह जाते है। यदि हम एक इलेक्ट्रॉन प्रति परमाणु मुक्त माने, तो एक घन मीटर मे 10^{28} कोटि के स्वतंत्र इलेक्ट्रॉन होंगे।

जैसे किसी गैस में अणु होते है, जो ऊष्मीय ऊर्जा के कारण निरंतर गतिशील होते है, वैसे ही ये मुक्त इलेक्ट्रॉन भी अनवरत रूप से गतिशील होते हैं। ये बारम्बार परमाणुओं से (वास्तव में आयनों से) टकराते है और इनकी गति की दिशा और मान बदलते रहते हैं। कमरे के सामान्य ताप पर इनकी औसत चाल 10^5 मी से.$^{-1}$ की कोटि की होती है, किन्तु इनके वेग की दिशाएँ यद्रच्छतः वितरित होती हैं, इसलिए औसत वेग का मान शून्य होता है। इसे हम यों कह सकते है : यदि N इलेक्ट्रॉनों के वेग अलग-अलग $v_1, v_2, \ldots v_n$ हों, तो औसत वेग

$$v = \frac{v_1 + v_2 + \ldots\ldots + v_n}{N} = 0$$

इसका एक परिणाम यह होता है कि इलेक्ट्रॉनों की इस ऊष्मीय गति के कारण आवेश का प्रवाह किसी भी दिशा में नहीं होता।

अब यदि चालक में कोई वैद्युत बलक्षेत्र E स्थापित करें तो इलेक्ट्रॉन पर उस दिशा में बल —eE लगेगा

फलत: त्वरण $a = \frac{-eE}{m}$ होगा, जहाँ m इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान है। ये त्वरण यदृच्छ नहीं होंगे—सभी इलेक्ट्रॉनों पर एक ही दिशा मे होंगे। E के कारण बल तो घनात्मक आयनों पर भी लगते है, किन्तु वे अपने-अपने स्थान पर बद्ध होते है, इसलिए इलेक्ट्रॉनों में ही गति उत्पन्न होती है। हम कह चुके है कि इलेक्ट्रॉन बारम्बार टकराते रहते हैं, इसलिए दो टक्करों के बीच के समय में इलेक्ट्रॉनों को उनकी ऊष्मीय गति के अतिरिक्त एक अन्य गति प्राप्त होती है। इस गति के कारण उत्पन्न वेग की दिशा E के विपरीत दिशा में होती है और इलेक्ट्रॉन की ऊष्मीय गति पर अध्यारोपित होती है। इस प्रकार प्राप्त वेग का मान बहुत कम होता है और प्रत्येक टक्कर मे यह अतिरिक्त गति यदृच्छ रूप में बदल जाती है, इसलिए इस दिष्ट वेग का मान अधिक नहीं हो पाता।

किसी एक क्षण पर स्थिति यह होगी कि इलेक्ट्रॉन संख्या 1,2, ...N को पिछली टक्कर हुए समय क्रमश $t_1, t_2, t_3 \ldots\ldots t_n$ बीत चुका होगा। तो ऊष्मीय वेग $v_1, v_2, \ldots v_n$ में विद्युत क्षेत्र के कारण प्राप्त वेग $at_1, at_2 \ldots\ldots at_n$ जुड़ जाएँगे फलत: इलेक्ट्रॉनों के वेगों का मध्यमान इस प्रकार हो जायगा—

$$\bar{v} = \frac{(v_1+at_1)+(v_2+at_2)+\ldots\ldots+(v_n+at_n)}{N}$$

$$= \frac{v_1+v_2+\ldots\ldots+v_n}{N} + a\,\frac{(t_1+t_2+\ldots\ldots t_n)}{N}$$

$$= 0 + a\bar{t} \quad \text{जिसमें} \quad \bar{t} = \frac{t_1+t_2+\ldots\ldots+t_n}{N}$$

इस प्रकार $\bar{v}$ में ऊष्मीय गतियों का अंशदान तो शून्य रहा, किंतु विद्युत क्षेत्र के कारण उत्पन्न अंशदान अशून्य है। $\bar{t}$ को श्रांति-काल कहते हैं; तथा $\bar{t} \cong 10^{-14}$ से की कोटि का होता है। यह प्रत्येक इलेक्ट्रॉन को पिछले सघट्ट के बाद कितना समय बीता है उसका औसत है। हर चालक पदार्थ के लिए इसका एक लाक्षणिक मान होता है।

$\bar{v}$ को इलेक्ट्रॉनों का अनुगमन वेग कहते हैं, और v_d से व्यक्त करते है।

अत: $$v_d = a\bar{t} = -\frac{eE\bar{t}}{m} \qquad \ldots(13.3)$$

विद्युत क्षेत्र लगाने से पहले इलेक्ट्रॉनो का औसत वेग शून्य होता है, अत. वे किसी भी दिशा मे आवेश को प्रवाहित नही करते। विद्युतक्षेत्र लगाने पर इलेक्ट्रॉनों मे एक नियत अनुगमन वेग उत्पन्न हो जाता है, जिसको दिशा E से विपरीत होती है। फलत ऋणात्मक आवेश का एक नेट संवहन होता है, जो E की दिशा मे विदयुतधारा के प्रवाह के तुल्य है। v_d का मान सामान्यत. कुछ मिमी प्रति सेकंड होता है; जो इलेक्ट्रॉनों के यदृच्छ वेग 10^5 मी प्रति सेकंड की तुलना मे बहुत ही अल्प है। किन्तु इलेक्ट्रॉनों की सख्या बहुत अधिक होने के कारण एक उच्च धारा उत्पन्न हो जाती है।

प्राय: यह भ्रम होता है कि अनुगमन वेग इतना कम है तो वैद्युत प्रभाव अत्यन्त तीव्रता से सचरित क्यों होते है। बिजली का बल्ब स्विच दबाने के तुरंत बाद ही जल जाता है। वास्तव में वैद्युत प्रभावों के संचरण का वेग प्रकाश के वेग की कोटि का होता है (3×10^8 मी/से)। यह उसी प्रकार है जैसे पानी से भरी किसी लम्बी नलिका के सिरे पर दाब लगाएँ, दाब लगाते ही एक दाब-तरंग अत्यन्त द्रुत गति से नली मे चलती है, और उसके दूसरे सिरे पर पहुँचते ही वहाँ पानी का प्रवाह आरंभ हो जाता है। पानी में दाब-तरंग का वेग लगभग 1500 मी/से होता है। किंतु नली के एक सिरे वाले पानी को दूसरे सिरे तक पहुंचने की जो प्रवाह-गति होती है, वह इससे बहुत ही कम होती है। इसी प्रकार किसी परिपथ में स्वतंत्र इलेक्ट्रॉन सभी जगह होते है; परिपथ में विभवान्तर स्थापित करने पर एक विद्युत क्षेत्र परिपथ के सभी भागों मे लगभग प्रकाश के वेग के समान द्रुत गति से लागू हो जाता है, और सारे परिपथ के इलेक्ट्रॉन उसके प्रभाव मे अपने-अपने स्थान से अनुगमन वेग से चलने लगते हैं, जिससे परिपथ-धारा बनती है।

प्रतिरोध (Resistence) एक चालक पर विचार कीजिए जिसकी लम्बाई L हो, काट का क्षेत्रफल सर्वत्र A हो, और जिसके सिरों पर विभवान्तर V लगाया गया हो (चित्र 13.5)। बलक्षेत्र $E = \frac{V}{L}$ होगा, अत:
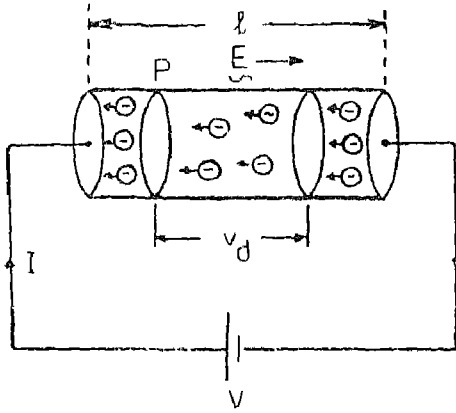
चित्र 13.5 : किसी चालक में धारा का प्रवाह

इलेक्ट्रॉनों में अनुगमन वेग,

$$v_d = \frac{eE\tau}{m} = \frac{eV\tau}{Lm}$$

स्थापित हो जायगा। किसी बिन्दु P पर के काट-क्षेत्रफल पर विचार करें तो प्रत्येक सेकंड में उसकी दाहिनी ओर v_d दूरी तक के इलेक्ट्रॉन इस काटक्षेत्र से गुजर जाएंगे। प्रति एकांक आयतन में n मुक्त इलेक्ट्रॉन हों तो Av_d आयतन में nAv_d इलेक्ट्रॉन होंगे, जो प्रति सेकंड $enAv_d$ आवेश ले जाएँगे। यही धारा I है, अतः

$$I = enAv_d \quad \ldots(13.4)$$

समीकरण 13.3 से v_d का मान रखने पर

$$I = \frac{e^2nA\tau}{mL}V$$

अनुपात $\frac{V}{I}$ को प्रतिरोध कहते है। इस प्रकार विचाराधीन तार का प्रतिरोध

$$R = \left(\frac{m}{e^2n\tau}\right)\frac{L}{A} \quad \ldots(13.5)$$

इसे यों भी लिख सकते हैं :

$$R = \rho\frac{L}{A} \quad \ldots(13.6)$$

$$\text{जिसमें } \rho = \frac{m}{e^2n\tau} \quad \ldots(13\ 7)$$

ρ को चालक पदार्थ की प्रतिरोधकता कहते हैं, और स्पष्ट है कि यह स्वतंत्र इलेक्ट्रॉनों की घनता n और श्रांतिकाल τ के व्युत्क्रम अनुपात मे होती है। समीकरण (13.6) के अनुसार ρ का मात्रक ओम मी होगा।

उदाहरण 13.3 : एक ताँबे के चालक मे 8.0×10^{28} इलेक्ट्रॉन/मी³ होते है। यदि 5×10^{-6} मी² काट-क्षेत्रफल के तार मे से 10 ऐ धारा प्रवाहित हो रही हो, तो इलेक्ट्रॉनों का अनुगमन वेग निकालिए।

हल :

$$I = enAv_d$$

दिया है $e = 1.6 \times 10^{-19}$ कू, $n = 8.0 \times 10^{28}$ मी$^{-3}$

$A = 5 \times 10^{-6}$ मी², $I = 10$ ऐ

$$\therefore \quad v_d = \frac{I}{enA} =$$

$$\frac{10}{1.6 \times 10^{-19} \times 8 \times 10^{28} \times 5 \times 10^{-6}}$$

$$= 1.56 \times 10^{-5} \text{ मी/से}$$

13.3 धारा का ऊष्मीय प्रभाव : जूल का नियम (Heating Effects of Electric Current : Joule's Law)

यह नित्य का अनुभव है कि किसी चालक मे विद्युत-धारा प्रवाहित होती है तो ऊष्मा उत्पन्न होती है। हमने विद्युतधारा का जो सूक्ष्मदर्शीय विवरण दिया है उसके आधार पर इस ऊष्मीय प्रभाव की व्याख्या हो सकती है। हम देख चुके है कि विद्युतक्षेत्र के आधीन इलेक्ट्रॉनो में जो गति उत्पन्न होती है वह चालक के परमाणुओं के साथ बारम्बार होने वाले संघट्टों से अवरुद्ध होती है; वैद्युत प्रतिरोध का यही मूल कारण है। संघट्टों के बीच इलेक्ट्रॉनों को विद्युतक्षेत्र के कारण कुछ गतिज ऊर्जा मिलती है, जो उनकी ऊष्मीय अवस्था से संगत यदृच्छ गति वाली गतिज ऊर्जा के अतिरिक्त होती है। संघट्टों मे यह अतिरिक्त ऊर्जा धातु के परमाणुओं के साथ बंट जाती है, जिससे परमाणुओं और इलेक्ट्रॉनों की ऊष्मीय (अतः यदृच्छ गति से संगत) गतिज ऊर्जा का औसत बढ जाता है। इस प्रकार विद्युतधारा के प्रवाह के कारण चालक का ताप बढ़ जाता है।

चित्र 13.6 मे परिपथ के भाग AB पर विचार कीजिए, जिसमें धारा I का प्रवाह A से B की दिशा में हो रहा हो। इलेक्ट्रॉन B पर विभव V_B से प्रवेश करके A पर विभव V_A पर निकलते है। इलेक्ट्रॉन का आवेश
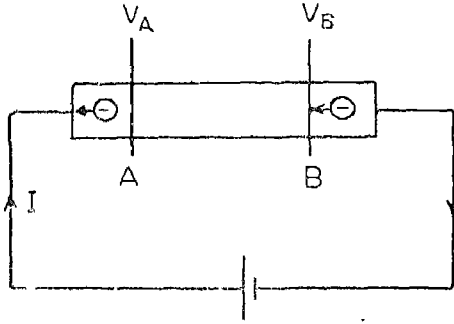
चित्र 13.6 : किसी चालक में शक्ति क्षेत्र की गणना के लिए

—e माने तो प्रत्येक इलेक्ट्रॉन की स्थितिज ऊर्जा B पर $-eV_B$ होगी और A पर $-eV_A$ होगी। धारा-प्रवाह A से B की ओर होने का अर्थ है $V_A > V_B$; तो स्पष्ट है कि $-eV_B > -eV_A$ । स्थितिज ऊर्जा के इस अंतर $-eV_B - (-eV_A) = e(V_A - V_B)$ का क्या हुआ ? हम देख चुके है कि इलेक्ट्रॉनों की गतिज ऊर्जा A और B पर समान ही होती है (v_d से संगत)। अत: स्थितिज ऊर्जा का अंतर चालक में ऊष्मा में बदल जाता है। इस ऊष्मायन के लिए व्यंजक प्राप्त किया जा सकता है :

स्थिति B और स्थिति A के लिए इलेक्ट्रॉन की स्थितिज ऊर्जा का अंतर $= e(V_A - V_B)$

dt समय में स्थिति B से स्थिति A तक प्रवाहित इलेक्ट्रॉनों की संख्या $= \frac{I\,dt}{e}$

∴ dt समय में स्थितिज ऊर्जा की क्षति, जो ऊष्मा में परिणत होती है,

$$dW = e(V_A - V_B)\frac{I}{e}$$

$$= I\,dt\;V_{AB} \text{ जिसमें } V_{AB} = V_A - V_B$$

अत: विद्युत ऊर्जा के ऊष्मीय रूप मे परिणत होने की दर (शक्ति P)

$$P = \frac{dW}{dt} = V_{AB}I \qquad ...(13.8)$$

यदि चालक के भाग AB का प्रतिरोध R हो तो $V_{AB} = RI$ अत:

$$P = V_{AB}\;I = (RI)\;I = I^2R \qquad ...(13.9)$$

यह विद्युतधारा द्वारा ऊष्मायन का जूल नियम है। यदि V_{AB} वोल्ट में, I ऐंपियर में, R ओम मे हों, तो समीकरण (13.8) तथा (13.9) में P वाट में होगा।

$$1 \text{ ऐ } \times 1 \text{ वोल्ट} = \frac{1 \text{ कूलॉम}}{1 \text{ सेकंड}} \times \frac{1 \text{ जूल}}{\text{कूलॉम}} = \frac{1 \text{ जूल}}{\text{सेकंड}}$$

$$= 1 \text{ वाट}$$

t सेकंड में उत्पन्न ऊष्मा Q का मान होगा

$$Q = Pt = I^2Rt \text{ जूल} = \frac{I^2Rt}{4.2} \text{ कैलॉरी} \qquad ...(13.10)$$

क्योंकि 1 कैलॉरी = 4.2 जूल।

किलोवाट-घंटा : यदि शक्ति P को वाट में और समय t को सेकंड मे मापें तो प्रयुक्त ऊर्जा

W = Pt जूल

किन्तु विद्युत ऊर्जा के उपयोग में जूल बहुत छोटा मात्रक होता है। अत: बिजली के बिल बनाने में जिस व्यावहारिक मात्रक का उपयोग होता है इसमें P को किलोवाट (10^3 वाट) में, t को घंटा (3600 सेकंड) में लेते है, और तत्संगत W के मात्रक को किलोवाट-घंटा कहते है।

W (किलोवाट-घंटा) = P किलोवाट × t (घंटा)

स्पष्ट है कि

1 किलोवाट-घंटा $= 10^3$ वाट × 3600 से

$= 3.6 \times 10^6$ जूल

उदाहरण 13.4 एक वैद्युत तापक की शक्ति 800 वाट अंकित है। अब (i) यदि वोल्टता 200 वोल्ट है तो तापक कितनी धारा लेगा तथा (ii) 1 लीटर पानी को 20° से से 100° से तक गर्म करने में कितना समय लगेगा ?

हल

(i) $= \frac{P}{V} = \frac{800 \text{ वाट}}{200 \text{ वोल्ट}} = 4.0$ ऐ

(ii) Q = पानी का द्रव्यमान × औसत विशिष्ट ऊष्मा × तापवृद्धि

= 100 ग्राम × 1 कैलॉरी/ग्रा डि × 80 डि

= 80,000 कैलॉरी = 80000 × 4.2 जूल

$\therefore \quad t = \frac{Q}{P} = \frac{80000 \times 4.2 \text{ जूल}}{800 \text{ जूल / स}} = 420$ से

उदाहरण 13.5 एक किलोवाट के एक वैद्युत तापक का प्रतिरोध, तप्त अवस्था मे 40 ओम है। उसके सिरों पर विभवपात कितना होगा ?

हल

$$P = I^2R = \frac{V^2}{R^2}R = \frac{V^2}{R}$$

$$\therefore \quad V = (P \times R)^{1/2} = (1000 \times 40)^{1/2}$$
$$= 200 \text{ वोल्ट}$$

13.4 ताप के साथ प्रतिरोध का विचरण (Variation of Resistence with Temperature)

पहले कहा जा चुका है कि किसी भी धातु मे परमाणु नियत स्थानों पर बद्ध रहते हैं। किन्तु वास्तव मे वे अचर नहीं होते, अपने-अपने मध्यमान नियत स्थानों के गिर्द कम्पन करते रहते है। धातु को गर्म करने पर उसके परमाणुओं की औसत कम्पन ऊर्जा बढ़ती है, और उनका कम्पन प्रबलतर हो जाता है। इसके कारण इलेक्ट्रॉनों तथा परमाणुओं के बीच संघट्टों की दर बढ़ती है, अतः t का मान कम होता है। वास्तव मे उच्चतर ताप पर इलेक्ट्रॉनों की ऊष्मीय चाल भी बढ़ जाती है, और इसके कारण भी संघट्टों के बीच का समय घटता है। समीकरण (13.7) के अनुसार t का मान कम होने के फलस्वरूप चालक का प्रतिरोध बढ़ जाता है।

प्रयोगों से ज्ञात होता है कि प्रथम सन्निकटन मे

$$R_t = R_o (1 + \alpha t) \qquad .. (13.11)$$

जिसमें R_o और R_t क्रमशः 0° और t° मे ताप पर चालक के प्रतिरोध है, और α को प्रतिरोधक का तापीय गुणांक कहते हैं। धातुओं के लिए, जैसा ऊपर बताया है t में वृद्धि के साथ R_t बढ़ता है, अर्थात् α एक घनात्मक गुणांक होता है। तांबे के लिए इसका मान 0.0040 प्रति से है। कुछ मिश्रधातुओं के लिए—यथा कॉन्स्टेन्टन और मैंगनिन—α का मान बहुत कम है (≅0.00001 प्रति से०)। इसी कारण मानक प्रतिरोधक बनाने में इनका उपयोग होता है। कार्बन और अन्य अर्धचालकों में यह गुणांक ऋणात्मक होता है, अर्थात् उनका प्रतिरोध तापवृद्धि के साथ घटता है। वैद्युत अपघट्यों में भी α ऋणात्मक होता है। इसका विवेचन इस पुस्तक की परिधि के बाहर है, किंतु समीकरण (13.7) से इतना तो देख ही सकते है कि संभवतः इन दशाओं में n की वृद्धि t के घटाव की अपेक्षा तीव्रतर होती है।

13.5 ताप-वैद्युत प्रभाव (Thermo-electric Effect)

चित्र 13.7 मे दो तार दिखाए गए है जो सिरों A और B पर जुड़े है - एक तांबे का है, दूसरा लोहे का। परिपथ मे एक अल्प प्रतिरोध का धारामापी भी सम्मिलित है।
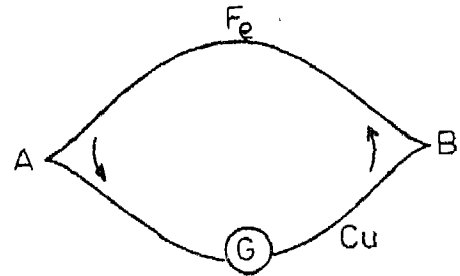
चित्र 13.7 : एक ताप वैद्युत युग्म : A तप्त संधि, B शीत संधि

यदि संधि A को गर्म करें और B को स्थिरताप पर बनाए रखें तो परिपथ में तीर द्वारा दर्शित दिशा में एक अल्प विद्युतधारा प्रवाहित होती है। इसके अन्वेषक सीबैक के नाम से इसको सीबैक प्रभाव कहा जाता है। कोई दो असमान धातु उक्त प्रकार से जुड़े हों तो संधियों के बीच तापान्तर होने पर यह प्रभाव प्रकट होता है। सीबैक ने अनेक धातुओं के युग्मों पर प्रयोग करके धातुओं का एक ऐसा श्रेणीक्रम प्राप्त किया कि उनमें से कोई दो धातुओं से युग्म बनाकर प्रयोग करें तो तप्त संधि पर धारा का प्रवाह इस श्रेणी में पहले आने वाली धातु से

बाद में आनेवाली धातु की ओर होगा । इस श्रेणी के कुछ पदार्थ इस क्रम मे हैं : Bi, Ni, Pt, Cu, Rh, Ir, Fe, Sb

इस प्रकार उत्पन्न विदयुतधारा को तापवैद्युत धारा कहते है । धातुओं के जिस युग्म से परिपथ बनता है उसे तापयुग्म या तापवैद्युत युग्म कहते है । स्पष्ट है कि ताप-वैद्युत धारा इसलिए प्रवाहित होती है कि परिपथ में विशुद्ध तापीय कारणों से कोई वि० वा० ब० (विद्युत-वाहक बल) उत्पन्न हो जाता है । इसे तापवैद्युत वि०वा०ब० कहते है, और विभवान्तर मापी यंत्र से उसे मापा जा सकता है । सामान्य प्रथा यह है कि एक संधि को किसी नियत ताप (यथा 0° से) पर बनाए रखते है, और दूसरी संधि के ताप परिवर्तन के साथ वि० वा० ब० मापते जाते है । चित्र 13.8 में एक प्रतिरूप आरेख प्रदर्शित है ।
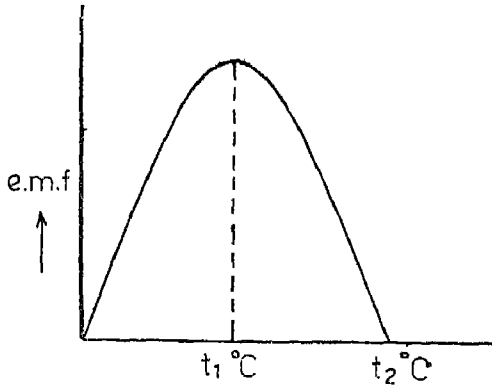
चित्र 13.8 : ताप के साथ ताप वैद्युत वि०वा०ब० का परिरमण

चित्र के अनुसार एक ताप t_1° से पर अधिकतम वि० वा० ब० प्राप्त होता है; इस ताप को उस ताप-वैद्युतयुग्म का उदासीन ताप कहते हैं और अधिक ताप बढ़ाने से एक ताप t_2° से पर वि० वा० ब० शून्य होकर फिर उलटी दिशा में बढ़ने लगता है । इस ताप को प्रति-लोमन ताप कहते हैं । इसका मान लाक्षणिक नहीं होता, बल्कि निम्नताप संधि के ताप पर निर्भर करता है । किंतु प्रायः यह उदासीन ताप से उतना ही ऊपर होता है जितना कि शीत संधि का ताप उदासीन ताप से नीचे होता है । Cu, Fe तापयुग्म के लिए उदासीन ताप 300° से के लगभग होता है ।

13.6 तापवैद्युत-युग्म से ताप का मापन

(Temperature Measurement by Thermo-couples)

तापवैद्युत-युग्मों को व्यापकता से ताप मापन के लिए काम मे लिया जाता है । यदि शीत संधि का ताप नियत हो, तो किसी भी तापवैद्युत-युग्म में उत्पन्न वि० वा० ब० केवल तप्त संधि के ताप पर ही निर्भर करता है । ताप की काफी बड़ी परास में यह वि० वा० ब० तप्त संधि के ताप का रेखिक फलन होता है । इस तथ्य का उपयोग तप्त संधि के स्थल के ताप को मापने में किया जा सकता है, यदि तापवैद्युत युग्म को पहले अंशांकित कर लें । यह अंशांकन दो या तीन प्रामाणिक तापों पर वि० वा० ब० मापकर किया जाता है । सामान्यत परिपथ में लगे धारामापी के पाठो को सीधे ही ताप पढ़ने के लिए अंशां-कित कर लेते हैं ।

ताप वैद्युत-युग्म के तारों का चयन निर्दिष्ट ताप पर निर्भर करता है । ताँबा-कान्स्टेन्टन का युग्म, जिसमें ताँबे और कान्स्टेन्टन नामक मिश्र धातु के तार होते हैं -190° से 3000° से तक के ताप के लिए काम आता है । प्लेटिनम तथा प्लेटिनम-रोडियम के मिश्रधातु का युग्म 1600° से तक के ताप मापने के लिए उपयोगी होता है ।

ताप मापने की युक्ति के रूप में ताप-वैद्युत-युग्म में अनेक विशिष्टताएँ है । यह काफी यथार्थ होता है । उदाहरणत: ताँबा-कान्स्टेन्टन का ताप-वैद्युत-युग्म प्रत्येक डिग्री तापांतर के लिए 40 माइक्रोवोल्ट वि० वा० ब० देता है, यदि विभवांतर 1 माइक्रोवोल्ट की यथार्थता से मापें तो तापान्तर मापने की यथार्थता 1/40 डिग्री हो जाती है । तापवैद्युत-युग्म की दूसरी विशिष्टता यह है कि परीक्षण संधि का आकार बहुत छोटा होता है, जिसके कारण बहुत छोटे-छोटे क्षेत्रों या कोटरों मे ताप मापने के लिए ये उपयुक्त होते हैं । परीक्षण संधि का द्रव्यमान कम होने के कारण वह वातावरण से बहुत शीघ्र और अत्यन्त अल्प ऊष्मा लेकर तापीय संतुलन में आ जाती है । इस कारण पशुओं और कीड़ों के शरीर के विभिन्न भागों में ताप परिवर्तन मापने के लिए तापयुग्मों का उपयोग होता है ।

तापवैद्युत पुंज (Thermopile)

ताप वैद्युत-युग्म में स्थापित वि०वा०ब० बहुत कम होता है : कुछ मिलीवोल्ट की कोटि का। किंतु यदि अनेक तापवैद्युत युग्मों को श्रेणीबद्ध क्रम में संयोजित कर दें तो उनके वि० वा० ब० जुड़ जाते हैं। ऐसे संयोजन को तापवैद्युत पुंज कहते है। ऊष्मीय विकिरण को मापने में इनका उपयोग होता है।

चित्र 13.9 के अनुसार इसमें एकांतर संधियों का एक सेट A आपाती विकिरण के सामने रखा जाता है, और दूसरा सेट एक ऊष्मारोधी ढक्कन द्वारा आरक्षित
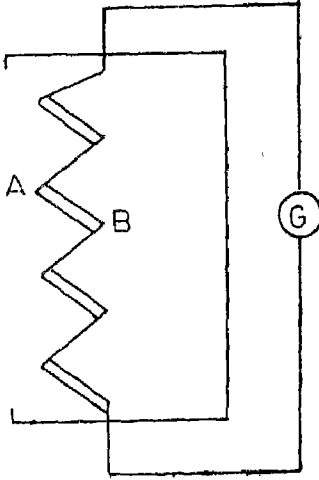
चित्र 13.9 : ताप वैद्युत पुंज

रहता है। खुले सिरों का समूह काला कर देते हैं ताकि आपाती विकिरण को श्रेष्ठता से अवशोषित करे। इन तापयुग्मों में एंटीमनी और बिस्मथ की पत्तियाँ काम में ली जाती है। संबद्ध धारामापी का विक्षेप आपाती विकिरण की तीव्रता के अनुपात में होता है।

13.7 विद्युतधारा के चुम्बकीय प्रभाव (Magnetic Effects of Electric Current)

विद्युतधारा के चुम्बकीय प्रभावों की विवेचना से पहले हम वैद्युत और चुम्बकीय बलक्षेत्रों की प्रकृति पर विचार करेंगे।

बल और बलक्षेत्र (The Force and the Field)

यदि एक पिंड दूसरे पर बल आरोपित करता है और दूसरा पहले पर तो हम कहते है कि इन दो पिंडों में परस्पर क्रिया होती है। उदाहरणत: पृथ्वी और चन्द्रमा परस्पर क्रिया कर एक दूसरे पर बल लगाते है। ये बल न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार होते हैं। दो आवेशित पिंडों के बीच एक अन्य प्रकार की पारस्परिक क्रिया होती है, जिसे वैद्युत पारस्परिक क्रिया कहते है। एक आवेशित पिंड दूसरे पर जो बल लगाता है उसका निर्णय कूलॉम के नियम के अनुसार होता है।

एक चुम्बक दूसरे चुम्बक पर जो बल लगाता है उससे भी हम परिचित है, इसे चुम्बकीय पारस्परिक क्रिया कहते हैं। किंतु वास्तव में यह कई प्रकार की पारस्परिक क्रिया नहीं है। जैसा हम अभी देखेंगे, वैद्युत आवेशों के बीच स्थितिज अवस्था मे जो कूलॉम बल लगता है उसके अतिरिक्त एक बल आवेशों की गतिशीलता के कारण भी लगता है। चुम्बकीय बल की व्याख्या गतिमान आवेशों के बीच लगने वाले इस अतिरिक्त बल के आधार पर की जाती है। आवेशों के बीच इन दोनों प्रकार के बलों की उभयनिष्ट पारस्परिक क्रिया को विद्युत चुम्बकीय पारस्परिक क्रिया कहते हैं, जो एक सार्थक नाम है।

गुरुत्वाकर्षण और विद्युत चुम्बकीय पारस्परिक क्रियाओं में एक बात उभयनिष्ट है : 'दूर से होने वाली क्रिया' की। एक पिंड से दूसरे पर बल का आरोपण बिना सीधे सम्पर्क के होता है। विपर्यास्ततः, अधिकांश बल, जिनका हमे दैनिक अनुभव होता है, सीधे भौतिक संपर्क से उत्पन्न होते लगते हैं—यथा किसी पिंड को धक्का देना, डोरी को खींचना, आदि। तो गुरुत्वीय, वैद्युत और चुम्बकीय बल एक वस्तु से दूसरी तक कैसे पहुंच जाते है।

बीच में रिक्त स्थान होते हुए दो वस्तुओं के बीच परस्पर क्रिया होने की घटना समझने के लिए 'बलक्षेत्र' की कल्पना सहायक होती है। इसे हम दो स्थिर आवेशों के बीच लगने वाले बल के उदाहरण से समझेंगे। इस प्रायोगिक सत्य को समझने के लिए कि दूरस्थ आवेश

परस्पर बल लगाते है, हम यह कहते है कि एक आवेश अपने चारों ओर के स्थान में एक वैद्युत बलक्षेत्र उत्पन्न कर देता है, और यह बलक्षेत्र दूसरे आवेश पर क्रिया करके उस पर बल पैदा करता है। क्योंकि बल पारस्परिक होता है, इसलिए दूसरा आवेश भी वैद्युत बलक्षेत्र उत्पन्न करता है, जिसके प्रभाव मे पहला आवेश बल अनुभव करता है। इस प्रकार दो आवेशों के बीच पारस्परिक क्रिया में हम 'बलक्षेत्र' को मध्यस्थ के रूप में डाल देते है।

इसी प्रकार दो द्रव्यमान पिंडों के बीच गुरुत्वीय बलक्षेत्र और दो चुम्बकों के बीच चुम्बकीय बलक्षेत्र की मध्यस्थता से पारस्परिक क्रिया का होना समझ सकते है। किन्तु, जैसा हम बाद में बतलायेंगे, चुम्बकीय बलक्षेत्र गतिशील आवेशों से उत्पन्न होता है।

चुम्बकीय बलक्षेत्र (The Magnetic Field) मान
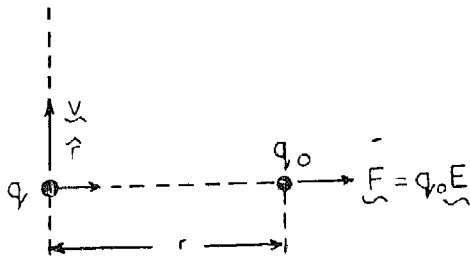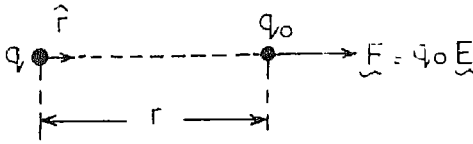
चित्र 13 10 (a) : **किसी परीक्षण आवेश पर स्थिर आवेश के कारण बल (b) किसी परीक्षण आवेश पर गतिशील आवेश के कारण बल** (VLLC)

लीजिए एक आवेश q आकाश में किसी बिंदु पर स्थित है। वह अपने चारों ओर वैद्युत बलक्षेत्र उत्पन्न करता है। हम q को स्रोत आवेश कहेगे। यदि एक अन्य आवेश q_0 जिसे हम परीक्षण आवेश कहेंगे, इस बलक्षेत्र में किसी बिंदु पर रखा है (चित्र 13.10 a), तो उस पर लगने वाला बल—

$$F = q_0E \quad \cdots(13.12)$$

जिसमें E उस बिंदु पर वैद्युत बलक्षेत्र है।

E का मान स्रोत आवेश पर किस प्रकार निर्भर है यह जानने के लिए हम q और q_0 के बीच लगने वाले बल F का कूलॉम सूत्र काम लेते है।

$$F = \frac{qq_0}{4\pi\varepsilon_0 r^2}\hat{r} \quad \cdots(13.13)$$

जिसमें $\hat{r}$ आवेश q से q_0 की ओर एकांक सदिश (वेक्टर) है और ε_0 ($= 8.85 \times 10^{-12}$ कू^{2}/न्यू मी^{2}) मुक्त आकाश का परावैद्युतांक है। इस प्रकार q के कारण q_0 की स्थिति पर बलक्षेत्र E का मान यह होगा—

$$E = \frac{q}{4\pi\varepsilon_0 r^2}\hat{r} \quad \cdots(13.14)$$

उपरोक्त विवेचन मे बलक्षेत्र का स्रोत एक स्थिर आवेश था। यदि आवेश q गतिशील हो (चित्र 13.10 b), तब भी स्थिर आवेश q_0 पर बल $F = q_0E$ द्वारा ही व्यक्त होगा, जहाँ E वह बलक्षेत्र है जो आवेश q द्वारा q_0 की स्थिति पर प्रेक्षण के समय उत्पन्न होता है। यदि q का वेग अधिक न हो * तो इस बलक्षेत्र का मान वही होता है जो स्थिर q के लिए यथा समीकरण (13.14)।

वैद्युत बलक्षेत्र अध्यारोपण के सिद्धांत का पालन करता है अर्थात् यदि किसी बिन्दु पर अनेक स्रोतों से वैद्युत बलक्षेत्र उत्पन्न होते हैं तो परिणामी बलक्षेत्र उन सब बलक्षेत्रों के सदिश योग के बराबर होता है।

बल का समीकरण $F = q_0E$ हमें स्रोतों के ज्ञान की आवश्यकता के बिना किसी बिंदु पर वैद्युत बलक्षेत्र E

---

* यदि q का वेग प्रकाश के वेग की तुलना में नगण्य न हो, तो बलक्षेत्र कुछ जटिल स्वरूप का हो जाता है। किंतु हम इसके विस्तृत विवरण में नही जाएंगे।

निर्धारित करने में सहायक होता है। यदि विचाराधीन बिंदु पर एक परीक्षण आवेश बल का अनुभव करे, तो हम कहते हैं कि वहाँ वैद्युत बलक्षेत्र उपस्थित है। बलक्षेत्र की तीव्रता अनुभवित बल और परीक्षण आवेश के अनुपात के बराबर होती है और बलक्षेत्र की दिशा वही होती है जो धनात्मक परीक्षण आवेश पर लगने वाले बल की होती है। सांकेतिक भाषा मे

$$\mathbf{E} = \frac{\mathbf{F}}{q_0} \quad \cdots(13.15)$$

वैद्युत बलक्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण गुण यह होता है कि उसके द्वारा किसी परीक्षण आवेश पर लगने वाला बल उस आवेश के वेग पर निर्भर नहीं करता अर्थात् वैद्युत बलक्षेत्र $\mathbf{E}$ के कारण परीक्षण आवेश q_0 पर लगने वाला बल $q_0 \mathbf{E}$ ही होगा, चाहे आवेश q_0 स्थिर हो या गतिशील।
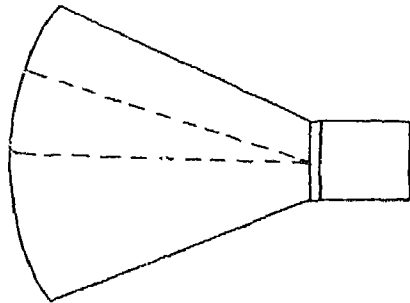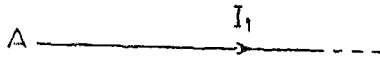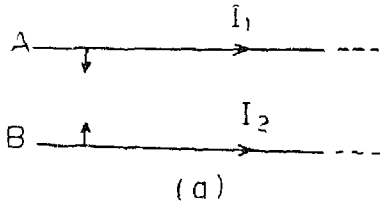
चित्र 13.11 (a) : दो समांतर धारावाही तारों के बीच चुम्बकीय पारस्परिक क्रिया (b) किसी इलेक्ट्रॉन पुंज का चुम्बकीय बलक्षेत्र में विक्षेपण

चुम्बकीय बलक्षेत्र की परिभाषा (The Definition of Magnetic Field)

प्रयोग बताते है कि दो समांतर तार यदि एक ही दिशा मे विद्युतधारा ले जाते है तो उनके बीच पारस्परिक आकर्षण होता है (चित्र 13.11 a)। यह धाराएँ विपरीत दिशा मे हों तो प्रतिकर्षण होता है। यह परिकल्पना सुविधाप्रद होती है कि प्रत्येक धारा अपने चहुँ ओर किसी प्रकार का बलक्षेत्र उत्पन्न करती है और दूसरी धारा इस बलक्षेत्र में बल का अनुभव करती है। इस बलक्षेत्र की प्रकृति पर विचार करना उपयोगी होगा।

यह बलक्षेत्र स्थिरवैद्युतीय (कूलॉम प्रकार का) नहीं हो सकता, क्योंकि तारों में इलेक्ट्रॉन और धन आयन बराबर संख्या में हैं, और फलत: उनका प्रभावी आवेश शून्य है। यदि हम किसी एक तार की जगह कोई आवेशित पिंड रख दे तो वह बल का अनुभव नहीं करता, अत: यह भी स्पष्ट है कि दूसरे तार की धारा से उत्पन्न बलक्षेत्र स्थिर आवेशों से परस्पर क्रिया नही करता।

साथ ही यदि एक तार की विद्युतधारा बन्द कर दें तो पारस्परिक क्रिया समाप्त हो जाती है। यद्यपि दूसरे तार की धारा और उससे उत्पन्न बलक्षेत्र अब भी उपस्थित हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि किसी धारा से उत्पन्न बलक्षेत्र दूसरे तार से तभी क्रिया करता है जब उसमें धारा उपस्थित हो, अर्थात् उसमे आवेश का प्रवाह होता हो।

यह देखने के लिए कि बलक्षेत्र की क्रिया केवल किसी चालक में गतिशील आवेशों पर ही लगती है या स्वतंत्र रूप से गतिशील आवेशों पर भी लगती है, हम किसी एक तार की जगह एक निर्वातित विसर्जन नलिका लेते हैं (चित्र 13.11 b)। हम देखते हैं कि इलेक्ट्रॉन का पुंज भी विक्षेपित हो जाता है (अर्थात् गतिशील आवेशों पर बल लगता है)।

एक और महत्वपूर्ण बात हम देखते है : धारावाही तार की लम्बाई के सापेक्ष यदि इलेक्ट्रॉन पुज की दिशा बदलते जाए, तो विक्षेप का परिमाण बदलता जाता है,

एक विशिष्ट दिशा में रखने पर विक्षेप शून्य हो जाता है और उसके अभिलम्ब दिशा में पुंज चल रहा हो तो विक्षेप अधिकतम हो जाता है। साथ ही एक नियत अवस्था में विक्षेप का परिमाण इलेक्ट्रॉनों की चाल के अनुपात में पाया जाता है। इस प्रकार विद्युतधारा से उत्पन्न बल क्षेत्र ऐसा है कि वह गतिशील आवेश पर बल लगाता है और इस बल का परिमाण आवेश के वेग पर (अर्थात् चाल और दिशा दोनों पर) निर्भर करता है। इस बलक्षेत्र को हम चुम्बकीय बलक्षेत्र कहते हैं और इसके लिए प्रतीक **B** का प्रयोग करते है। इसके (B) द्वारा किसी आवेश पर उत्पन्न बल उसके वेग पर निर्भर होता है।

यदि हम उस दिशा को चुम्बकीय बलक्षेत्र की दिशा मान लें जिसके समान्तर चलने वाले आवेश पर बल का मान शून्य हो, तो इस दिशा से ϕ कोण पर **v** वेग से चलने वाले आवेश q पर बल का मान

$$F = qvB \sin \phi \qquad \ldots(13.16)$$

होता है। यह भी पाया जाता है कि बल **F** की दिशा **B** और **v** दोनों के अभिलम्ब होती है। सदिश संकेतों मे इसे इस प्रकार व्यक्त कर सकते है

$$\mathbf{F} = q\,(\mathbf{v} \times \mathbf{B}) \qquad \ldots(13.17)$$
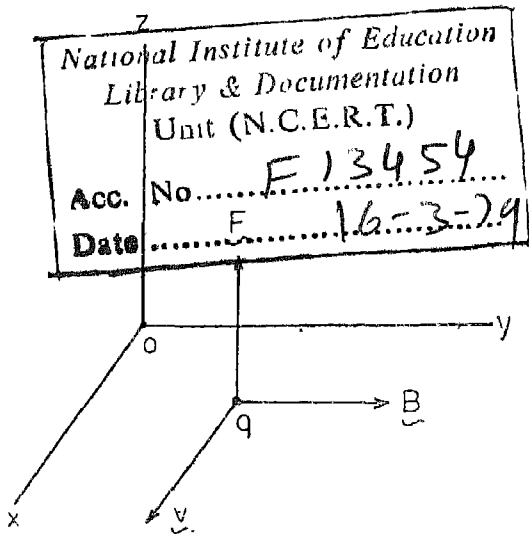
चित्र 13.12 : किसी चुम्बकीय बलक्षेत्र में गतिशील आवेश पर लगने वाले बल की दिशा

F, **v** और **B** का सम्बन्ध चित्र 13.12 में दिखाया गया है। प्रथानुसार **v** को **B** की दिशा में घुमाने पर दक्षिण-वर्ती पेच जिधर बढ़ेगा वह **F** की दिशा होगी। यदि **v** और **B**, X—Y तल मे हो (जैसा चित्र मे है) तो **F** Z-दिशा में इंगित करेगा (इलेक्ट्रॉनों के लिए q ऋणात्मक होने के कारण **F** की दिशा **v**×**B** की दिशा से विपरीत होगी।)

B का मात्रक (Unit of B) चुम्बकीय बलक्षेत्र **B** का मात्रक टेस्ला कहलाता है। समीकरण

$$B = \frac{F}{q\ v\ \sin\phi} \qquad \ldots(13.18)$$

में यदि F=1 न्यूटन, q=1 कूलॉम, v=1 मीटर/सेकंड और $\phi = 90°$ तो

$$B = 1 \frac{\text{न्यूटन सेकंड}}{\text{कूलॉम मीटर}} = 1 \text{ टेस्ला}$$

अर्थात् 1 कूलॉम का आवेश 1 मीटर/सेकंड की चाल से 1 टेस्ला चुम्बकीय बलक्षेत्र की अभिलम्ब दिशा में चले तो उस पर 1 न्यूटन बल लगेगा।

1 टेस्ला का बलक्षेत्र काफी प्रबल चुम्बकीय बलक्षेत्र होता है। सामान्य स्थायी चुम्बकों का बलक्षेत्र निकटस्थ स्थानों पर 0.1 टेस्ला की कोटि का होता है। पृथ्वी का चुम्बकीय बलक्षेत्र पृथ्वी के पृष्ठ पर $\simeq 5 \times 10^{-5}$ टेस्ला होता है। प्रायः चुम्बकीय क्षेत्रों को गास मे व्यक्त किया जाता है :

$$1 \text{ गास} = 10^{-4} \text{ टेस्ला}$$

कुछ पुस्तकों मे **B** को चुम्बकीयप्रेरण भी कहा जाता है।

चुम्बकीय बलक्षेत्र का स्रोत (Source of Magnetic Field) : हम देख चुके हैं कि धारावाही तार से चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न होता है। यदि धारा को बन्द कर दें तो चुम्बकीय बलक्षेत्र लुप्त हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि चुम्बकीय बलक्षेत्र का स्रोत तार में इलेक्ट्रॉनों का प्रवाह है। और भी सार्व रूप से कहा जा सकता है कि गतिशील आवेश चुम्बकीय बलक्षेत्र का स्रोत हैं।

वास्तव में तार में धारा न होने पर भी इलेक्ट्रॉनों में ऊष्मीय गति होती है। इस कारण प्रत्येक इलेक्ट्रॉन चुम्बकीय

बलक्षेत्र उत्पन्न करता है, किन्तु विभिन्न इलेक्ट्रॉनों की गतियाँ यदृच्छ होने के कारण कुल चुम्बकीय बलक्षेत्र शून्य हो जाता है।

13.8 बायो-सावर्त नियम—कुछ धारा वितरणों से उत्पन्न चुम्बकीय बलक्षेत्र (Biot-Savart Law-Magnetic Field due to Some Current Distributions)

प्रत्येक गतिशील आवेश से चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न होता है। किंतु प्राय: हमारी रुचि अकेले आवेश से उत्पन्न बलक्षेत्र में नहीं होती, किसी चालक में प्रवाहित धारा के बलक्षेत्र में होती है। चालक में प्रवाहित प्रत्येक आवेश चुम्बकीय बलक्षेत्र में अंशदान करता है। प्रयोग बताता है कि **B** की दिशा और परिमाण विद्युत धारा की दिशा और प्रेक्षण बिन्दु की सापेक्ष स्थिति पर निर्भर करते हैं। सुविधाजनक यह होता है कि चालक के किसी भी छोटे अंश को धारा-खंड मानकर उसके चुम्बकीय बलक्षेत्र पर विचार करें।

चित्र 13.13 : बायो-सावर्त का नियम

चित्र 13.13 में एक प्रतिरूपी धाराखंड बताया गया है जिसकी लम्बाई dl है और जिसमे धारा I प्रवाहित हो रही है। विचाराधीन बिन्दु P पर इस धाराखंड से उत्पन्न चुम्बकीय बलक्षेत्र dB के लिए बायो और सावर्त का नियम * इस प्रकार है :

$$d\mathbf{B} = \frac{\mu_0}{4\pi} I \frac{d\mathbf{l} \times \mathbf{r}}{r^3} \qquad \cdots(13.19)$$

जिसमे μ_0 एक स्थिरांक है, जो निर्वात की चुम्बकशीलता कहलाती है। ($\mu_0 = 4\pi \times 10^{-7}$ वेबर/ऐ मी†) और **r** धाराखंड के सापेक्ष **p** का स्थिति सदिश है। यदि *dl* और **r** के बीच का कोण ϕ हो, तो dB के मान का सूत्र होगा

$$dB = \mu_0 \frac{I\, dl\, \sin\phi}{4\pi r^2} \qquad \cdots(13.20)$$
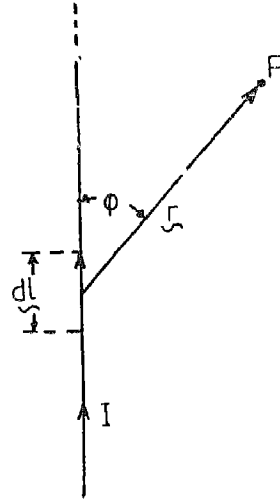
और $d\mathbf{B}$ की दिशा सदिश $d\mathbf{l} \times \mathbf{r}$ के समान होगी। चित्र 13.13 में P पर $d\mathbf{B}$ की दिशा पृष्ठ के अभिलम्ब और भीतर की ओर होगी। विद्युतधाराओं के नियमित ज्यामितीय स्वरूपों के लिए बायो और सावर्त नियम के उपयोग से कुल बलक्षेत्र **B** की गणना सरलता से हो सकती है।

वृत्ताकार कुंडली के केन्द्र पर बलक्षेत्र (Field at the Centre of a Circular Coil)

त्रिज्या **r** के एक वृत्ताकार लूप पर विचार कीजिए जिसमें धारा I प्रवाहित हो रही है (चित्र 13.14)। लूप के केन्द्र पर चुम्बकीय बलक्षेत्र ज्ञात करना है।

लूप के dl लम्बाई के एक अंश पर विचार करें। उसके कारण केन्द्र O पर चुम्बकीय बलक्षेत्र **dB** का मान

---

* बायो और सावर्त ने यह नियम सन् 1820 में आनुभविक आधार पर प्राप्त किया था, ताकि विद्युतधारा के चुम्बकीय प्रभाव के अनेक प्रयोगों की सुसगत व्याख्या हो सके।

† 1 वेबर/मी² = 1 टेस्ला।
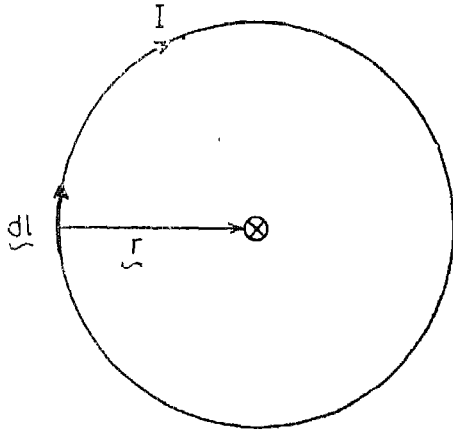
चित्र 13.14 : वृत्ताकार धारा के केन्द्र पर चुम्बकीय बलक्षेत्र

बायो और सावर्त के नियम से यह होगा :

$$dB = \frac{\mu_0}{4\pi} \frac{I.dl \times r}{r^3}$$

अब dl और r पृष्ठ के तल में है, और इनके बीच का कोण 90° है। अतः dB की दिशा पृष्ठ के अभिलम्ब होगी, और मान होगा

$$dB = \frac{\mu_0 I\, dl}{4\pi r^2} \quad ...(13.21)$$

लूप के प्रत्येक खण्ड के लिए dB की दिशा एक ही होगी। अतः पूरे लूप के लिए

$$B = \int dB = \frac{\mu_0 I}{4\pi r^2}\int dl$$

$$= \frac{\mu_0 I}{4\pi r^2} \cdot 2\pi r = \frac{\mu_0 I}{2r}$$

क्योंकि एक लूप की परिधि $2\pi r$ है। यदि लूप के बजाय एक कुंडली हो जिसमें n घेरे हों, तो बलक्षेत्र n गुना हो जाएगा।

$$B = \frac{\mu_0 In}{2r} \quad \cdots(13.22)$$

वृत्ताकार कुंडली के अक्ष पर बलक्षेत्र (Field on the Axis of the Circular Coil) कुंडली के अक्ष पर केन्द्र से x दूरी पर चुम्बकीय बलक्षेत्र इस प्रकार होता है—
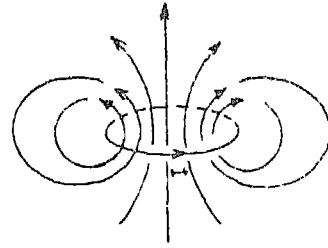
चित्र 13.15 : वृत्ताकार धारा के कारण चुम्बकीय बलरेखाएं

$$B = \frac{\mu_0 In}{2} \frac{r^2}{(r^2+x^2)^{3/2}} \quad ...(13.23)$$

इसकी उपपत्ति हम नहीं देंगे। बलरेखाओं का स्वरूप चित्र 13.15 में दिया है। अक्षीय बिंदु पर बलरेखा अक्ष से संपाती होती है।

परिनालिका के कारण बलक्षेत्र (Field due to a Solenoid) किसी बेलनाकार ढाँचे पर कुंडली लिपटी
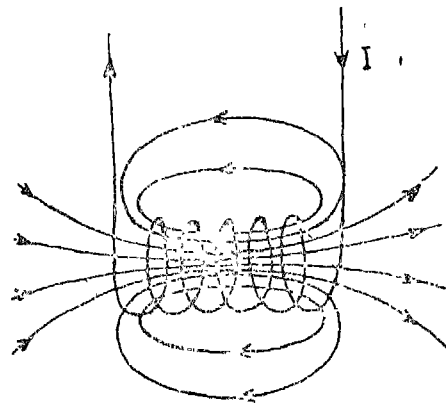
चित्र 13.16 : परिनालिका के कारण चुम्बकीय बलरेखाएं

हो तो उसे परिनालिका कहते हैं। चित्र 13.6 में धारा-वाही परिनालिका का चुम्बकीय क्षेत्र दिखाया गया है। यदि कुंडली में बेलन की प्रति एकांक लम्बाई में n चक्कर हों, और उसमे धारा I प्रवाहित हो रही हो, तो परिना-लिका के भीतर सर्वत्र ही चुम्बकीय बलक्षेत्र लगभग एक-

समान और अक्ष के समांतर होता है, और उसका मान यह होता है—

$$B = \mu_o In \quad ...(13.24)$$

इसमें यह मान्यता है कि वेष्ठन की कुल मोटाई बेलन की त्रिज्या से अत्यन्त अधिक है ।

ऋजुरेखी विद्युतधारा के कारण बलक्षेत्र (Field due to a Straight Current) चित्र 13.17 में एक
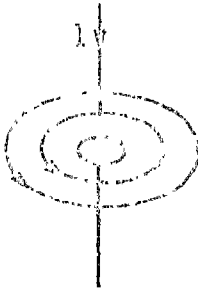
चित्र 13.17 : ऋजुधारा के कारण चुम्बकीय बलरेखाएं

ऋजुरेखी तार में प्रवाहित धारा के चुम्बकीय बलक्षेत्र की बलरेखाएँ प्रदर्शित है । ये तार के अक्ष के अभिलम्ब तलों में सममित वृत्तों के रूप में होती है । धारा I हो तो तार से r दूरी के बिंदु पर चुम्बकीय बलक्षेत्र का मान होता है ।

$$B = \frac{\mu_o I}{2\pi r} \quad \cdots(13.25)$$

बलक्षेत्र की दिशा कैसे ज्ञात करें ? (How to Find out Field Direction) उपरोक्त प्रकरणों में चुम्बकीय बलक्षेत्र की दिशा ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित नियम उपयोगी है—

(i) **वृत्ताकार धारा के लिए :** अपने दाहिने हाथ की उँगलियाँ मोड़कर धारा की दिशा से मिलाइए, तो उठा हुआ अँगूठा बलक्षेत्र की दिशा बताएगा ।

(ii) **ऋजुरेखी धारा के लिए :** तार को दाहिने हाथ से ऐसे पकड़िए कि अंगूठा धारा की दिशा की ओर हो तो चुम्बकीय बलरेखाएँ मुड़ी हुई उँगलियों की दिशा में तार के चारों ओर जाएंगी ।

उदाहरण 13.6 एक वृत्ताकार कुंडली की त्रिज्या 0.1 मी है, उसमें चक्कर 200 हैं । यदि उसमें 5 ऐ धारा प्रवाहित हो तो चुम्बकीय बलक्षेत्र की गणना कीजिए (i) अक्ष पर कुंडली के केन्द्र से 0.2 मी दूर स्थित बिंदु पर, (ii) कुंडली के केन्द्र पर ।

हल

$$\text{(i) } B = \frac{\mu_0 nI}{2} \cdot \frac{r^2}{(r^2+x^2)^{3/2}}$$

$\mu_0 = 4\pi \times 10^{-7}$ वेबर/ऐ मी, $n = 200$, $r = 0.1$ मी

$x = 0.2$ मी, $I = 5$ ऐ

$$\therefore B = \frac{4\pi \times 10^{-7} \times 200 \times 5}{2} \times \frac{(0.1)^2}{[(0.1)^2 + (0.2)^2]^{3/2}} \frac{\text{वेबर}}{\text{मी}^2}$$

$$= 5.62 \times 10^{-4} \text{ टेस्ला}$$

$$\text{(ii) } B = \frac{\mu_0 nI}{2r} = \frac{4\pi \times 10^{-7} \times 200 \times 5}{2 \times 0.1}$$

$$= 62.8 \times 10^{-4} \text{ टेस्ला}$$

13.9 एकसमान चुम्बकीय क्षेत्र में आवेशित कण की गति (Motion of a Charged Particle in a Magnetic field)

चित्र 13.18 में m द्रव्यमान और q आवेश का एक कण **B** तीव्रता के एक चुम्बकीय बलक्षेत्र में **v** वेग से गतिशील है । आवेश द्वारा अनुभवित बल $\mathbf{F} = q(\mathbf{v} \times \mathbf{B})$ है । किंतु **F** की दिशा v से अभिलम्ब होती है, इसलिए चुम्बकीय बल न तो आवेश को त्वरित करेगा न अवमंदित, अतः वह केवल उसकी गति की दिशा बदलेगा । कण अचर चाल से गति करेगा, और उसका पथ निरंतर विचलन के फलस्वरूप ऐसा बदलेगा कि वह वृत्ताकार हो जायगा । यदि v और **B** परस्पर लम्बवत हों तो बल का मान q*v***B** होगा, और यदि ऐसा न हो तो v का **B** के लम्बवत घटक $\mathbf{v}'$ और समान्तर घटक $\mathbf{v}''$ लेना
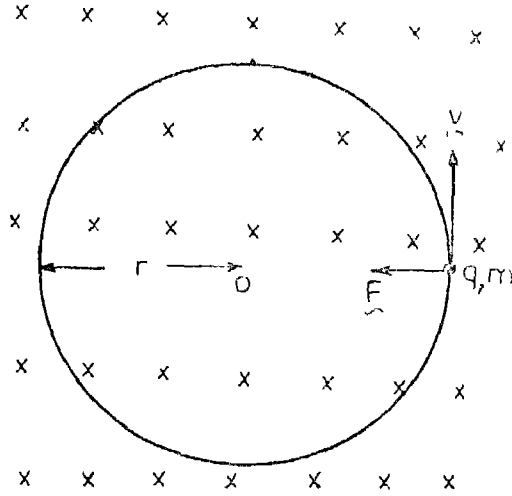
चित्र 13.18 : एकसमान चुम्बकीय बलक्षेत्र में आविष्ट कण की गति

होगा—बल $qv'B$ के कारण वृत्तीय गति होगी, और v'' के कारण बल नहीं लगेगा इसलिए यह घटक स्थिर रहेगा। दोनों बलों के सम्मिलित प्रभाव से कण का पथ वृत्ताकार होगा।

v को B के लम्बवत माने तो बल qvB के द्वारा त्वरण qvB/m होगा और इसकी दिशा सदा v से लम्बवत होगी। यदि कण r त्रिज्या के वृत्त मे इस त्वरण के कारण गति करता है, तो अभिकेन्द्र त्वरण $\frac{v^2}{r}$ से तुलना करने पर

$$\frac{qvB}{m} = \frac{v^2}{r} \qquad \cdots(13.26)$$

यह वृत्त B के अभिलम्ब तल में होगा। आवेशित कणों की गति (फलतः गतिज ऊर्जा) ज्ञात करने के लिए इस सूत्र का व्यापक उपयोग करते हैं।

उदाहरण 13.7 एकसमान चुम्बकीय क्षेत्र में यदि इलेक्ट्रॉन वृत्तीय पथ में गति करते हों और 10^{-9} सेकंड में एक चक्कर पूरा करते हों तो चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता ज्ञात कीजिए।

हल

पथ वृत्तीय है, अत. v की दिशा B से लम्बवत होनी चाहिए। सूत्र (13.26) से

$$r = \frac{vm}{qB}$$

एक चक्कर को पूरा करने का समय

$$T = \frac{2\pi r}{v} = \frac{2\pi m}{qB}$$

$$\therefore B = 2\pi m/qT$$

$m = 9.1 \times 10^{-31}$ किग्रा, $v = 1.6 \times 10^{-19}$ कू, $T = 10^{-9}$ से

$$\therefore B = \frac{2\pi \times 9.1 \times 10^{-31}}{1.6 \times 10^{-19} \times 10^{-9}} = 3.6 \times 10^{-2} \text{ टेस्ला}$$

उल्लेखनीय है कि T का मान v पर निर्भर नही करता।

13.10 धारावाही चालक पर चुम्बकीय क्षेत्र में बल (Force on a Current Carrying Conductor)

यदि धारावाही चालक को चुम्बकीय क्षेत्र में रखें (चित्र 13.19) तो चालक में गतिशील स्वतंत्र इलेक्ट्रॉनों
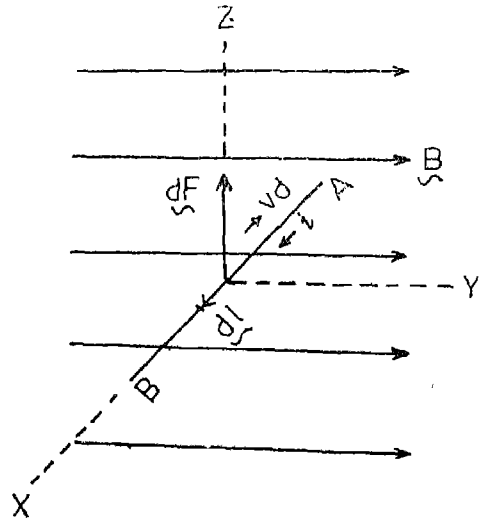
चित्र 13.19 : धारावाही तार पर चुम्बकीय क्षेत्र में बल

पर लगने वाला बल चालक पर लगता है। धारा का मान होता है।

$$I=enAv_d$$

जिसमें n चालक में स्वतंत्र इलेक्ट्रॉनों की घनता है, v_d इलेक्ट्रॉनों का अनुगमन वेग है, और A चालक का काट क्षेत्रफल है।

अब प्रत्येक इलेक्ट्रॉन पर बल $(-e)(\mathbf{v_d}\times\mathbf{B})$ लगता है। चालक की dl लम्बाई में इलेक्ट्रॉनों की संख्या nAdl होगी, अतः चालक के dl खण्ड पर अनुभवित बल

$$dF=nAdl\,(-e)\,(v_d\times B)$$
$$=-nAe\,(dl\,\mathbf{v_d}\times B)$$

यदि हम *dl* को सदिश मानें और विद्युतधारा की दिशा मे धनात्मक ले, तो $\mathbf{v_d}$ की दिशा *dl* के विपरीत होगी। फलत *dl* v_d को $-dl\,v_d$ लिया जायगा। फलतः

$$\mathbf{dF}=nAev_d(dl\times\mathbf{B})$$
$$=I\,(dl\times\mathbf{B}) \qquad \cdots(13.27)$$

यदि चालक ऋजुरेखी हो और चुम्बकीय क्षेत्र **B** एक समान हो तो *l* लम्बाई के चालक पर बल होगा

$$F=I\,(l\times B) \qquad \cdots(13.28)$$

यदि चालक की लम्बाई B के समांतर हो तो F=0, यदि अभिलम्ब हो, जैसा चित्र 13.19 में है, तो बल का मान

$$F=IlB \qquad \cdots(13.29)$$

होगा। यदि I ऐंपियर में, l मीटर में और B टेस्ला में लें, तो F का मान न्यूटन में होगा। बल की दिशा l और B दोनों के अभिलम्ब होगी। सदिशों **F, l** और **B** का सम्बन्ध वामहस्त नियम से व्यक्त होता है। बाएं हाथ का अँगूठा और निकटस्थ दो अँगुलियाँ परस्पर लम्बवत रखिए, और प्रथम अंगुली को चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा में तथा मध्य अँगुली को धारा की दिशा में रखिए, तो चालक पर लगने वाला बल अँगूठे की दिशा में होगा।

समांतर धारावाही तारों के बीच बल (Force Between Parallel Wires Carrying Current) मान लीजिए AB और CD दो लम्बे समांतर तार हैं (चित्र 13.20) जिनके बीच दूरी r है। तो CD में प्रवाहित धारा I_2 के कारण तार के किसी बिंदु P पर चुम्बकीय बलक्षेत्र होगा—
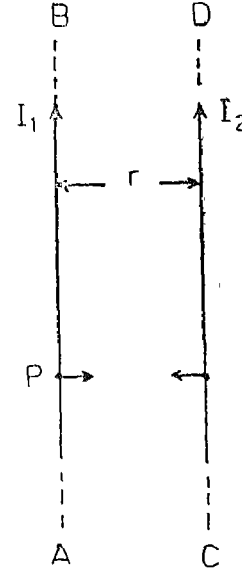
चित्र 13.20 : समांतर धाराओं के बीच लगने वाले बल की गणना

$$B=\frac{\mu_0 I_2}{2\pi r}$$

यह बलक्षेत्र AB के अभिलम्ब और इस पुस्तक के पृष्ठ से बाहर निकलता हुआ होगा। तार AB की L मीटर लम्बाई पर बल होगा I_1LB (सूत्र 13.28 से), अतः प्रति मीटर के लिए बल होगा।

$$F=I_1B=\frac{\mu_0 I_1 I_2}{2\pi r}$$

जिसमें I_1 तार AB में प्रवाहित धारा है। यह बल AB तथा बलक्षेत्र B दोनों के अभिलम्ब होगा; अतः इस पुस्तक के पृष्ठ के तल में होगा। धाराएँ एक ही दिशा में हों तो AB पर बल CD की ओर होगा, अन्यथा यह प्रतिकर्षण बल होगा। यदि I_1 तथा I_2 ऐम्पियर में और r मीटर में हो, तो F न्यूटन/मीटर में होगा*।

* इस सूत्र से μ_0 का मात्रक न्यूटन/(ऐं)^2 प्राप्त होता है। पहले इसे वेबर 1 ऐं मी बता चुके हैं। इस प्रकार 1 वेबर=1 न्यू मी ऐं

ऐम्पियर की परिभाषा (Definition of Ampere)

यदि $I_1 = I_2 = 1$ ऐम्पियर, और $r = 1$ मीटर, तो

$$F = \frac{\mu_0}{2\pi} = 2 \times 10^{-7} \text{ न्यूटन/मीटर}$$

यह ऐम्पियर को परिभाषित करने का आधार है। यदि निर्वात में दो अनंत लम्बाई के, और नगण्य काट क्षेत्रफल के, तार 1 मीटर दूरी पर समांतर लगे हों, और दोनों मे बराबर बहने वाली विद्युतधारा के कारण प्रत्येक तार पर 2×10^{-7} न्यूटन प्रति मीटर बल अनुभवित हो, तो उस विद्युतधारा को 1 ऐम्पियर कहेंगे।

उदाहरण 13.8 यदि दो लंबे समांतर तारों में धाराएँ 3 ऐ और 4 ऐ विपरीत दिशाओं में प्रवाहित हों, और तारों के बीच की दूरी 10 सेमी हो, तो तारों के बीच पारस्परिक बल की गणना कीजिए।

हल

विपरीत दिशाओं के कारण पारस्परिक बल प्रतिकर्षण का होगा। बल का मान

$$F = \frac{\mu_0 I_1 I_2}{2\pi r}$$

दिया है $I_1 = 3$ ऐ, $I_2 = 4$ ऐ, $r = 0.1$ मी

$\mu_0 = 4 \times 10^{-7}$ न्यू/ऐ^2

$$\therefore F = \frac{4 \times 10^{-7} \times 3 \times 4}{2 \times 0.1} = 2.4 \times 10^{-5} \text{ न्यू/मी}$$

13.11 धारावाही कुंडली पर चुम्बकीय क्षेत्र के कारण बल-आघूर्ण (Torque on a Current Carrying Coil in a Magnetic Field)

मान लीजिए किसी एकसमान क्षैतिज चुम्बकीय बल-क्षेत्र B मे एक आयताकार तार का लूप ABCD ऊर्ध्वाधर लटका हुआ है, और लूप का तल बलक्षेत्र के समांतर (चित्र 13.21 a) है। तार में धारा I तीरचिन्हों की दिशा में बह रही हो तो उसकी दोनों ऊर्ध्व भुजाओं AB तथा BC पर बल F=IBl लगेगा, जहाँ l लूप की ऊर्ध्व भुजा की लम्बाई है। बाएं हाथ के नियम से AB पर बल इस पुस्तक के कागज के पृष्ठ के अंदर और BC
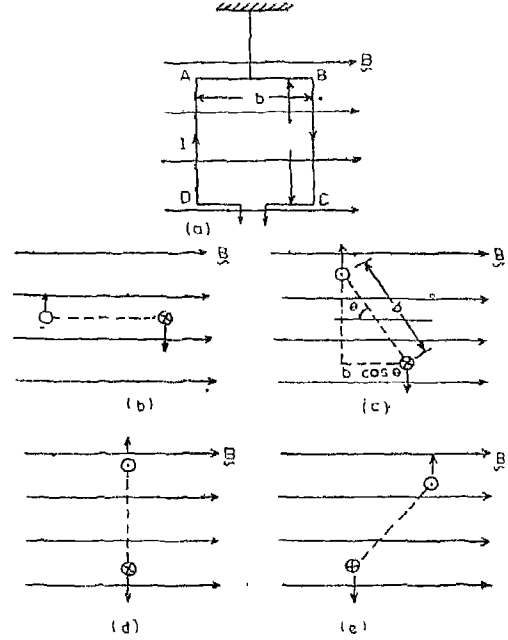
चित्र 13.21 : एकसमान चुम्बकीय क्षेत्र में स्थित कुंडली पर बल-आघूर्ण

पर कागज के पृष्ठ के बाहर की ओर होगा। लूप की एक अनुप्रस्थ काट को ऊपर से देखने पर जैसा लगेगा वह चित्र (13.21 b) मे दिखाया गया है। इसमें चिन्ह ⊙ पर धारा कागज से बाहर आ रही है और चिन्ह ⊕ पर धारा कागज के भीतर जा रही है। छोटे तीरचिन्ह इन धाराओं के वाहक तारों पर लगने वाले बल व्यक्त करते है।

ये बल एक बल-युग्म बनाते हैं, और लूप पर लगने वाले इस बल-युग्म का आघूर्ण होगा।

$$\tau = IBl \times b = IBA \qquad ...(13.30)$$

जिसमें b लूप की क्षैतिज भुजा की लम्बाई है, और $l \times b = A$ लूप का क्षेत्रफल है।

लूप की धारा पर चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा आरोपित इस बल आघूर्ण के कारण लूप घूमेगा। ऊर्ध्व भुजाओं पर बल

IBl सदा बने रहेंगे, किन्तु बल-युग्म का आघूर्ण बदलेगा, क्योंकि लूप का तल बलक्षेत्र से कोण θ बनाए तो बलो के बीच की दूरी b cosθ हो जाती है (चित्र 13.21 c)। फलत: सार्वरूप में

$$\tau = I\ Bl \times b\cos\theta = I\ BA\cos\theta$$

यदि एकाकी लूप के बदले n वेष्ठनों की कुंडली हो तो

$$\tau = IBAn\cos\theta \qquad ...(13.31)$$

स्पष्ट है कि कुंडली का तल जब बलक्षेत्र से लम्बवत हो जाएगा तो बलयुग्म का मान शून्य हो जाएगा (चित्र 13.21 d)।

क्षैतिज भुजाओं AB और CD पर लगने वाले बलों पर भी विचार उचित है। कुंडली का तल चुम्बकीय क्षेत्र के समान्तर हो ($\theta = 0°$) तब ये भुजाएँ क्षेत्र के समान्तर होंगी, फलत: इन पर बल शून्य होगा। यह दिखाया जा सकता है कि चुंबकीय क्षेत्र का कुंडली पर कुल प्रभाव समीकरण (13.31) से व्यक्त बल-आघूर्ण ही होता है। यह सिद्ध कर सकते है कि यह बल-आघूर्ण सभी ज्यामितीय स्वरूप की कुंडलियों के लिए लागू होता है; A कुंडली का क्षेत्रफल होना चाहिए।

कुंडली की संतुलन स्थिति (Equilibrium Position of the Coil)

यदि कुंडली घूमने के लिए स्वतंत्र हो, तो वह बल आघूर्ण के अंतर्गत घूमेगी। जब उसका तल चुंबकीय क्षेत्र से अभिलम्ब ($\theta = 90°$) हो जायगा, तो बल-आघूर्ण शून्य हो जायगा। किन्तु घूर्णीय गतिज ऊर्जा के कारण कुंडली इससे आगे भी घूम जाएगी। तब पहले से विपरीत दिशा में बल-आघूर्ण लगना प्रारंभ हो जाएगा; यह कुंडली की कोणीय गति को रोकेगा और फिर कुंडली को वापिस $\theta = 90°$ की ओर लाएगा। इसी प्रकार कुंडली कोणीय कंदन करेगी। अंतत: घर्षण में ऊर्जा क्षय के कारण कुंडली $\theta = 90°$ पर स्थिर हो जायगी, अर्थात् उसका तल बलक्षेत्र से अभिलम्ब हो जायगा।

13.12 बल-चुम्बक धारामापी (The Moving Coil Galvanometer)

चित्र 13.22 मे प्रदर्शित व्यवस्था पर विचार कीजिए।
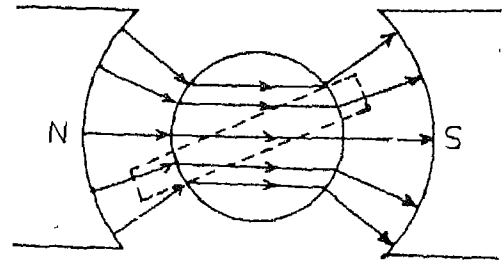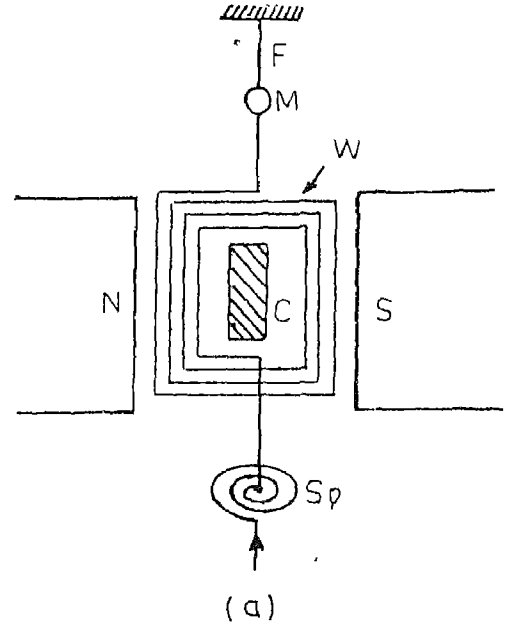
चित्र 13.22 : (a) बल-कुंडली धारामापी : F निलंबन तंतु, M दर्पण, W कुंडली, C नरम लौह क्रोड़, Sp स्प्रिंग, NS चुम्बक

(b) ध्रुवाग्रों के बीच त्रिज्यीय बलक्षेत्र

एक नालदार स्थायी चुम्बक के ध्रुवाग्र बेलनाकार हैं, जिनके बीच नर्म लोहे का बेलन स्थित है। ध्रुवाग्र और बेलन के बीच चुम्बकीय बल-रेखाएँ त्रिज्यीय हो जाती हैं (चित्र 13.22 b)। एक धात्वीय फ्रेम पर पतले तार

के अनेक वेष्ठनों से बनी एक कुंडली उपरोक्त चुम्बकीय बलक्षेत्र में एक ऐंठन-तार द्वारा लटका दी जाती है। यह ध्रुवाग्रों और बेलन के बीच के स्थल में घूमने के लिए स्वतंत्र होती है। उल्लेखनीय है कि कुंडली की कोई भी कोणीय स्थिति हो, उसका तल सदा ही बलरेखाओं के समांतर रहेगा, क्योंकि बलरेखाएं त्रिज्यीय है। फलतः कुंडली में धारा I प्रवाहित हो, तो बल-आघूर्ण सदा यही रहेगा—τ=IBAn जिसमे कुंडली का क्षेत्रफल A है। वेष्ठन-संख्या n, और ध्रुवाग्र तथा बेलन के बीच के स्थल में चुंबकीय बल-क्षेत्र B है।

इस बल-आघूर्ण के कारण कुंडली घूमेगी और जिस तंतु से वह लटकी है उसमें ऐंठन के कारण एक प्रत्यानयन आघूर्ण पैदा होगा। यदि तंतु मे एकांक ऐंठन से उत्पन्न होने वाला प्रत्यानयन आघूर्ण C हो, तो यह ऐंठन स्थिरांक कहलाता है। संतुलन की स्थिति में ऐंठन θ पर कुंडली रुके तो प्रत्यानयन आघूर्ण $C\theta$ और विक्षेपक आघूर्ण बराबर होंगे।

$$C\theta = IBAn$$

$$\text{या} \quad \theta = \frac{BAnI}{C} \qquad \cdots(13.32)$$

इस प्रकार कुंडली का विक्षेप उसमें प्रवाहित धारा के समानुपाती होता है।

ऊपर वर्णित युक्ति धारा मापने की आधारभूत युक्ति है, और इसे धारामापी कहते हैं। कुंडली के विक्षेप को मापने के लिए उस पर एक छोटा-सा दर्पण लगाते है और प्रकाश के एक संकरे पुंज के परावर्तन द्वारा विक्षेप मापते है। लटकी हुई कुंडली वाला यह उपकरण नाजुक होता है, और इसके बरतने में सावधानी रखनी होती है। प्रायः कुंडली को कीलकित कर देते है और प्रत्यानयन आघूर्ण के लिए एक स्प्रिंग का उपयोग करते है (चित्र 13.23)। इस दशा में इसकी सुग्राहिता तो कम हो जाती है, किन्तु यंत्र को उठाने-धरने तथा कहीं भी ले जाने में सुविधा हो जाती है। मूल डिजाइन में कोई अंतर नहीं है।
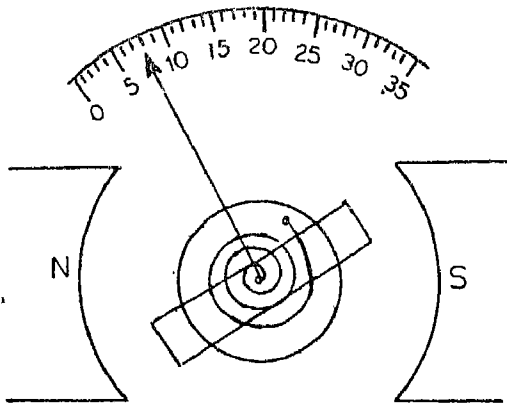
अमीटर (Ammeter) किसी भी धारामापी को यदि धारा के लिए अंशांकित करलें तो वह अमीटर कहलाता है। इस दृष्टि से ऊपर वर्णित धारामापी स्वयं ही एक अत्यन्त सुग्राही अमीटर है, वह 10^{-9} ऐ की कोटि की धारा सरलता से माप सकता है। कीलकित धारामापी माइक्रोऐंपियर कोटि की धाराएँ मापता है।

किंतु धारामापी की कुल परास बहुत कम होती है। उदाहरणतः कीलकित कुंडली वाला यंत्र पूर्ण-स्केल विक्षेप पर सामान्यतः कुछ मिलीऐंपियर तक ही धारा मापेगा। अधिक धाराएँ मापने के लिए इनका निम्न प्रकार से अनुकूलन किया जाता है।

मान लीजिए कोई धारामापी i_g धारा पर पूर्ण-स्केल विक्षेप देता है, और हम उसे I धारा की परास के लिए अनुकूलित करना चाहते है। धारामापी की कुंडली का प्रतिरोध R_g है, तो हम उसके समांतर में, चित्र 13.24 के अनुसार एक प्रतिरोध R_s लगा देते है, जिसे शंट कहते

चित्र 13.23 : कीलकितक कुंडली वाला धारामापी
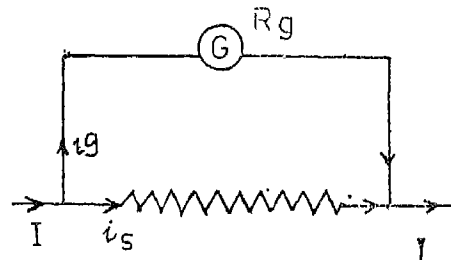
चित्र 13.24 : धारामापी का अमीटर में परिवर्तन

हैं। R_s का मान ऐसा होना चाहिए कि धारामापी की कुंडली से धारा i_g ही बहे, और शेष धारा $I-i_g$ इस समांतर प्रतिरोध R_s में से बहे।

स्पष्ट है कि

$$i_g R_g = (I - i_g) R_s$$

$$\text{या } R_s = \frac{i_g}{I - i_g} . R_g \qquad ...(13.33)$$

प्राय. i_g का मान I से बहुत कम होता है, इसलिए शंट का प्रतिरोध कुण्डली के प्रतिरोध से काफी कम होता है।

उदाहरण 13.9 एक धारामापी का प्रतिरोध 120 ओम है और पूर्ण-स्केल विक्षेप के लिए 5×10^{-4} ऐ धारा उसे चाहिए। उसके समांतर कितने प्रतिरोध की शंट लगानी होगी कि वह 5 ऐ परात का अमीटर बन जाए ? अमीटर का प्रतिरोध कितना हो जायेगा ?

हल

$I = 5$ ऐ $R_g = 120$ ओम, $\qquad i_g = 5 \times 10^{-4}$ ऐ

$$\therefore R_s = \frac{i_g}{I - i_g} R_g = \frac{5 \times 10^{-4}}{4.9995} \times 120 = 0.012 \text{ ओम}$$

अमीटर का प्रतिरोध R_g तथा R_s के समांतर संयोजन के प्रतिरोध के तुल्य होगा। इसे R कहे तो :

$$R = \frac{R_s R_g}{R_s + R_g} = \frac{0.012 \times 120}{0.012 + 120} = 0.012 \text{ ओम}$$

स्पष्ट है कि धारामापी को हम i_g से अधिक किसी भी परास के अमीटर में परिवर्तित कर सकते है। व्यवहार में अमीटर का प्रतिरोध बहुत अल्प होना चाहिए, ताकि किसी भी परिपथ में उसे लगाने पर माप्य धारा में उसके द्वारा विशेष परिवर्तन न आए। इसका अर्थ यह हुआ कि i_g का मान अभीष्ट परास I से बहुत कम होना चाहिए।

वोल्टमीटर (Voltmeter) विभवांतर मापने वाले यंत्र को वोल्टमीटर कहते है और धारामापी को वोल्टमीटर के रूप में भी प्रयुक्त कर सकते है। किंतु इस मूल उपकरण की परास बहुत कम होती है; पूर्ण-स्केल विक्षेप के लिए विभवांतर $V_g = R_g i_g$ होगा, जो उदाहरण 13.9 के लिए $V_g = 120 \times .0005 = 0.06$ वोल्ट ही होगा। किंतु धारामापी को उच्चतर विभवांतर मापने के लिए अनुकूलित किया जा सकता है। इसके लिए उससे श्रेणीक्रम मे एक उच्च प्रतिरोध r जोड़ना होता है। यदि वोल्टता
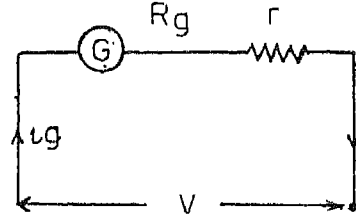
चित्र 13.25 : धारामापी का वोल्टमीटर में परिवर्तन

की परास V ($>V_g$) करनी है (चित्र 13.25), तो इसका आशय यह हुआ कि R_g तथा r के श्रेणी संयोजन पर V वोल्टता लगाने से धारामापी मे धारा i_g प्रवाहित हो। अत:

$$V = (R_g + r) i_g \qquad \cdots(13.34)$$

निम्नलिखित उदाहरण से यह क्रिया स्पष्टतर होगी।

उदाहरण 13.10 : उदाहरण 13.9 के धारामापी मे कितना प्रतिरोध श्रेणीबद्ध लगाएँ कि वह महत्तम 6 वोल्ट का विभवांतर माप सके ?

हल

6 वोल्ट का विभवांतर R_g तथा r प्रतिरोधों के श्रेणीक्रम संयोजन के सिरों पर लगाने पर पूर्ण-स्केल विक्षेप होना है, अर्थात् धारा i_g बहती है। अत:

$$6 = (R_g + r) i_g = (120 + r) 0.005$$

$$\text{या} \qquad r = 11880 \text{ ओम}$$

यदि किसी तार का प्रतिरोध R हो और उसमे धारा I
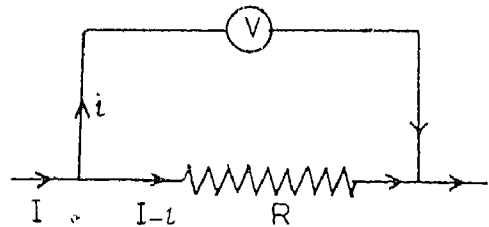
चित्र 13.26 : वोल्टमीटर में प्रवाहित धारामापित वोल्टता को प्रभावित करती है

प्रवाहित हो रही हो, तो इस प्रतिरोध के सिरों पर विभवांतर मापने वाले वोल्टमीटर का प्रतिरोध R से बहुत अधिक होना चाहिए। इसका कारण चित्र 13.26 से स्पष्ट होगा। वोल्टमीटर लगाने से पहले तार मे धारा I हो तो विभवांतर V=RI होगा, वोल्टमीटर लगाने के कारण धारा का एक अंश वोल्टमीटर मे से प्रवाहित होगा, शेष $I-i$ ही तार मे से प्रवाहित होगा, इसलिए मापित विभवातर होगा $V'=R(I-i)$। इस प्रकार मापित विभवांतर V से कम होगा। यदि V' को वास्तविक मान V के निकट रखना है, तो i बहुत कम होना चाहिए, अर्थात् वोल्टमीटर का प्रतिरोध बहुत अधिक होना चाहिए।

प्रश्न-अभ्यास

13.1 क्या चुम्बकीय बलक्षेत्र किसी गतिशील आवेश पर कोई कार्य करता है ?

13.2 यदि यह कल्पना करें कि पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र पृथ्वी के भीतर किसी विशाल वृत्तीय लूप-धारा के कारण है, तो इस लूप का तल क्या होगा, और उसमे धारा की दिशा क्या होगी ?

13.3 एक छोटी धारावाही कुण्डली किसी एकसमान चुम्बकीय बलक्षेत्र में रखी है। कुण्डली चुम्बकीय बल-क्षेत्र के सापेक्ष किस प्रकार विन्यस्थ होने की प्रवृत्ति दिखाएगी ?

13.4 समझाइए कि दो समांतर तारों में विपरीत दिशा मे धारा प्रवाहित हो तो वे प्रतिकर्षण क्यों करते है ?

13.5 दो समांतर तार एक ही दिशा में धारा ले जाएँ तो परस्पर आकर्षण दिखाते हैं, किन्तु दो इलेक्ट्रॉन-पुंज यदि एक ही दिशा में चलें तो परस्पर प्रतिकर्षण करते हैं। इसे समझाइए।
(संकेत : तार में धारा हो तो केवल चुम्बकीय बलक्षेत्र ही उत्पन्न होता है, जबकि इलेक्ट्रॉन पुंज के कारण वैद्‌युत और चुम्बकीय दोनों ही बलक्षेत्र पैदा होते हैं।)

13.6 चाँदी का परमाणु भार 108 है, घनत्व 10.50 ग्राम/सेमी^{3}। यदि चाँदी में एक इलेक्ट्रॉन प्रति परमाणु स्वतंत्र अवस्था मे हो तो 1.0×10^{-4} मी^{2} काट क्षेत्रफल के 1 मी लम्बे चाँदी के तार में स्वतंत्र इलेक्ट्रॉनों की संख्या परिकलित कीजिए। (5.83×10^{24})

13.7 यदि किसी लैम्प में धारा 300 मिऐ है तो एक मिनट में कितने इलेक्ट्रॉन उसमे से गुजरते हैं ? (1.12×10^{20})

13.8 किसी तार की लम्बाई L है, व्यास D है, और उसके सिरों पर विभवांतर V लगाया जाता है, तो निम्नलिखित क्रियाओं से वैद्‌युत क्षेत्र E, अनुगमन वेग v_d और प्रतिरोध R में क्या परिवर्तन होते हैं— (i) V दोगुना करने पर, (ii) L दोगुना करने पर, (iii) D दोगुना करने पर।

13.9 एक प्लेटिनम तार का प्रतिरोध 0° से पर 10 ओम और 273° से पर 20 ओम है। प्लेटिनम के प्रतिरोध का तापीय गुणांक ज्ञात कीजिए।

$\left(\alpha=\frac{1}{273}\right.$ प्रति से$\left.\right)$

13.10 यदि बिजली की दर 0.40 रु० प्रति किलोवाट घंटा हो, तो 60 वाट लैम्प को 5 दिन तक निरंतर जलाने का क्या खर्चा होगा ? (2.88 रुपये)

13.11 कमरे के ताप के निकट ताँबे-कॉन्स्टेन्टल को ताप-वैद्युत-युग्म का वि० वा० ब० 40 माइक्रोवोल्ट प्रति डिग्री होता है। यदि 100 ओम प्रतिरोध और 10 ऐम्पियर तक की सुग्राहिता का धारामापी हो, तो एकांकी युग्म की सहायता से न्यूनतम कितना तापांतर मापा जा सकता है? (2.5°)

13.12 हाइड्रोजन परमाणु में एक इलेक्ट्रॉन प्रोटान के गिर्द वृत्तीय परिक्रमा करता है। यदि वृत्त की त्रिज्या 5.3×10^{-11} मी और इलेक्ट्रॉन की चाल 2.18×10^{6} मी/से हो तो इलेक्ट्रॉन द्वारा प्रोटान पर कितना चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न किया जाता है? (12.5 टेस्ला)

13.13 एक क्षैतिज तार में पूर्व से पश्चिम की ओर 5 ऐ धारा प्रवाहित हो रही है। यदि तार का भार 3.0×10^{-2} किग्रा प्रतिमीटर है, तो उस न्यूनतम चुम्बकीय बलक्षेत्र की तीव्रता तथा दिशा ज्ञात कीजिए जो तार के भार को पूर्णत: वहन कर ले। (5.88×10^{-2} टेस्ला, उत्तर से दक्षिण)

13.14 एक लम्बे ऋजुतार में धारा 2 ऐं है। एक इलेक्ट्रॉन 4.0×10^{4} मी/से वेग से तार के समांतर और 0.1 मी दूरी पर धारा के विपरीत दिशा में चल रहा है। तार की धारा से उत्पन्न चुंबकीय क्षेत्र इलेक्ट्रॉन पर कितना बल लगता है? (2.56×10^{-20} न्यूटन, आकर्षण)

13.15 एक धारामापी की कुंडली 0.02 मी० × 0.08 मी० आकार की है, और उसमें पतले तार के 200 वेष्ठन है। धारामापी मे चुम्बकीय बलक्षेत्र 0.20 टेस्ला का और त्रिज्यीय है, और कुंडली को लटकाने वाले तनु का प्रत्यानयन बलयुग्म स्थिराक 10^{-6} न्यू मी/डिग्री है। तो—

(i) यदि धारामापी का स्केल 45° तक विक्षेप माप सके तो महत्तम कितनी धारा इस धारामापी मे मापी जा सकती है? (7.0×10^{-4} ऐं)

(ii) यदि न्यूनतम पठनीय विक्षेप 0.10 डिग्री हो, तो न्यूनतम कितनी धारा का इस यंत्र से अभिज्ञान हो सकता है? (1.66×10^{-6} ऐं)

13.16 एक धारामापी का आंतरिक प्रतिरोध 10.0 ओम है, और वह 5 मि ऐं धारा पर महत्तम विक्षेप देता है। इसको निम्नलिखित उपकरणों में बदलने के लिए क्या करना होगा—(i) 2.5 वोल्ट परास का वोल्टमीटर, (ii) 2.5 ऐं का अमीटर?

(श्रेणी प्रतिरोध = 490 ओम)

(शंट प्रतिरोध = $\frac{10}{499}$ ओम)

अध्याय 14

विद्युत चुम्बकीय प्रेरण (Electromagnetic Induction)

पहले हम देख चुके हैं कि विद्युतधाराओं से चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न होते है। इस अध्याय में हम इसके विलोम प्रभाव का अध्ययन करेंगे—यथा, चुम्बकीय क्षेत्रों के प्रभाव से विद्युतधारा की उत्पत्ति। यह क्रिया विद्युत-चुम्बकीय प्रेरण कहलाती है। इसकी खोज सन् 1831 में फैराडे ने की थी। इसका चुम्बकीय फ्लक्स से निकट सबंध है, जिसके विवरण से हम प्रारंभ करेंगे।

14.1 चुम्बकीय फ्लक्स (Magnetic Flux)

किसी बंद वक्र की कल्पना कीजिए (चित्र 14.1) जो
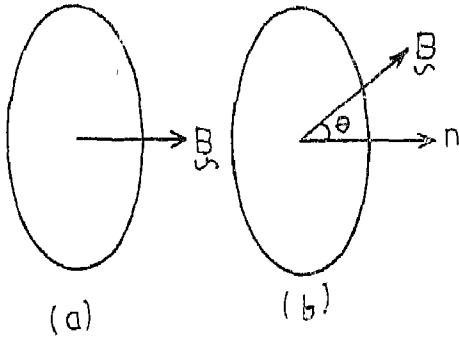
चित्र 14.1: किसी क्षेत्रफल से संलग्न चुम्बकीय फलक्स चुम्बकीय बलक्षेत्र के प्रति उस क्षेत्रफल के दिक्विन्यास पर निर्भर करता है।

A क्षेत्रफल के समतल तल को घेरती हो। मान लीजिए उसके अभिलम्ब कोई एकसमान चुम्बकीय बलक्षेत्र है, जिसकी तीव्रता B है। तो हम इस तल मे गुजरने वाले चुम्बकीय फ्लक्स, ϕ की परिभाषा इस प्रकार करते है—

$$\phi = AB \qquad ...(14.1)$$

यदि B की दिशा तल से अभिलम्ब न हो तो A में गुजरने वाला फ्लक्स होगा

$$\phi = \mathbf{B}.\mathbf{A}$$
$$= BA \cos \theta \qquad ...(14.2)$$

जहाँ θ सदिश $\mathbf{B}$ और तल के अभिलम्ब के बीच का कोण है।

चुम्बकीय फ्लक्स का मात्रक वेबर है। यदि 1 टेस्ला तीव्रता का एकसमान चुम्बकीय बलक्षेत्र लें तो उसके अभिलम्ब 1 मी^{2} क्षेत्रफल से गुजरने वाला फ्लक्स 1 वेबर होगा। इस प्रकार चुम्बकीय तीव्रता के मात्रक टेस्ला को वेबर/मी^{2} में भी व्यक्त कर सकते हैं।

धनात्मक और ऋणात्मक फ्लक्स (Positive and Negative Flux) किसी भी तल पर अभिलम्ब दो दिशाओं में खींचे जा सकते है। इसे यों भी कह सकते है कि तल की परिधि पर परिक्रमा दो प्रकार से की जा

सकती है। दर्शक के सामने रखे तल की परिक्रमा दक्षिणावर्ती रूप में करें तो तल का धनात्मक अभिलम्ब दर्शक से परे (दूर की ओर) माना जाता है। यदि चुम्बकीय बलक्षेत्र की दिशा यही हो ($\theta = 0°$) तो फ्लक्स धनात्मक, और विपरीत हो ($\theta = 180°$) तो फ्लक्स ऋणात्मक माना जाता है।

ध्यान दे कि धनात्मक या ऋणात्मक का संबंध इस बात से है कि तल की परिक्रमा दक्षिणावर्ती की जाती है या वामावर्ती। बाद में हम देखेंगे कि फ्लक्स परिवर्तन के कारण उत्पन्न वि०वा०ब० का इस परिक्रमा से संबंध होता है।

14.2 विद्युतचुम्बकीय प्रेरण के नियम : (Laws of Electromagnetic Induction)

विद्युतचुम्बकीय प्रेरण के विषय में दो नियम है : (i) फैराडे का नियम, जो प्रेरित वि०वा०ब० का परिमाण देता है, (ii) लैंज का नियम, जो प्रेरित वि०वा०ब० की दिशा बताता है।

(i) फैराडे का नियम (Faraday's Law) फैराडे ने बताया कि किसी भी परिपथ से घिरे चुम्बकीय फ्लक्स में परिवर्तन हो तो उस परिपथ में एक वि०वा०ब० प्रेरित हो जाता है। इस प्रेरित वि०वा०ब० E का मान उस परिपथ से गुजरने वाले फ्लक्स में परिवर्तन की दर के बराबर होता है :

$$|E| = \frac{d\phi}{dt} \quad \ldots(14.3)$$

(ii) लैंज का नियम (Lenz's Law) परिपथ में प्रेरित वि०वा०ब० की दिशा ऐसी होती है कि यदि उसके कारण प्रेरित धारा बहे तो वह धारा प्रेरण उत्पन्न करने वाले परिवर्तन का विरोध करेगी। अर्थात्, यदि चुम्बकीय फ्लक्स घट रहा है, तो प्रेरित धारा ऐसी दिशा मे बहेगी कि उसके कारण फ्लक्स का घटना रुके, अर्थात् प्रेरित धारा से उत्पन्न फ्लक्स मूल फ्लक्स की दिशा में होगा। यदि फ्लक्स बढ़ रहा है, तो प्रेरित धारा से उत्पन्न फ्लक्स मूल फ्लक्स के विपरीत दिशा मे होगा।

लैंज के नियम को दृष्टिगत रखकर फैराडे के नियम को यों लिखते हैं :

$$E = -\frac{d\phi}{dt} \quad \ldots(14.4)$$

यदि किसी कुंडली मे N वेष्ठन हों तो प्रत्येक वेष्ठन के सिरों पर इतना वि०वा०ब० होगा। N वेष्ठन श्रेणीबद्ध होने से कुल वि०वा०ब० N गुना हो जाएगा। इसलिए

$$E = -N\frac{d\phi}{dt} \quad \ldots(14.5)$$

यदि फ्लक्स समय t में प्रारंभिक मान ϕ_1 से अंतिम मान ϕ_2 तक पहुंचता है, तो औसत वि०वा०ब० के लिए

$$E = -N\frac{\phi_2 - \phi_1}{t} \quad \ldots(14.6)$$

यदि फ्लक्स वेबर में ले, समय सेकंड में तो E का मान वोल्ट में होगा।

उदाहरण 14.1 : 100 वेष्ठनों की तथा 0.20 मी व्यास की एक कुंडली का तल किसी एकसमान चुम्बकीय बलक्षेत्र से अभिलम्ब रखा गया है। यदि बलक्षेत्र एकसमान दर से 5.0×10^{-2} सेकंड में 0.10 वेबर/मी^{2} से बढ़ाकर 0.30 वेबर/मी^{2} कर दिया जाए, तो कुंडली मे उत्पन्न वि०वा०ब० की गणना कीजिए।

हल $$E = -N\frac{\phi_2 - \phi_1}{t}$$

यहाँ, $N = 100; \phi_2 - \phi_1 = A(B_2 - B_1)$

$= \pi \times 0.10^2\ (0.30 - 0.10)$ वेबर

$t = 5.0 \times 10^{-2}$ से

$$\therefore E = -\frac{100\pi \times (0.10)^2 \times 0.20}{5 \times 10^{-2}}$$

$= -12.6$ वोल्ट

ऋण चिह्न का आशय यह है कि वि०वा०ब० के कारण यदि धारा बहे तो वह फ्लक्स की वृद्धि का विरोध करेगी।

उदाहरण 14.2 A क्षेत्रफल की एक कुंडली प्रारम्भ में किसी एकसमान चुम्बकीय बलक्षेत्र B में इस प्रकार रखी है कि उसके अभिलम्ब और बलक्षेत्र के बीच का कोण

0° है (चित्र 14.2 a)। यदि कुंडली अपने किसी भी व्यास के चहुं ओर एकसमान दर से घूमकर समय T में
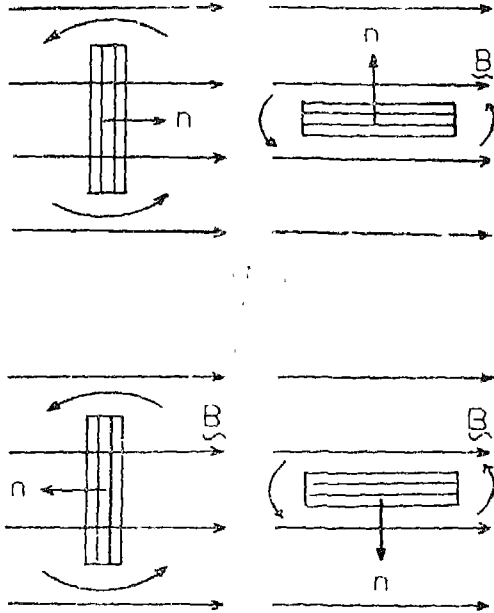
चित्र 14.2 : उदाहरण 14.2 के लिए

चक्कर पूरा करती रहे तो कुंडली में निम्नलिखित स्थिति अंतरालों के बीच औसत वि०वा०ब० की गणना कीजिये

(i) 0° से 90° स्थिति के बीच, चित्र 14.2 b

(ii) 90° से 180, स्थिति के बीच, चित्र 14.2 c

(iii) 180° से 270° स्थिति के बीच, चित्र 14.2 d

(iv) 270° से 360, स्थिति के बीच, चित्र 14.2 a

हल

(i) प्रारंभिक फ्लक्स, स्थिति (a) में ϕ_1=BA
अंतिम फ्लक्स स्थिति (b) में ϕ_2=BA cos 90°=0

समय $t=\frac{T}{4}$

औसत प्रेरित वि० वा० ब० $\bar{E}=-(\phi_2-\phi_1)/t$

$$=-(0-BA)\frac{4}{T}=\frac{4BA}{T}$$

(ii) प्रारंभिक फ्लक्स, स्थिति (b) में ϕ_1=0
अंतिम फ्लक्स स्थिति (a) मे

ϕ_2=BA cos 180°= −BA

औसत प्रेरित वि० वा० ब० $\bar{E}=-\frac{(-BA-0)}{T/4}$

$$=\frac{4BA}{T}$$

(iii) प्रारंभिक फ्लक्स स्थिति (c) में ϕ_1=− BA
अंतिम फ्लक्स स्थिति (d) में ϕ_2=0

औसत प्रेरित वि० वा० ब० $\bar{E}=-\frac{0-(-BA)}{T/4}$

$$=-\frac{4BA}{T}$$

(iv) प्रारंभिक फ्लक्स स्थिति (d) में ϕ_1=0
अंतिम फ्लक्स स्थिति (a) मे ϕ_2=BA

∴ औसत प्रेरित वि० वा० ब० $\bar{E}=-\frac{BA-0}{T/4}$

$$=-\frac{4BA}{T}$$

परिभ्रमण के अंतिम अर्धभाग में प्रेरित वि० वा० ब० की दिशा प्रथम अर्धभाग की दिशा से विपरीत है, अतः स्पष्ट है कि वि० वा० ब० की दिशा का परिवर्तन प्रति आधे परिभ्रमण पर θ=180° और 0° स्थितियो में होता है।

14.3 प्रेरित वि० वा० ब० उत्पन्न करने की विधियाँ (Methods of Creating Induced e.m.f.)

प्रेरित वि० वा० ब० परिपथ से गुजरने वाले चुम्बकीय फ्लक्स मे परिवर्तन के कारण उत्पन्न होता है। समीकरण (14.2) के अनुसार चुम्बकीय फ्लक्स निम्नलिखित विधियों से बदला जा सकता है—

(क) चुम्बकीय बलक्षेत्र की तीव्रता B बदलकर

(ख) लूप (परिपथ) का क्षेत्रफल A बदलकर

(ग) B और लूप के बीच का कोण बदलकर

प्रेरित वि० वा० ब० को B के परिवर्तन से उत्पन्न करना (Induced e.m.f. by Changing B) : ऐसा

करने की अनेक विधियां हैं । कुछ उदाहरण यह है : (i) चित्र 14.3 मे यदि लूप और तार के बीच आपेक्षिक गति हो तो तार में वि० वा० ब० उत्पन्न हो जायगा । किसी
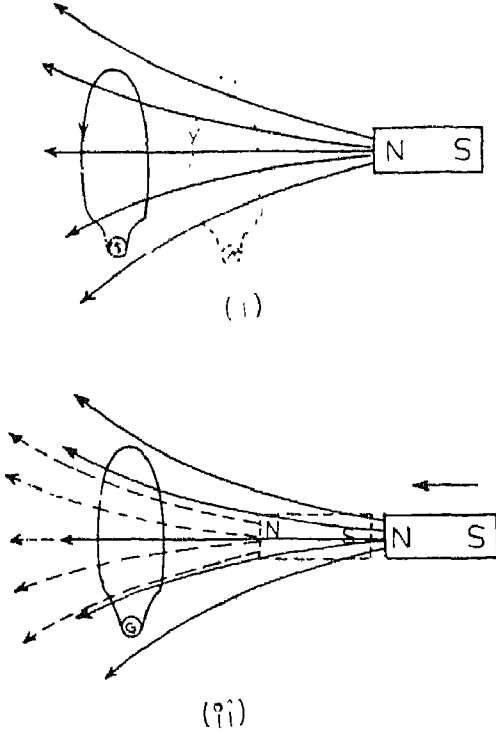
चित्र 14.3 : प्रेरित वि० वा० ब० किसी भी कुण्डली में तब उत्पन्न होता है जब उस कुण्डली और चुम्बकीय क्षेत्र के स्रोत को आपेक्षिक गति के कारण कुण्डली पर B का परिवर्तन हो और फलतः फ्लक्स का परिवर्तन हो ।

एक को स्थिर रखकर (चाहे तार को चाहे चुम्बक को) यदि दूसरे को खिसकाएँ तो लूप की स्थिति पर चुम्बकीय बलक्षेत्र बदल जाएगा । इसके कारण लूप से पार होने वाला फ्लक्स बदलेगा, और फलतः वि० वा० ब० उत्पन्न होगा । प्रेरित वि० वा० ब० की दिशा लैंज के नियम के अनुसार होगी अर्थात् उसके द्वारा उत्पन्न विद्युत धारा के कारण उत्पन्न फ्लक्स उस फ्लक्स परिवर्तन के विपरीत होगा जो आपेक्षिक गति के कारण उत्पन्न हुआ था ।

यह उल्लेखनीय है कि यदि चुम्बक के स्थान पर एक धारावाही कुंडली ले लें, तब भी पूर्वोक्त विचाराधीन कुंडली की उसके सापेक्ष चलाने से कुंडली में वैसे ही वि० वा० ब० उत्पन्न होंगे ।

(ii) B को बदलने की एक अन्य विधि चित्र 14.4 मे प्रदर्शित है । दो परिपथ आसपास दिखाए हैं, जिनमे से एक मे धारा प्रवाहित कर सकते है, और उसे बदल भी सकते है, दूसरे में वि० वा० ब० मापने का एक साधन है । पहले परिपथ में प्रवाहित धारा के कारण दूसरे परिपथ के स्थल पर चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न होता है और फलतः दूसरे परिपथ में कुछ फ्लक्स गुजरता है । पहले परिपथ में धारा बदलने से यह फ्लक्स बदलेगा और दूसरे परिपथ में वि० वा० ब० उत्पन्न होगा । धारा का स्विच खोलने या बंद करने पर प्रभाव अधिक दीखेगा, प्रतिरोध R द्वारा धारा बदलने से कम दीखेगा, क्योंकि वि० वा० ब० का परिमाण फ्लक्स परिवर्तन की दर पर निर्भर
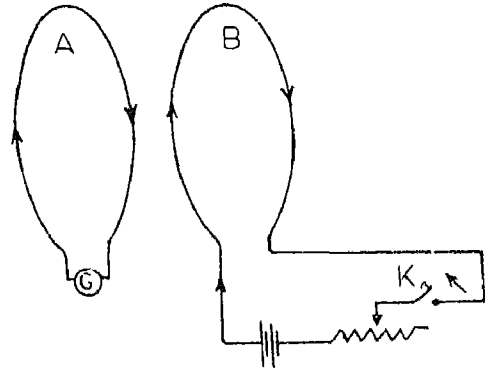
चित्र 14.4 : पड़ोस के परिपथ में धारा परिवर्तन के कारण फ्लक्स परिवर्तन होने पर प्रेरित वि०वा०ब० की उत्पत्ति ।

करता है, जितना द्रुत यह परिवर्तन होगा उतना ही अधिक वि० वा० ब० प्रेरित होगा और तत्संगत प्रेरित धारा भी अधिक होगा ।

A के परिवर्तन से प्रेरित वि० वा० ब० (Induced e.m f. by Changing A) : चित्र 14.5 में एक U शक्ल की चालक पटरी दिखाई गई है, जो चुम्बकीय बलक्षेत्र में
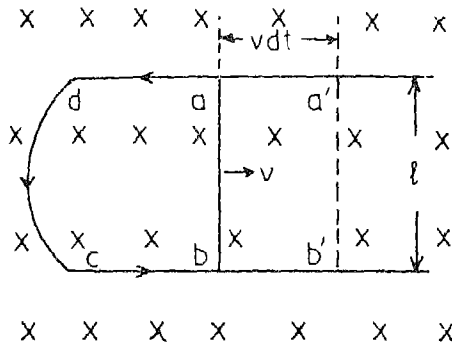
चित्र 14.5 : परिपथ का क्षेत्रफल बदलने के कारण वि० वा० ब० का प्रेरण।

स्थित है। एक चालक ab इस पटरी पर v वेग से दाहिनी ओर चल रहा है। बलक्षेत्र को एकसमान और कागज के तल के लम्बवत भीतर की ओर मान लें। यदि चालक dt समय मे स्थिति ab से a'b' पर पहुंचता है, तो फ्लक्स परिवर्तन

$d\phi = B$ (क्षेत्रफल a'b'cd − क्षेत्रफल abcd)

$= B$ (क्षेत्रफल a'b' ba)

$= Blvdt$ (—14.7)

जिसमें l पटरी की दो भुजाओं की दूरी है। इससे उत्पन्न प्रेरित वि० वा० ब०

$$|E| = \frac{d\phi}{dt} = Blv \qquad (—14.8)$$

इससे उत्पन्न प्रेरित धारा चित्र में प्रदर्शित दिशा में होगी, जो लैंज के नियम से प्राप्त होती है।

उदाहरण 14.3 एक वायुमान के पक्षाग्रों की दूरी 30 मीटर है। वह क्षैतिज चाल 100 मी/से से चल रहा है और उस स्थान पर पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के अर्ध घटक का मान 5.0×10^{-5} वेबर/मी² है। उसके पक्षाग्रों के बीच विभवांतर कितना होगा ?

हल

पक्षाग्रों के बीच की समस्त धातु को एकांकी चालक माना जा सकता है, जो चुम्बकीय क्षेत्र के लम्बवत् चल रहा है। प्रेरित वि० वा० ब० ही पक्षाग्रों के बीच विभावांतर का कारण है। उसका मान होगा—

$E = Blv$

यहाँ $B = 5.0 \times 10^{-5}$ वेबर/मी²; $l = 30$ मी, $v = 100$ मी/से

$\therefore \quad E = 5.0 \times 10^{-5} \times 30 \times 100$

$= 0.15$ वोल्ट

कुंडली और बलक्षेत्र का आपेक्षिक दिक्विन्यास बदलने से प्रेरित वि० वा० ब० (Induced e.m.f. by Changing Relative Orientation of the Coil and the Field) : एक कुंडली पर विचार कीजिए जो अपने तल में स्थित किसी अक्ष के चहुंओर परिभ्रमण करने को
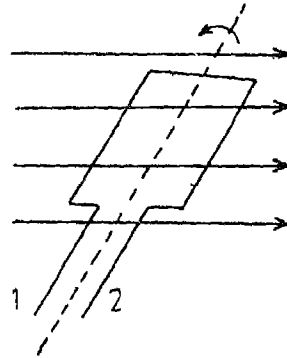
चित्र 14.6 : चुम्बकीय बलक्षेत्र में परिभ्रमण करती कुण्डली।

स्वतंत्र है। यह अक्ष एक चुम्बकीय क्षेत्र से लम्बवत् है (चित्र 14.6)। जिस समय कुडली का अभिलम्ब क्षेत्र से कोण बनाता है, कुंडली से संलग्न फ्लक्स है,

$$\phi = BA\cos\theta \qquad \cdots(14.10)$$

कुंडली के परिभ्रमण से उसका पारगमित फ्लक्स निरंतर बदलता है, और इस कारण कुंडली में वि० वा० ब० प्रेरित होता है। किंतु इस वि० वा० ब० की दिशा नियत नहीं रहेगी, वह हर आधे परिभ्रमण पर उलटती जाएगी (देखिए उदाहरण 14.2) अर्थात् कुंडली के अंतिम टर्मिनल 1 और 2 प्रत्येक $\frac{T}{2}$ समय में एकांतर से + और — होते रहेंगे, जहाँ T परिभ्रमण काल है। यदि इन टर्मि-

नलों को बाह्य परिपथ से जोड़े तो उसमें ऐसी धारा बहेगी जो प्रति T/2 समय पर दिशा बदलती रहती है ।

मान लीजिए, कुंडली का कोणीय वेग ω है ($\omega = 2\pi/T$)। यदि समय मापन उस स्थिति से करें जब कुंडली बलक्षेत्र से लम्बवत् हो, अर्थात् $t=0$ पर $\theta=0$ हो, तो किसी सार्व समय t पर $\theta=\omega t$ होगा। फलतः समीकरण (14.10) से

$$\phi = BA \cos \omega t$$

और $\frac{d\phi}{dt} = -BA\omega \sin \omega t$

यदि कुंडली में N वेष्ठन है तो प्रेरित वि० वा० ब० होगा

$$E = -N\frac{d\phi}{dt} = BA\omega N \sin \omega t \quad \cdots(14.11)$$

यह वि० वा० ब० प्रत्यावर्ती है। इसका नाम महत्तम तब होता है जब $\omega t = 90°$ हो, अर्थात् कुंडली का तल बल-क्षेत्र के समांतर हो। इस महत्तम मान को अगर E_0 कहें, तो

$$E_0 = BA\omega N \quad \cdots(14.12)$$

E_0 का मान बलक्षेत्र की तीव्रता B, कुंडली के क्षेत्रफल A, वेष्टन संख्या N, और परिभ्रमण की कोणीय गति ω के समानुपाती होता है। E_0 को प्रेरित वि० वा० ब० का शीर्षमान या आयाम कहा जाता है। यदि कुंडली की आवृत्ति (परिभ्रमण प्रति सेकंड), f हो तो,

$$E = E_0 \sin \omega t = E_0 \sin 2\pi ft \quad \cdots(14.13)$$

यदि E और t का आरेख खींचे तो वह एक ज्या-वक्र होगा, जैसा चित्र 14.7 a में दिखाया है। ऐसे वि० वा० ब० को ज्यावक्रीय कहते है। प्रत्यावर्ती वि० वा० बलों की कोटि में से यह एक विशिष्ट प्रकार है। परिभ्रमण करती कुंडली के बाह्य टर्मिनलों पर यह वि० वा० ब० प्रकट होगा, और समुचित उपायों से इसे किसी भी बाह्य परिपथ पर लगाया जा सकता है।

ध्यान दे कि यदि हम समय मान तब से प्रारंभ करते जब कुंडली का तल बलक्षेत्र के समातर हो (अर्थात् $t=0$ पर $\theta = \frac{\pi}{2}$ हो) तो $\phi = BA \cos(\omega t + \pi/2)$ होगा, फलतः $E = E_0 \cos \omega t$ इस दशा में वि० वा० ब० का आरेख चित्र 14.7 के अनुसार होता। पहले आरेख से यह
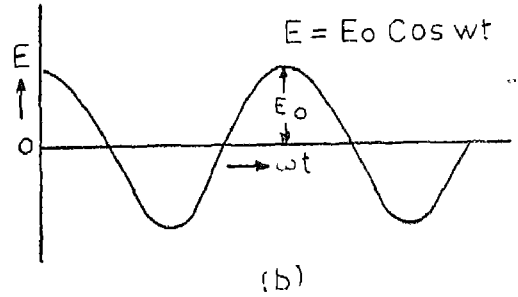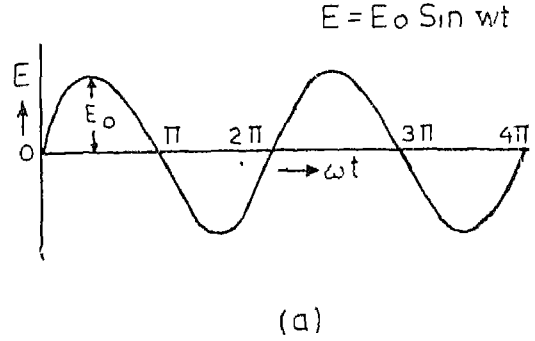
चित्र 14.7 : प्रत्यावर्ती वि०वा०ब० के तरंग रूप ।

T/4 समय खिसका हुआ है, इसके अतिरिक्त ज्या और कोज्या वक्रों में कोई भी अंतर नहीं है। दोनों को ज्या-वक्रीय फलन ही कहा जाता है।

उदाहरण 14.4 0.10 मी × 0.05 मी आयतन की एक आयताकार कुंडली, जिसमें 1000 वेष्ठन है, अपने तल में स्थित एक अक्ष पर 3000 चक्र प्रति मिनट लगाती है। अगर इस अक्ष से लम्बवत् एक चुम्बकीय बलक्षेत्र 100 गॉस का है तो, कुंडली में महत्तम कितना वि० वा० ब० उत्पन्न होता ?

जिस क्षण कुंडली, क्षेत्र से 45° पर होगी वि० वा० ब० कितना होगा ?

हल

3000 चक्र प्रति मिनट = 50 चक्र प्रति सेकंड

$\omega = 2\pi \times 50 = 100\pi$

$E = \omega NAB \sin \omega t$

यहाँ $\omega = 100\pi$; $N = 1000$; $A = 0.10 \times 0.05$ मी²; $B = 100 \times 10^{-4}$ टेस्ला

$\therefore \quad E = 100\pi \times 1000 \times 0.005 \times 100 \times 10^{-4} \sin 100\pi t$

$= 5\pi \sin 100\pi t$

अतः प्रेरित वि० वा० ब० का महत्तम मान $E_0 = 5\pi = 15.7$ वोल्ट

$\omega t = 45^\circ$ पर, $E = E_0 \sin 45^\circ = 15.7/\sqrt{2} = 11.2$ वोल्ट

14.4 जनित्र या डायनमो (The Generator or Dynamo)

ऊपर हमने जो कहा है वह वास्तव मे जनित्र का सिद्धांत है। जनित्र का उपयोग यांत्रिक साधनों से अनवरत विद्युतधारा प्राप्त करने में होता है। यांत्रिक ऊर्जा को वैद्युत ऊर्जा में परिणत करने का यह सबसे महत्वपूर्ण साधन है।
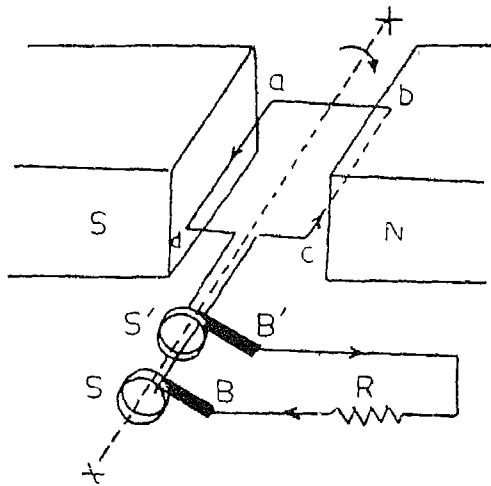
चित्र 14.8 : प्र० धा० जनित्र

चित्र 14.8 मे एक जनित्र के आवश्यक अंगों का प्रारूप प्रदर्शित है। X–X अक्ष पर परिभ्रमणीय एक कुंडली abcd किसी चुम्बक NS के चुम्बकीय बलक्षेत्र में स्थित है। जब कुंडली परिभ्रमण करती है, तो उसमें एक वि० वा० ब० उत्पन्न होता है, जिसे बाहरी परिपथ को दो सर्पी वलयों, S,S' द्वारा पहुचाया जाता है। ये वलय उसी धुरी पर दृढ़ता से लगे होते है जिस पर कुंडली परिभ्रमण करती है। प्रत्येक वलय कुंडली के एक एक सिरे से जुड़ा होता है और कुंडली के साथ घूमता है। ये वलय बाह्य परिपथ से जुड़े दो ब्रश B,B' से अलग-अलग सर्पी सम्पर्क बनाए रखते है। इस प्रकार बाह्य परिपथ पर प्रत्यावर्ती वि० वा० ब० लगता है, जैसा चित्र 14.7 में दिखाया गया है। कुंडली के परिभ्रमण के समय आधे चक्र मे धारा S से B मे प्रवेश कर B' से S' मार्ग से पथ पूरा करती है, दूसरे आधे चक्र मे वह S' से B' मे प्रवेश करके S से B मार्ग से पथ पूरा करती है। अर्थात् बाह्य परिपथ मे आधे चक्र में B' से B की ओर दूसरे आधे चक्र में B से B' की ओर धारा चलती है, इस प्रकार प्रतिरोध R मे धारा प्रत्यावर्ती होती है।

यदि दिष्ट धारा, अर्थात् एक ही दिशा में प्रवाहित धारा, चाहिए तो सर्पी वलयों के स्थान पर एक विभक्त-

चित्र 14.9 : दि० धा० जनित्र
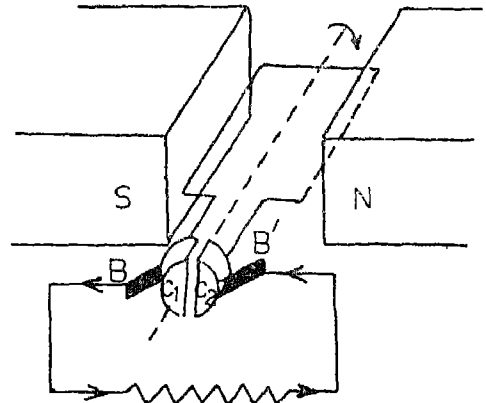
वलय दिक्परिवर्तक लगा देते हैं, जैसा चित्र 14.9 में दिखाया है। यह दिक्परिवर्तक कुंडली के साथ घूमता है

और ब्रश B, B' इसके दो अर्ध खण्डों C_1, C_2 से सर्पी संपर्क रखते हैं। आधे चक्र में जब C_1 धनात्मक होता है उसका संम्पर्क B से रहता है, C_2 का सम्पर्क B' से। चक्र के दूसरे अर्ध भाग मे जब C_2 धनात्मक हो जाता है, उसका सम्पर्क (B' से बदलकर) B से हो जाता है, C_1 का सम्पर्क (B से बदलकर) B' से। अत: बाहरी परिपथ में धारा सदैव
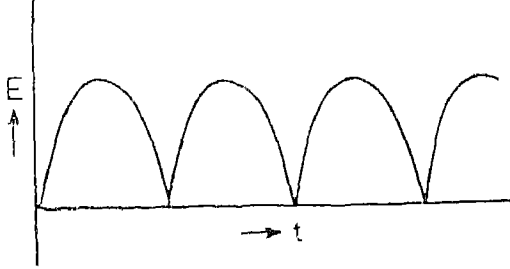
चित्र 14.10 : एकाकी कुंडली वाले दिष्टधारा जनित्र का निर्गत वि० वा० ब०

ही B से प्रवेश करती है, अर्थात् वह दिष्ट धारा होती है। किंतु निर्गत वि० वा० ब० स्पंदमान होता है, जैसा चित्र 14.10 में दिखाया है। यदि अनेक कुंडलियाँ बराबर-बराबर कोणीय अतर से लगी हों, और श्रेणीबद्ध जुड़ी हों (चित्र 14.11) तो उनमें महत्तम वि० वा० ब० भिन्न-

चित्र 14.11 : चुम्बकीय बलक्षेत्र में परिभ्रमण करती चार कुण्डलियाँ
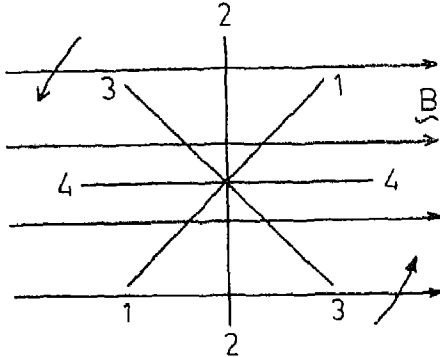
भिन्न समय पर उत्पन्न होंगे और कुल प्रभाव यह होगा कि लगभग अचर मान का दिष्ट वि० वा० ब० प्राप्त होगा, जिसमें थोड़ी ही ऊर्मिकाएँ रहेंगी। चार कुंडलियों
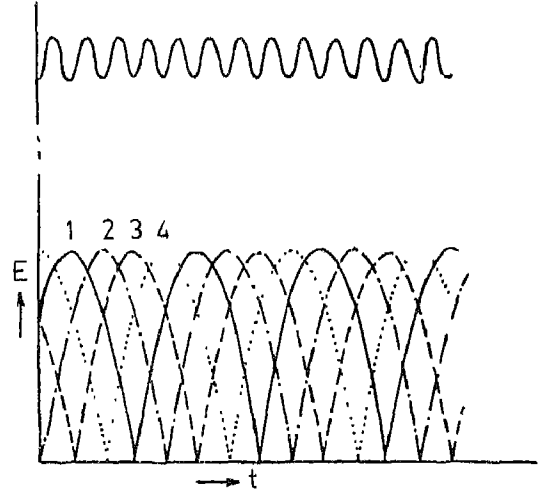
चित्र 14.12 : चुम्बकीय बलक्षेत्र में परिभ्रमित चार कुंडलियों से निर्गत वि० वा० ब०

से प्राप्त परिणाम चित्र 14.12 में दिखाया है, अधिक कुंडलियों के उपयोग से और अधिक सम वि० वा० ब० प्राप्त होगा।

14.5 अन्योन्य प्रेरकत्व (Mutual Inductance)

चित्र (14.13 a) के अनुसार दो कुंडलियों P और S पर विचार कीजिए जो आसपास रखी हैं। यदि P में विद्युतधारा हो, तो वह चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न करेगी, जिससे S में कुछ चुम्बकीय फ्लक्स होगा। यदि P में विद्युतधारा बदले, तो फलस्वरूप कुंडली S में वि० वा० ब० उत्पन्न होगा। हम P को प्राथमिक (मुख्य) और S को द्वितीयक (गोण) कहते है।

यदि किसी क्षण प्राथमिक कुंडली में धारा I_1 हो, तो (नियत आपेक्षिक ज्यामितिय विन्यास में) द्वितीयक में फ्लक्स I_1 के अनुपात मे होगा :

$$\phi_2 \propto I_1$$

इसलिए द्वितीयक में उत्पन्न वि० वा० ब० का सूत्र यह होगा—

$$E_2 = -d\phi_2/dt$$

या $E_2 \propto -\frac{dI_1}{dt} = \frac{MdI_1}{dt}$ ...(14 14)

जिसमें M अनुपात का स्थिराक है, जिसे इन दो कुडलियों
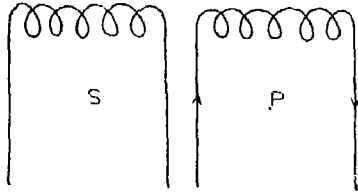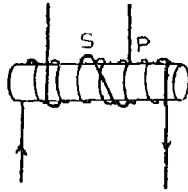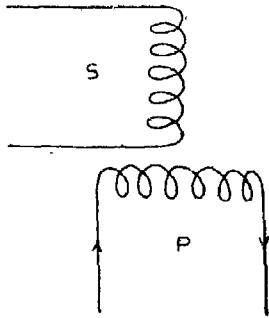
चित्र 14.13 : (a) अन्योन्य प्रेरणकत्व । प्राथमिक P में परिवर्ती धारा द्वितीय S में वि० वा० ब० प्रेरित करती है।
(b) वह अवस्था जब M महत्तम होता है।
(c) वह अवस्था जब M न्यूनतम होता है।

का (नियत ज्यामितीय विन्यास के लिए) अन्योन्य प्रेरकत्व कहते हैं। स्पष्ट है कि M का मान प्राथमिक में एकाक दर मे धारा-परिवर्तन के फलस्वरूप द्वितीयक में उत्पन्न वि० वा० ब० के बराबर है। यदि E_2 को वोल्ट में और dI_1/dt को ऐंपियर/से मे व्यक्त करें, तो M का मात्रक वोल्ट प्रति (ऐं/से) होगा, जिसके लिए हेनरी (H) नाम दिया गया है :

$$1 \text{ हेनरी} = 1\frac{\text{वोल्ट}}{\text{ऐं/से}}$$

यदि हम कुंडली S मे धारा बहाएँ और उसके परिवर्तन के कारण कुडली P में उत्पन्न वि० वा० ब० को मापें तो समीकरण (14.14) का रूप

$$E_1 = -M\frac{dI_2}{dt}$$

हो जायगा। उल्लेखनीय यह है कि प्राथमिक और द्वितीयक की इस अदला-बदली मे स्थिरांक, M वही रहता है। इसीलिए 'अन्योन्य' नाम सार्थक है। दो परिपथ-खण्डों के बीच अन्योन्य प्रेरकत्व, 1 हेनरी होने का अर्थ यह है कि यदि किसी एक में 1 ऐं/से दर से धारा परिवर्तन करें तो दूसरे में 1 वोल्ट वि० वा० ब० उत्पन्न हो जायेगा।

M का मान कुंडलियों की वेष्ठन संख्या, ज्यामितीय आकार, परस्पर दूरी और दिक्‌विन्यास पर निर्भर होता है। यह महत्तम तब होता है जब प्राथमिक का पूरा फ्लक्स द्वितीयक में गुजर जाए, और न्यूनतम तब होता है जब एक कुडली दूसरे से लम्बवत् स्थित हो (चित्र 14.13 c)। यदि चित्र 14.13 b की कुंडलियाँ किसी लोह क्रोड पर लिपटी हों तो अन्योन्य प्रेरकत्व बहुत बढ़ जाता है, क्योंकि दत्त धारा से उत्पन्न B और फलत: ϕ कई गुना बढ़ जाता है। आदर्श दशा में यह μ गुना तक हो सकता है, जहाँ μ लोहे की चुम्बकशीलता है।

14.6 स्व-प्रेरण (Self-Induction)

जब किसी कुंडली में धारा बहती है, तो उससे उत्पन्न चुम्बकीय बलक्षेत्र से स्वयं उसी कुंडली से भी फ्लक्स गुजरता है। यदि धारा की प्रबलता बदलें, तो फ्लक्स भी बदलेगा, और फलतः कुंडली में वि० वा० ब० उत्पन्न

होगा। इसे स्व-प्रेरित वि० वा० ब० कहते हैं, और इस घटना को स्व-प्रेरण कहते हैं।

यह तो स्पष्ट है कि कुंडली में फ्लक्स विद्युतधारा के अनुपात होगा, अर्थात्

$$\phi \propto I$$

फलत: प्रेरित वि० वा० ब० के लिए सूत्र यह होगा :

$$E = -\frac{d\phi}{dt} \propto -\frac{dI}{dt} = -L\frac{dI}{dt} \quad ...(14.15)$$

जिसमें L एक स्थिरांक है, जिसे उस कुंडली का स्व-प्रेरकत्व कहते है। M की भाँति L का मान भी हेनरी में होता है। यदि किसी कुंडली में धारा 1 एं/से की दर से बदलने पर उसमें 1 वोल्ट वि० वा० ब० उत्पन्न हो, तो उसका स्व-प्रेरकत्व 1 हेनरी कहा जाता है।

किसी कुंडली का स्व-प्रेरकत्व, जिसे केवल प्रेरकत्व भी कहते है, कुडली का ही नियातांक होता है। इसका मान कुंडली की वेष्ठन संख्या N, उसके क्षेत्रफल A, तथा उसकी क्रोड में स्थित पदार्थ की चुंबकशीलता μ पर निर्भर होता है। यह मान N तथा A के समानुपाती होता है। जहाँ तक क्रोड पदार्थ का सम्बन्ध है, L का मान इस पर निर्भर होता है कि पदार्थ कहाँ तक फैला हुआ है।

किसी कुंडली का प्रेरकत्व नगण्य न हो तो उसे प्रेरक कुडली, या मात्र-प्रेरक कहते है।

उदाहरण 14.5 यदि 10 हेनरी प्रेरकत्व के एक प्रेरक में 9×10^{-2} सेकंड में धारा 10 एंपियर से 7 एंपियर तक परिवर्तित हो तो उसमें कितना वि० वा० ब० प्रेरित होगा ?

हल

$$E = -L\frac{dI}{dt} = -L\frac{(I_2 - I_1)}{t}$$

$$= -10\frac{(7-10)}{9\times10^{-2}} = 333 \text{ वोल्ट}$$

किसी दिष्टधारा परिपथ में प्रेरक (Inductance in a d.c. Circuit) चित्र 14.14 में एक प्रेरक L और प्रतिरोध R (जिसमें प्रेरक कुंडली का प्रतिरोध शामिल है) एक E वि०वा०ब० की बैटरी से जुड़े है। जब कुंजी K बंद की जाती है, धारा बढ़ना प्रारंभ करती है। धारा
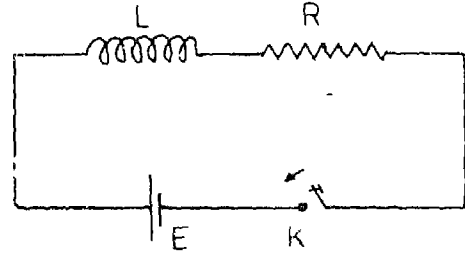
चित्र 14.14 : दि० धा० परिपथ में एक प्रेरक

बढने के साथ तत्संगत चुम्बकीय बलक्षेत्र बढता है, और साथ ही कुंडली के चार चुम्बकीय फ्लक्स भी। इस वृद्धिशील फ्लक्स के कारण एक वि०वा० ब० प्रेरित होता है, जिससे उत्पन्न धारा, लैंज नियम के अनुसार, वृद्धिशील धारा के विपरीत होगी। फलत: धारा के बढ़ने की दर कम हो जाती है, और धारा को ओम के नियम से प्राप्त मान $I_0 = E/R$ तक पहुंचने में कुछ समय लगता है। L जितना अधिक होगा, उतना ही धारा की वृद्धि को रोकने का प्रभाव अधिक होगा, अर्थात् धारा को I_0 के निकट पहुंचने में अधिक समय लगेगा। धारा की I_0 के एक अंश (माना 90%) तक पहुंचने का समय मापें तो यह L की
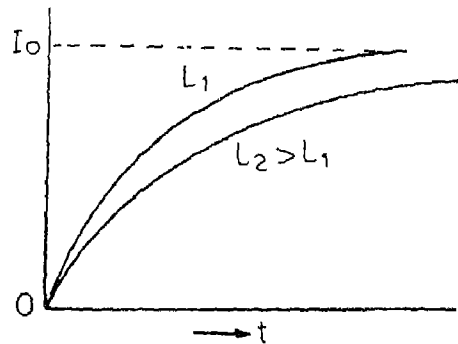
चित्र 14.15 : प्रेरकीय परिपथ में धारा का उठान

वृद्धि के साथ बढ़ता है, और इसका मान कुछ मिली सेकंड से अनेक सेकंड तक हो सकता है। I का मान समय के साथ कैसे बढ़ता है यह चित्र 14.15 मे दो भिन्न L के लिए प्रदर्शित है।

इसी प्रकार यदि किसी ऐसे परिपथ मे बहती हुई धारा को समाप्त करने का प्रयास करें जिसमे प्रेरक उपस्थित हो, तो एक प्रेरित वि०वा०ब० उत्पन्न होता है, जिसका यत्न धारा को बनाए रखने का, अर्थात् उसके पतन को धीमा करने का, होता है। चित्र 14.16 में यदि
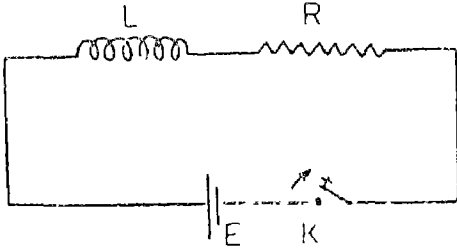
चित्र 14.16 : प्रेरकीय परिपथ में स्विच को खोलने पर स्फुलिंग उत्पन्न होता है

स्विच K को खोलें तो धारा तेजी से गिरती है, प्रेरित वि० वा० ब० परिपथ में उत्पन्न तो होता है, किन्तु K खुला होने से परिपथ में R का मान अनन्त हो जाता है, फलत: प्रेरित वि० वा० ब० का प्रभाव अंशत: खुले स्विच पर स्फुलिंग पैदा करने का होता है। इस स्फुलिंग में जो धारा बहती है वह मूल धारा की दिशा मे ही होती है, अर्थात् मूल धारा के पतन को धीमा करने के तुल्य। यदि प्रारंभिक धारा उच्च हो और प्रेरकत्व अधिक हो, तो स्फुलिंग इतना प्रबल हो सकता है कि स्विच के सपर्कों और विद्युतरोधन को क्षति पहुंचा सकता है। इसलिए दिष्टधारा परिपथों में ऐसी परिस्थितियों के लिए स्विच ऐसे बनाए जाते है कि धारा धीरे-धीरे घटे और स्फुलिंग पैदा न हों।

14.7 प्रेरण से संबंधित कुछ घटनाएँ (Some Phenomena Connected with Inductance)

(i) **भँवर धाराएँ** (Eddy Currents) यदि धातु की किसी प्लेट को परिवर्ती चुम्बकीय बलक्षेत्र में रखें तो प्लेट में प्रेरित धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं, जो बलक्षेत्र के परिवर्तन का विरोध करती है। इन धाराओं को भँवर धाराएँ कहते हैं। ये धाराएँ चक्रीय होती हैं, और उनकी प्रवाह दिशा लैंज के नियम से निश्चित होती है। चित्र 14.17 में प्लेट के तल के (जो कागज के तल से संपाती है) लम्बवत् भीतर की ओर चुम्बकीय क्षेत्र, और इस क्षेत्र की तीव्रता बढने पर उत्पन्न भंवरधाराएं दिखाई गई है।

धातु की प्लेट में परिपथों का प्रतिरोध बहुत अल्प होता है, इसलिए ये धाराएं काफी प्रबल होती हैं, और इनसे काफी तापक प्रभाव उत्पन्न होता है। धातु के छोटे नमूनों को उच्च आवृत्ति की प्रत्यावर्ती धारा से उत्पन्न द्रुत परिवर्ती चुम्बकीय क्षेत्र मे रखकर गर्म करने में भँवर धाराओं का ही उपयोग है। इसे प्रेरण द्वारा तापन कहा जाता है।
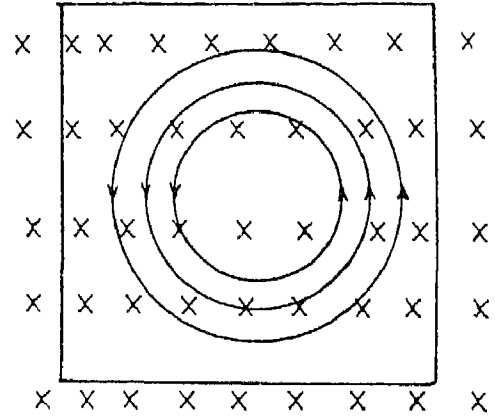
चित्र 14.17 : भंवर धाराए

वैद्युत उपकरणों तथा मशीनों में भंवर धाराओं को हानिकारक माना जाता है, क्योंकि उससे अनावश्यक ऊष्मा उत्पन्न होती है और ऊर्जा का क्षय होता है। ट्रांसफार्मर में लोहे की क्रोड पर लिपटे तारों में प्रत्यावर्ती धारा के कारण क्रोड में भँवरधारा उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होती है; इसे रोकने के लिए क्रोड को पतली-पतली अनेक

पट्टियों के रूप मे लेकर उनके बीच विद्युतरोधन लगाकर जोड़ते है। प्रेरित वि० वा० ब० की दिशा पट्टियों के तल से लम्बवत् होती है, अत: रोधन के कारण भँवरधारा बहुत क्षीण रह जाती है।

(ii) विद्युतचुम्बकीय अवमंदन (Electromagnetic Damping) किसी धारामापी मे धारा प्रवाहित कराएँ तो उसकी कुंडली सामान्यत: अनेक कंपन करने के बाद अपने उचित विक्षेप की स्थिति में जाकर रुक जाती है। यह कंपन निरंतर क्यों नहीं चलता रहता, इसका कारण कोई अवमंदन है, और यहाँ अवमंदन मुख्यत: विद्युतचुम्बकीय है। कुंडली चुम्बकीय क्षेत्र में घूमती है, फलत: उसमें ऐसा वि० वा० ब० उत्पन्न होता है। इस वि० वा० ब० के कारण उत्पन्न धारा और चुम्बकीय क्षेत्र की परस्परक्रिया कुंडली के घूमने का विरोध करती है। विद्युतचुम्बकीय अवमंदन और बढाना हो तो कुंडली को जिस फ्रेम पर लपेटा है उसे धातु की लेते है। फ्रेम के घूमने से फ्रेम में भी प्रेरित वि० वा० ब० उत्पन्न होता है, और फ्रेम का प्रतिरोध अल्प होने से उसमे प्रबल भंवर धारा उत्पन्न होती है; इस भँवर धारा और चुम्बक की परस्परक्रिया गति को अवमंदित करती है। ठीक से आयोजित धारामापी मे कंपन नहीं होने चाहिए, अर्थात् कुंडली विक्षेपित होकर निर्दिष्ट स्थिति पर सीधे ही पहुंचकर रुक जानी चाहिए।

14 8 प्रत्यावर्ती धारा (Alternating Current)

चित्र 14.18 मे संकेत ∿ से एक प्रत्यावर्ती वि०वा० ब० का स्रोत प्रदर्शित है, जो प्रतिरोध R से लगा है। वि० वा० ब० $E=E_0 \sin \omega t$ समय के साथ बदलता है,
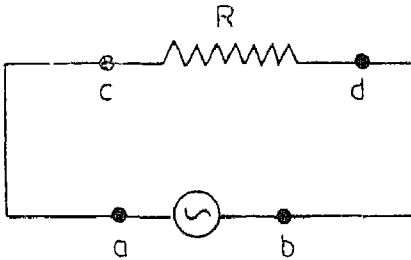
चित्र 14.18 : प्र०धा० स्रोत से लगा एक प्रतिरोध

इसलिए उत्पन्न धारा भी बदलती जाती है। किसी भी क्षण धारा का मान ओम, नियक से प्राप्त होता है—

$$I=\frac{E}{R}=\frac{E_0}{R}\sin \omega t$$

$$=I_0 \sin\omega t=I_0 \sin 2\pi ft \quad ...(14.16)$$

जिसमे $I_0=E_0/R$ धारा का महत्तम या शीर्ष मान है, और f आवृत्ति है। इस प्रत्यावर्ती धारा को ज्यावक्रीय कहते हैं। समय के साथ इसका परिवर्तन चित्र 14.19 में दिखाया गया है। समय का पैमाना 50 हर्ट्ज के संगत रखा गया है, जो भारत में प्र० धा० (a.c.) सप्लाई की आवृत्ति है। आधे चक्र में धारा एक दिशा में 0 से क्रमश: बढ़कर फिर 0 हो जाती है, दूसरे आधे चक्र मे 0 से विपरीत दिशा मे क्रमश: बढकर फिर 0 हो जाती है। उसी चित्र में एक अचर दिष्ट धारा भी तुलना के लिए दिखाई गई है।
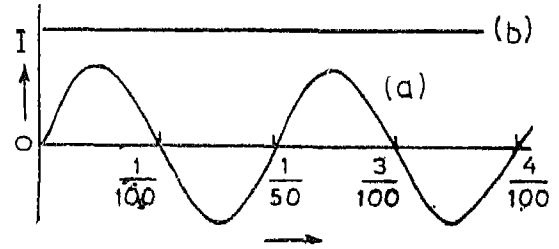
चित्र 14.19 : (a) प्रत्यावर्ती धारा का तरंग रूप (b) एक अचर धारा

क्योंकि प्रत्यावर्ती धारा परिमाण में निरंतर बदलती है और दिशा मे प्रत्यावर्ती रूप से बदलती है, उसके द्वारा उत्पन्न प्रभाव भी समय के साथ बदलते है– यथा, चुम्बकीय बलक्षेत्र। प्रश्न यह है कि ऐसी धारा को हम मापते कैसे है? प्र० धा० के लिए एक ऐम्पियर का क्या अर्थ लगाना चाहिए? धारा का एक प्रभाव ऐसा है जो दिशा पर निर्भर नहीं करता—ऊष्मीय प्रभाव और उसका उपयोग हम यहाँ करते हैं। किसी प्र० धा० के ऊष्मीय प्रभाव की हम एक दिष्ट धारा के ऊष्मीय प्रभाव से तुलना करते हैं, और प्रभाव बराबर हों तो प्र० धा० का प्रभावी मान दिष्ट धारा के मान के बराबर समझते है। इस प्रकार किसी प्र०धा० का प्रभावी मान I_{eff} उस दिष्ट धारा के

मान के बराबर है, जो किसी प्रतिरोध में उतना ही ऊष्मीय प्रभाव उत्पन्न करें जितना यह प्र० धा० करती है। फलत: प्र० धा० का ऐंपियर वह प्र० धारा होगी जिसके कारण उत्पन्न ऊष्मीय प्रभाव का एक ऐंपियर दिष्टधारा के प्रभाव के तुल्य हो।

यह पाया जाता है कि $I = I_0 \sin \omega t$ से व्यक्त प्र०धा० का ऊष्मीय प्रभाव उतना ही होता है जितना $I_0/\sqrt{2}$ दिष्ट धारा का।

अत: $I_{eff} = \dfrac{I_0}{\sqrt{2}} = 0.707\ I_0$ ...(14.17)

राशि I_{eff} को वर्ग-माध्य-मूल* धारा (व०मा०मू० धारा) भी कहते हैं।

प्रत्यावर्ती धारा के लिए प्रभावी या व० मा० मू० वोल्टता की परिभाषा भी ठीक उसी प्रकार होती है—

$E_{eff} = E_0/\sqrt{2} = 0.707\ E_0$ ...(14.18)

जब भी हम प्र० धा० के लिए धारा या वोल्टता की चर्चा करेंगे तो हमारा आशय इन प्रभावी या व०मा० मू० मानों से ही होगा, जब तक कि स्पष्टता से कुछ और न कहें। ज्यावक्रीय रूप में परिवर्ती प्र० धा० के लिए चरम मान I_0 या E_0 बताने से प्रभावी मान 0.707 से गुणा करने पर प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु यह बात सब स्वरूपों में प्रत्यावर्ती धारा के लिए लागू नहीं होती। प्र०धा० 10 ऐं बताएं तो उसका आशय $10\sqrt{2}$ ऐं आयाम (या चरम मान) से ज्यावक्रीय रूप में प्रत्यावर्ती धारा से होगा। भारत मे उपभोक्ता को विद्युत सप्लाई 220 वोल्ट पर होती है, इसका आशय $220\sqrt{2} = 310$ वोल्ट चरम मान से होता है।

14.9 प्र० धा० परिपथ जिस में केवल प्रतिरोध हो (A. C. Circuit Containing Resistance Only)

चित्र 14.18 में एक प्रतिरोध R प्रत्यावर्ती वि०वा०ब०

$E = E_0 \sin \omega t$ ...(14.19)

के स्रोत से जुड़ा है। प्रतिरोध में किसी भी क्षण धारा I हो तो उसके सिरों c और d की बीच विभवान्तर

$V = IR$ ...(14.20)

होगा। किंतु प्रत्येक क्षण c और d का विभवान्तर वही होना चाहिए जो स्रोत के टर्मिनलों a और b के बीच है। अत:

$IR = E_0 \sin \omega t$

या $I = \dfrac{E_0}{R} \sin \omega t = I_0 \sin \omega t$ ...(14.21)

जहाँ, $I_0 = E_0/R$ इस मान को प्र० धा० का चरम मान या आयाम कहते हैं। चित्र 14.20 में E और I दोनों के समय के साथ परिवर्तन व्यक्त है, जिनसे स्पष्ट होता है कि दोनों के शून्यमान एक ही समय पर होते हैं। चरम मान भी एक साथ होते हैं। ऐसी स्थिति में हम कहते हैं कि ये दोनों ज्यावक्रीय परिवर्तन एक ही कला में है।
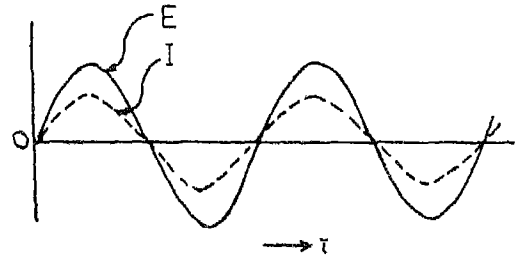
चित्र 14.20 : प्रतिरोधमय प्र० धा० परिपथ में धारा वोल्टता से समान धारा में होती है

प्रतिरोध के सिरों पर जुड़ा कोई भी प्र० धा० वोल्टमीटर $E_0/\sqrt{2}$ पाठ देगा। इसी प्रकार परिपथ में जुड़ा कोई भी प्र० धा० धारामापी $I_0/\sqrt{2}$ पाठ देगा। हम देखते है कि

$$I_{eff} = \frac{I_0}{\sqrt{2}} = \frac{E_0}{R\sqrt{2}} = \frac{E_{eff}}{R} \quad ...(14.22)$$

अर्थात् प्रभावी वि०वा०ब० में R से भाग देने पर प्रभावी प्र० धारा का मान प्राप्त हो जाता है।

---

* कारण यह है कि धारा I का वह वर्ग लें, उसका माध्य (औसत) निकाले, और फिर इस माध्य का वर्गमूल ले तो यही मान आता है। अर्थात् (औसत $I^2)^{1/\theta} = I_0/\sqrt{2}$

14.10 प्र० धा० परिपथ जिसमें केवल प्रेरक हो (A. C. Circuit Containing Inductance Only)

यद्यपि व्यवहार मे विद्युत प्रेरकत्व वाली कुंडली प्राप्त करना कठिन है, तथापि प्र० धा० परिपथ में विशुद्ध प्रेरक के प्रभाव पर विचार उपयोगी है।
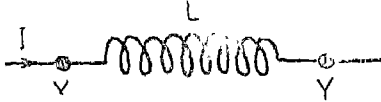
चित्र 14.21 : प्रेरक $\angle$ के सिरों पर विभवान्तर LdI/dt होता है

यदि विशुद्ध प्रेरक में अचर धारा बढ़े तो उसके सिरों X और Y (चित्र 14.21) के बीच विभवांतर शून्य होगा। क्योंकि धारा के लिए प्रतिरोध नहीं है। यदि धारा परिवर्ती हो, तो एक प्रेरित वि० वा० ब०—$L\frac{dI}{dt}$ प्रेरक के सिरों पर होगा, जो धारा के परिवर्तन का विरोध करेगा। इसके कारण Y का विभव X से भिन्न हो जायगा। यदि धारा X से Y की ओर बह रही है तो विभवान्तर यह होगा—

$$V_X - V_Y = L\frac{dI}{dt} \quad ...(14.23)$$

अब परिपथ (चित्र 14.22) पर विचार कीजिए। माना प्रेरक में प्रत्यावर्ती धारा
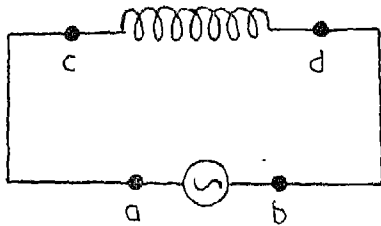
चित्र 14.22 : प्र०धा० स्रोत से लगा एक प्रेरक

$$I = I_0 \sin \omega t \quad \cdots(14.24)$$

है। तो उस पर कैसा वि० वा० ब० लागू होना चाहिए कि वह ऐसी धारा उत्पन्न कर सके ?

L के सिरों c और d पर किसी भी क्षण t पर विभवातर समीकरण (14 23) के अनुसार यह होगा

$$V = LdI/dt$$

$$= \frac{Ld}{dt}(I_0 \sin \omega t)$$

$$= L\omega I_0 \cos \omega t \quad \cdots(14.25)$$

किन्तु प्रत्येक क्षण c और d के बीच का विभवातर स्रोत के सिरों a और b के बीच विभवांतर के बराबर होना चाहिए।

अत: $E = V = L\omega I_0 \cos \omega t = E_0 \cos \omega t$

$$= E_0 \sin(\omega t + \pi/2) \quad ..(14.26)$$

जिसमे $E_0 = (L\omega)I_0$, अगर $E_0 = (L\omega)I_0$ की तुलना प्रतिरोध के लिए संबंध $E_0 = (R)I_0$ से करे तो हम पाते हैं कि E_0 और I_0 के सम्बन्ध में ωl यहाँ वही कार्य करता है जो पहले संबंध में प्रतिरोध R करता था। ωL को परिपथ का प्रेरकीय प्रतिघात कहते हैं, और प्राय: इसे X_L से व्यक्त करते हैं। यहाँ

$$\omega L = X_L = 2\pi f_L \quad \cdots(14.27)$$
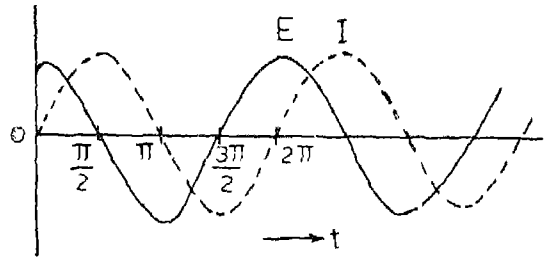
चित्र 14.23 : प्रेरकीय परिपथ में धारा I वोल्टता E से $\pi/2$ पश्चता में होती है।

प्रतिघात का मात्रक ओम होता है। (प्रतिरोध की भाँति ही।)

समीकरण 14.24 और 14.26 की तुलना से हम देखते हैं कि धारा और वोल्टता मे $\pi/2$ (90°) का कला-अंतर है। चित्र 14.23 में I और E के समय के साथ परिवर्तन दिखाए गए हैं। E की अपेक्षा I का मान महत्तम पर चतुर्थांश चक्र बाद में पहुंचता है। इसे यों कह सकते है कि विशुद्ध प्रेरक का प्रभाव प्र० धारा को वि० वा० ब० से कला में $\pi/2$ रेडियन पश्चता प्रदान करने का होता है।

प्रेरक के सिरों पर लगा वोल्टमीटर पाठ, $E_o/\sqrt{2}$ देगा, जो स्रोत की प्रभावी वोल्टता है, और परिपथ में लगा धारामापी पाठ $I_o/\sqrt{2}$ देगा, जो प्रभावी धारा है। अत:

$$I_{eff} = \frac{I_o}{\sqrt{2}} = \frac{E_o}{L\omega\sqrt{2}} = \frac{E_{eff}}{L\omega} = \frac{E_{eff}}{X_L} \quad ...(14.28)$$

प्रेरकीय प्रतिघात X_L यहाँ वही काम कर रही है जो समीकरण (14.22) मे प्रतिरोध, R कर रहा था।

उदाहरण 14.6 एक 1.0 हेनरी के प्रेरक में धारा 0.5 ऐं० आयाम और 50 हट्‌र्ज की आवृति से ज्यावक्रीय रूप में बदलती है। प्रेरक के सिरों पर विभवांतर का आयाम ज्ञात कीजिए।

हल

मान लीजिए धारा है, $I = I_o \sin 2\pi ft$ तो प्रेरक के सिरों पर विभवांतर यह होगा—

$$V = L\frac{dI}{dt} = L\frac{d}{dt}(I_o \sin 2\pi ft)$$

$$= 2\pi f L I_o \cos 2\pi ft$$

अत: वोल्टता का आयाम,

$$V_o = 2\pi f L I_o = 2 \times 3.14 \times 50 \times 1.0 \times 0.5$$

$$= 157 \text{ वोल्ट}$$

और $V = 157 \cos 100\pi t$

वोल्टमीटर द्वारा पठित प्रभावी मान होगा—

$$V_{eff} = \frac{V_o}{\sqrt{2}} = \frac{157}{\sqrt{2}} = 112 \text{ वोल्ट}$$

उदाहरण 14.7 यदि किसी कुंडली में प्रत्यावर्ती धारा 80 मि ऐं और उसके सिरों पर विभावांतर 40 वोल्ट हो, तो कुंडली की प्रेरकीय प्रतिघात क्या होगी।*

हल

धारा और विभवांतर दोनों प्रभावी मान में है। अत

$$X = \frac{V_{eff}}{I_{eff}} = \frac{40}{80 \times 10^{-3}} = 500 \text{ ओम}$$

उदाहरण 14.8 वह आवृत्ति ज्ञात कीजिए जिस पर 0.5 हेनरी के प्रेरक का प्रतिघात 2000 ओम हो जायेगा।

हल

$$X_L = \omega L = 2\pi f L$$

$$\therefore\ 2000 = 2\pi f \times 0.5$$

$$\therefore\ f = \frac{2000}{\pi} = 637 \text{ हट्‌र्ज}$$

14.11 प्र० धा० परिपथ जिसमें केवल संधारित्र हो (A. C. Circuit Containing Capacitance Only)

किसी भी संधारित्र मे चालक पदार्थ की दो प्लेटों के बीच
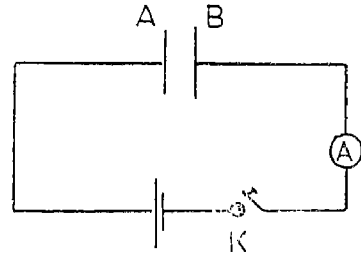
चित्र 14.24 : एक दि० धा० परिपथ में संधारित्र

कोई अचालक पदार्थ भरा होता है। फलत. उसका प्रतिरोध व्यवहारत: अनन्त होता है। आशा यह होती है कि किसी भी परिपथ में यदि संधारित्र श्रेणीक्रम में लगा हो तो चाहे वि० वा० व० दिष्ट हो या प्रत्यावर्ती, धारा शून्य ही रहेगी। किन्तु इस पर बारीकी से विचार अपेक्षित है। पहले दिष्ट परिपथ में संधारित्र पर विचार करें।

दिष्ट परिपथ में संधारित्र (Capacitor in a d.c. Circuit) चित्र 14.24 के परिपथ पर विचार कीजिए।

* दी गई सूचना से यह तय नहीं होता कि प्रेरकीय प्रतिघात विशुद्ध प्रतिरोध के कारण है, या विशुद्ध प्रेरक के कारण, या दोनों का सयुक्त उपस्थिति से, सूत्र $X = \frac{V_{eff}}{I_{eff}}$ सदा ही लागू होता है।

ज्यों ही हम कुंजी दबाते है, इलेक्ट्रॉन बैटरी के ऋणात्मक सिरे से प्लेट B की ओर तथा प्लेट A से बैटरी के धनात्मक सिरे की ओर प्रवाहित होते हैं। इस प्रकार प्लेट A धनात्मक आवेश और B ऋणात्मक आवेश ग्रहण करती है।

संधारित्र का यह आवेशन तब तक चलता रहता है जब तक प्लेटों के बीच का विभवान्तर बैटरी के सिरों के विभवान्तर के बराबर नहीं हो जाता। उसके बाद आवेशन बंद हो जाता है अर्थात् और आवेश प्रवाहित नहीं होते। आवेश का प्रवाह ही विद्युत धारा है। तो हम देखते है कि आवेशन की क्रिया के दौरान धारा होती हैं चाहे संधारित्र की प्लेटों के बीच आवेश-प्रवाह न हो, शेष परिपथ मे धारा होती है। फलतः परिपथ मे धारामापी लगा हो तो वह आवेशन के दौरान विक्षेप दिखाएगा। धारा की दिशा प्लेट B से बैटरी मे होते हुए प्लेट A की ओर होगी, और किसी भी क्षण उसका मान संधारित्र पर आवेश वृद्धि की दर के बराबर होगा :

$$I=\frac{dQ}{dt} \qquad \ldots(14.29)$$

यदि परिपथ में प्रतिरोध लगा दे (चित्र 14 25), तो प्रतिरोध बढ़ाते जाने से आवेशन क्रिया के समय को बढाया
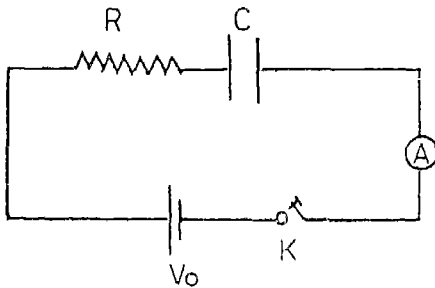
चित्र 14 25 : एक संधारित्र को प्रतिरोध के माध्यम से आपेक्षित करना।

जा सकता है। यदि बैटरी की वोल्टता V_o हो और संधारित्र की धारिता, C हो तो यह स्पष्ट है कि संधारित्र पर अंतिम अवस्था मे आवेश, Q_o का मान निम्नलिखित होगा :

$$Q_o=V_oC \qquad \ldots(14.30)$$

महत्वपूर्ण यह है कि संधारित्र के आवेश का यह मान समय
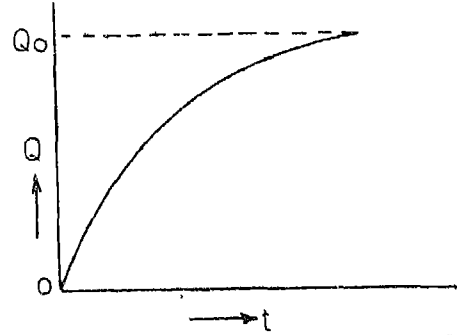
चित्र 14 26 : संधारित्र पर समय के साथ आवेश का उठान।

के साथ अनंतस्पर्शी रूप में पहुचता है (चित्र 14 26)। इसकी तुलना दिष्टधारा प्रेरकीय परिपथ में धारा की वृद्धि से कीजिए।

प्रत्यावर्ती धारा परिपथ में संधारित्र (Capacitor in an a.c. Circuit) : अब किसी प्रत्यावर्ती धारा परिपथ में संधारित्र की क्रिया पर विचार करें (चित्र 14.27)। इस बार स्रोत की वोल्टता निरंतर बदलती है, फलतः
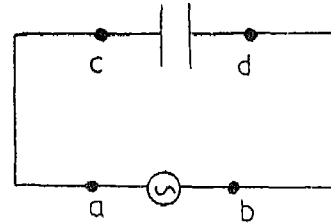
चित्र 14.27 : प्र०धा० स्रोत से लगा एक संधारित्र

संधारित्र पर आवेश भी निरंतर बदलेगा। एक पूरे चक्र में संधारित्र पहले एक ओर आविष्ट होगा, फिर अनाविष्ट होकर विपरीत दिशा मे आविष्ट होगा, फिर अनाविष्ट, आदि। जब संधारित्र का यह आवेशन और अनावेशन निरंतर होता रहता है, परिपथ में निरंतर धारा उपस्थित रहती है। इस धारा की प्रकृति पर हम विचार करेंगे।

यह स्पष्ट है कि संधारित्र के सिरों, c और d का

विभवान्तर प्रति क्षण ठीक वही होना चाहिए जो बैटरी के सिरों, a और b के बीच है। अत: संधारित्र को इस प्रकार आविष्ट और अनाविष्ट होना चाहिए कि उसके सिरों का विभवांतर, V ज्यावक्रीय हो और आरोपित वि० वा० ब० के बराबर हो। अर्थात्,

$$V = E = E_o \sin \omega t$$

किन्तु संधारित्र पर आवेश, Q किसी भी समय CV के बराबर होता है। अत: किसी भी क्षण धारा का मान इस प्रकार होगा—

$$I = \frac{dQ}{dt} = C\frac{dv}{dt} = C\frac{d}{dt}(E_o \sin \omega t)$$

$$= E_o C\omega \cos \omega t$$

$$= I_o \cos \omega t$$

$$= I_o \sin(\omega t + \frac{\pi}{2}) \quad \cdots(14.31)$$

जिसमें $I_o = E_o C\omega = \frac{F_o}{1/C\omega}$ ···(14.32)

इस प्रकार इस स्थिति मे धारा ज्यावक्रीय है और
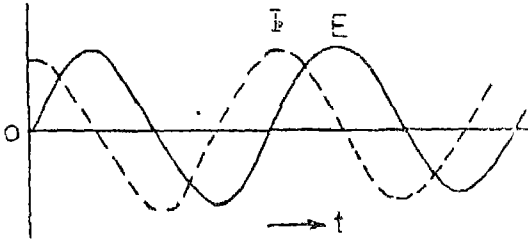
चित्र 14.28 : संधारित्रीय परिपथ में धारा I वोल्टता E से π/2 अग्रता में होती है।

आरोपित वि० वा० ब० से कला में 90° आगे है। E और I के तरंग रूप चित्र 14.28 में दिखाए गए है।

समीकरण (14.32) से प्राप्त E_o/I_o को संधारित्रीय प्रतिघात, X_0 कहा जाता है, इसका मान है,

$$X_0 = \frac{E_o}{I_o} = \frac{1}{C\omega} = \frac{1}{2\pi fC} \quad \cdots(14.33)$$

इस प्रतिघात का यहाँ वही स्थान है जो प्रेरकीय प्रतिघात, X_L का प्रेरक के लिए है। इसका मात्रक ओम है। किन्तु जहाँ, X_L के कारण धारा वि० वा० ब० से 90° पश्चता में रहती है, जैसा समीकरण 14.34 मे दिखाया गया है, X_c के कारण 90° अग्रिम कला मे (अग्रता मे) रहती है।

संधारित्र के सिरों पर लगा वोल्टमापी, $E_o/\sqrt{2}$ पाठ देगा, और परिपथ में लगा धारामापी $I_o/\sqrt{2}$ (दोनों ही प्रभावी मान), इसलिए

$$I_{eff} = \frac{I_o}{\sqrt{2}} = \frac{E}{\sqrt{2}(1/C\omega)} = \frac{I_{eff}}{1/C\omega} = \frac{E_{eff}}{X_0} \quad (14.34)$$

उदाहरण 14.11 यदि 5 μF का संधारित्र (i) 50 हर्ट्ज (ii) 10^6 हर्ट्ज के परिपथ से हो, तो उसका संधारित्रीय प्रतिघात कितना होगा ?

हल

(i) $X_0 = \frac{1}{2\pi \times 50 \times 5 \times 10^{-6}}$ ओम

$= 6.36 \times 10^{-4}$ ओम

(ii) $X_0 = \frac{1}{2\pi \times 10^6 \times 5 \times 10^{-6}}$ ओम

$= 3.18 \times 10^{-2}$ ओम

14.12 LCR परिपथ (LCR Circuit)

किसी प्रत्यावर्ती धारा के लिए प्रतिरोधक, प्रेरक और संधारित्र, तीनों ही प्रतिबाधा (प्रतिघात) उत्पन्न करने वाले परिपथ-अवयव हैं। प्रतिबाधा का मान प्रतिरोध, R प्रेरकीय प्रतिघात, X_L और संधारित्रीय प्रतिघात X_C के रूप में होता है, जिनकी परिभाषाएँ ये हैं :

$$\frac{V}{I} = R \text{ (प्रतिरोधक के लिए)}$$

$$\frac{V}{I} = X_L \text{ (प्रेरक के लिए)}$$

$$\frac{V}{I} = X_C \text{ (संधारित्र के लिए)}$$

जिसमें V उस परिपथ-अवयव के सिरों पर प्रभावी विभवांतर है और I उस अवयव में प्रवाहित धारा है।

यदि इन अवयवों के किसी संयोजन से परिपथ बने तो कुल धारानियंत्रक प्रभाव, Z की परिभाषा उपरोक्त

प्रकार से ही, यों करते है :

$$\frac{V}{I} = Z \quad \text{(किसी भी संयोजन के लिए)} \quad \cdots(14.35)$$

Z को सयोजन की प्रतिबाधा कहते है । उसका मात्रक, स्पष्टत:, ओम है ।
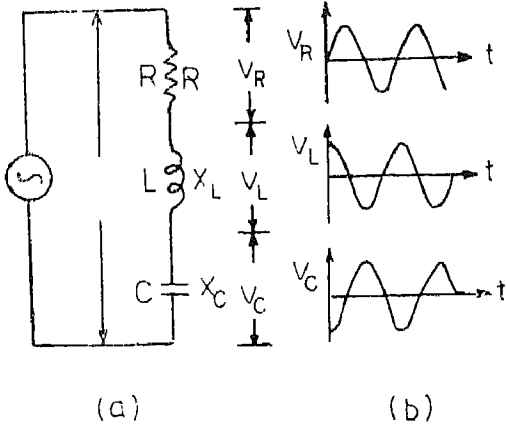
चित्र 14.29 : एक LCR श्रेणीक्रम परिपथ

चित्र 14.29 में R,L और C का एक श्रेणी संयोजन है अर्थात् R प्रतिरोध का एक प्रतिरोधक, X_L प्रतिघात का एक प्रेरक और X_c प्रतिघात का एक संधारित्र । इस संयोजन की कुल प्रतिबाधा, $Z = R + X_L + X_c$ नहीं होती, बल्कि

$$Z = \sqrt{R^2 + (X_L - X_c)^2} \quad \ldots(14.36)$$

होती है । इस असामान्य संबंध का कारण यह है कि X_L और X_c से संगत विभवांतरों का क्रमशः L और C मे प्रवाहित धारा से संबंध उसी प्रकार का नही है, जैसा R से संगत विभवांतर का R में प्रवाहित धारा से होता है । अत: R, X_L और X_c के सरल जोड़ से Z प्राप्त नहीं हो सकता। हम देखेंगे कि इन परिपथ अवयवों के सिरों के विभवांतरों की आपेक्षिक कलाओं को ध्यान में रखने के लिए हमें उन्हें सदिश-रूप मानकर जोड़ना होता है ।

चित्र 14.29 के परिपथ में किसी भी समय यदि R, L और C अवयवों के सिरो के तात्क्षणिक विभवांतर मापे और फिर समस्त परिपथ में आरोपित तात्क्षणिक वोल्टता मापें तो सदैव यह सत्य होगा—

$$V = V_R + V_L + V_c \quad \text{(तात्क्षणिक मान)}$$

किन्तु यदि वोल्टमीटर से हम प्रभावी वोल्टताएं मापें तो उपरोक्त समीकरण सत्य नहीं होता, अर्थात् $V \neq V_R + V_L + V_c$ (प्रभावी मानों के लिए) कारण यह है कि यद्यपि प्रत्येक अवयव में धारा वही I बहती है, उन अवयवों के सिरों के विभवांतर परस्पर समान कला में नहीं होते । गणितीय विश्लेषण बताता है कि V जानने के लिए प्रभावी वोल्टताओं, V_R, V_L, V_C को समतलीय सदिश मानकर जोड़ना होता है, जिसमे इनके कला-अंतर को इन सदिशों के बीच कोण माना जाता है ।
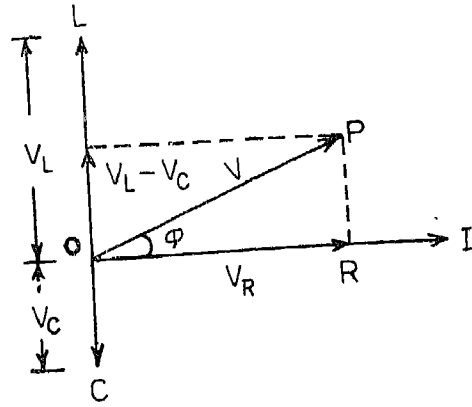
चित्र 14.30 : किसी प्र० धा० परिपथ में वोल्टताओं का वैक्टर रूप प्रदर्शन ।

चित्र 14.30 में धारा I को हम सदिश रेखा O I से व्यक्त करते हैं, प्रतिरोध, R के सिरों के प्रभावी विभवांतर, V_R को OI के समांतर रेखा OR से व्यक्त करते हैं, क्योंकि V_R और I समान कला में लेते है । किन्तु T के सिरों का विभवांतर V_L कला में I से $\pi/2$ आगे होता है, इसलिए उसे सदिश रेखा OL से व्यक्त करते है, जो OI से एक ओर $\pi/2$ कोण बनाती है; इसी प्रकार C के सिरों का विभवांतर V_c कला मे I से $\pi/_2$ पीछे होता है, इसलिए उसे सदिश रेखा OC से व्यक्त करते हैं, जो, OI से दूसरी ओर $\pi/_2$ कोण बनाती है । इन सदिशों OR OL, OC का परिणामी सदिश OP इस R,L,C श्रेणी संयोजन के सिरों की प्रभावी वोल्टता व्यक्त परिमाण में, करता है— और I के प्रति कलांतर में भी । स्पष्ट है कि

$$V = \sqrt{V_R^2 + (V_L^1 - V_c)^2} \quad \ldots(14.37)$$

किंतु $V_R=RI$; $V_L=X_L I$; $V_c=X_c I$ इसलिए—

$$V=I\sqrt{R^2+(X_L-X_c)^2}$$

या $$\frac{V}{I}=Z=\sqrt{R^2+(X_L-X_c)^2} \quad .. (14.38)$$

प्रतिबाधा (Z), प्रतिरोध (R) और प्रतिघात (X_L, X_C) का संबध चित्र 14.31 में चित्र 14.30 की ही भाँति सदिश आरेख खींचकर बताया गया है।
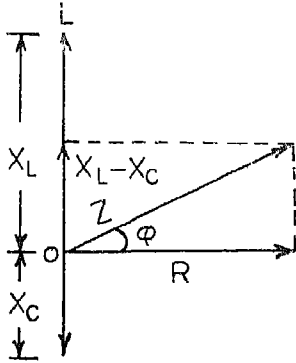
चित्र 14.31 : प्रतिबाधा ओरस

चित्र 14.30 में धारा I वोल्टता V से कला में ϕ कोण पीछे है, अर्थात् परिपथ कुल मिलाकर प्रेरकीय है (शुद्ध प्रेरक धारा को वोल्टता से $\pi/2$ पश्चता में रखता है)। इसका कारण यह है कि इस उदाहरण में हमने $V_L>V_C$ (अर्थात् $X_L>X_C$) लिया है। यदि ($X_L<X_C$) हो, तो श्रेणी संयोजन संधारित्रीय हो जायगा, अर्थात धारा वोल्टता से अग्र कला में होगी। कलांतर ϕ जिसे मात्र पिच्छट या अग्रता भी कहते हैं, निम्नलिखित सूत्र से प्राप्त होता है—

$$\tan\phi=\frac{X_L-X_C}{R} \text{ या } \cos\phi=R/Z \quad (14.39)$$

ϕ का मान सदा $+\pi/2$ और $-\pi/2$ के बीच ही होता है।

उदाहरण 14.10 एक 100 ओम का प्रतिरोध, एक 0.5 हेनरी का प्रेरक और एक 10 माइक्रोफेरड μF का संधारित्र श्रेणीक्रम मे लगे है। इसके सिरों पर 220 वोल्ट 50 हर्ट्ज का प्रत्यावर्ती विभव लगाया जाता है। निम्नलिखित राशियाँ ज्ञात कीजिए—(क) परिपथ की प्रतिबाधा, (ख) धारा, (ग) प्रत्येक अवयव के सिरों पर विभवांतर, (घ) धारा और आरोपित वोल्टता के बीच कला कोण ϕ। वोल्टताओं का सदिश आरेख भी खींचिए।

हल

(क) $X_L=2\pi fL=2\pi\times50\times0.5=157$ ओम

$$X_L=\frac{1}{2\pi fc}=\frac{1}{2\pi\times50\times10\times10^{-6}}=318 \text{ ओम}$$

$$Z=\sqrt{100^2+(157-318)^2}=190 \text{ ओम}$$

(ख) $I=\frac{V}{Z}=\frac{220}{190}=1.16$ ऐंपियर

(ग) प्रतिरोध पर वोल्टता $V_R=IR=1.16\times100$
$=116$ वोल्ट

प्रेरक पर वोल्टता $V_L=IX_L=1.16\times157$
$=182$ वोल्ट

संधारित्र पर वोल्टता $V_c=IX_c=1.16\times157$
$=369$ वोल्ट
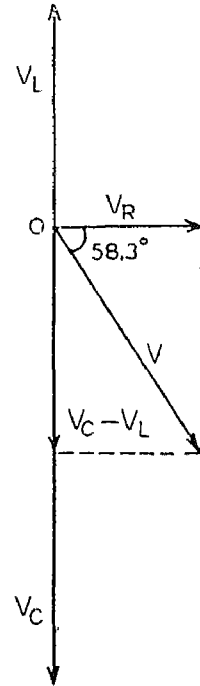
चित्र 14.32 : (उदाहरण 14.10 के लिए)

(घ) $\cos\phi = \frac{R}{Z} = \frac{100}{190} = 0.526;\ \phi = 58°15'$

वोल्टताओं का सदिश आरेख चित्र 14.32 में दिया है।

अनुनाद (Resonance) नियत R,L और C के श्रेणीक्रम परिपथ में X_L तथा X_0 के मान आरोपित वोल्टता की आवृत्ति पर निर्भर होते हैं। यदि एक विशेष आवृत्ति पर $X_L = X_0$ हो जाए तो प्रतिबाधा अपने

$$Z = \sqrt{R^2 + (X_L - X_0)^2}$$

न्यूनतम मान R पर पहुंच जाती है, और परिपथ शुद्धतः प्रतिरोधीय कहलाता है। इस स्थिति में धारा महत्तम मान पर पहुंच जाती है, और कलांतर $\phi = 0$ होता है, अर्थात वोल्टता और धारा समान कला में होते हैं। इस दशा को अनुनाद कहा जाता है, और जिस आवृत्ति f_r पर ऐसा होता है उसे अनुनादी आवृत्ति कहा जाता है। अनुनाद पर

$$X_L = X_0$$

अतः $$2\pi f_r L = \frac{1}{2\pi f_r C}$$

$$\therefore\ f_r = \frac{1}{2\pi\sqrt{LC}} \qquad \cdots(14.40)$$

14.13 ट्रांसफार्मर (Transformer)

विद्युत चुम्बकीय प्रेरण के सबसे महत्त्वपूर्ण अनुप्रयोगों में से एक ट्रांसफार्मर है। एक सरल ट्रांसफार्मर की रचना
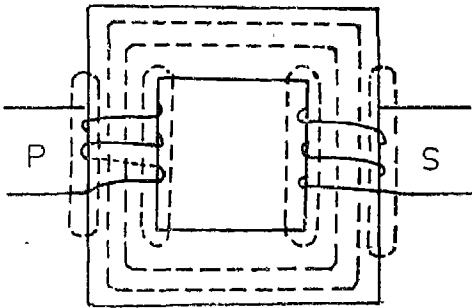
चित्र 14.33 : ट्रांसमीटर P प्राथमिक, S द्वितीयक

चित्र 14.33 में दिखाई गई है। एक अनवरत नरम-लोह क्रोड पर दो कुंडलियाँ वेष्ठित हैं। इनमें से एक को किसी प्रत्यावर्ती विभव स्रोत से जोड़ते हैं—इस कुंडली को 'प्राथमिक' कहते हैं। दूसरी कुंडली को—जिसे 'द्वितीयक' कहते है—किसी 'भार' पर जोड़ देते है, जो एक प्रतिरोध या अन्य कोई वैद्युत अवयव हो सकता है जिसे वैद्युत शक्ति देनी है।

प्राथमिक में प्रवाहित प्रत्यावर्ती धारा के कारण एक प्रत्यावर्ती चुम्बकीय फ्लक्स क्रोड में उत्पन्न होता है, जो प्राथमिक और द्वितीयक दोनों में से गुजरता है। क्रोड अनवरत होने के कारण इस फ्लक्स में क्षरण नगण्य होता है, अर्थात् द्वितीयक में फ्लक्स लगभग इतना ही होता है, जितना प्राथमिक में। परिवर्ती चुम्बकीय फ्लक्स के कारण द्वितीयक में वि० वा० ब० का प्रेरण होता है, और स्वयं प्राथमिक में भी एक स्व-प्रेरित वि० वा० ब० उत्पन्न होता है।

उस परिस्थिति पर विचार कीजिए जब द्वितीयक से कोई भार न जुड़ा हो, अर्थात् द्वितीयक कुंडली में धारा न हो। यदि प्राथमिक में N_1 और द्वितीयक में N_2 वेष्ठन हों, तो चुम्बकीय फ्लक्स दोनों में बराबर ϕ मानकर हम देखते हैं कि प्राथमिक में प्रेरित वि० वा० ब० E_1 यों होगा—

$$E_1 = -N_1\frac{d\phi}{dt} = -L_1\frac{dI_1}{dt} \qquad \cdots(14.41)$$

जहाँ I_1 प्राथमिक में प्रवाहित धारा है। द्वितीयक में प्रेरित वि० वा० ब० E_2 यों होगा—

$$E_2 = -N_2\frac{d\phi}{dt} \qquad \cdots(14.42)$$

फलतः

$$\frac{E_2}{E_1} = \frac{N_2}{N_1} \qquad \cdots(14.43)$$

प्राथमिक में प्रेरित वि० वा० ब० E_1 वास्तव में प्राथमिक परिपथ पर आरोपित वि० वा० ब० E के लगभग बराबर होगा। मान लीजिए $E = E_0 \sin\omega t$ है तो लैंज के नियम के अनुसार E_1 इस E के विपरीत क्रियाशील होगा, और किसी भी क्षण प्राथमिक के प्रतिरोध R के सिरों का विभवांतर $E - E_1$ के बराबर होगा, अतः

$$E - E_1 = RI_1$$

किंतु R का मान (L, ω की तुलना में) बहुत अल्प होता है, इसलिए

$$E = E_1 \qquad (14.44)$$

इस प्रकार समीकरण (14.43) के E_1 को हम प्राथमिक में स्व-प्रेरित वि० वा० ब० के बजाए प्राथमिक पर लगाया गया निवेश वि० वा० ब० मान सकते है। E_2 द्वितीयक पर निर्गत वि० वा० ब० है। अत:

$$\frac{E_2}{E_1} = \frac{\text{निर्गत वि०वा०ब०}}{\text{निवेश वि०वा०ब०}} = \frac{N_2}{N_1} \qquad ...(14.45)$$

यदि वि० वा० ब० बलों के प्रभावी मान V_1 और V_2 हों तो,

$$\frac{V_2}{V_1} = \frac{N_1}{N_2} \qquad ...(14.46)$$

राशि N_2/N_1 को ट्रांसफार्मर का 'वेष्ठन-अनुपात' कहते हैं। यदि $N_2 > N_1$ तो $V_2 > V_1$ और इस दशा में ट्रांसफार्मर को उपचायी ट्रांसफार्मर कहते है। यदि $N_2 < N_1$ तो $V_2 < V_1$ और ट्रांसफार्मर को अपचायी ट्रांसफार्मर कहते है।

ऊर्जा संरक्षण के सिद्धान्त के अनुसार द्वितीयक परिपथ में निर्गत ऊर्जा प्राथमिक में दत्त ऊर्जा के बराबर या कम ही होनी चाहिए। यदि ट्रांसफार्मर को आदर्श मानें, अर्थात् उसके वेष्ठनों के तार अथवा क्रोड मे ऊर्जा क्षय न हो, तो औसत निर्गत शक्ति औसत निवेशित शक्ति के बराबर होनी चाहिए। अत:

$$V_1 I_1 = V_2 I_2 \qquad ...(14.47)$$

जिसमें वोल्टताएं तथा धाराएं प्रभावी मानों में व्यक्त है। स्पष्ट है कि आदर्श ट्रांसफार्मर के लिए

$$\frac{I_2}{I_1} = \frac{V_1}{V_2} = \frac{N_1}{N_2} \qquad .. (14.48)$$

अर्थात् प्राथमिक धारा की तुलना में द्वितीयक में धारा उसी अनुपात में गिरती है जिस अनुपात में वोल्टता बढ़ती है।

ट्रांसफार्मर की दक्षता की परिभाषा है

$$\eta = \frac{\text{शक्ति निर्गमन}}{\text{शक्ति निवेश}}$$

वास्तविक ट्रांसफार्मर में दक्षता काफी अधिक होती है (90-99%), किंतु 100% नहीं। शक्ति क्षय के अनेक कारण है, जिनमें मुख्य दो है (i) वेष्ठनों के तांबे के तारों में ऊष्मीय प्रभाव I^2R के कारण। मोटे तार लेकर इसे कम किया जा सकता है। (ii) लोहे की क्रोड में क्षय, क्योंकि क्रोड को बारम्बार चुंबकित-विचुंबकित करने में कार्य होता है। इसे कम करने के लिए विशेष प्रकार के चुम्बकीय पदार्थ का चयन करना होता है।

इनके अतिरिक्त शक्ति-क्षय का तीसरा कारण भँवर धाराएँ हैं [देखिए अनुच्छेद 14.7 (i) भँवर धाराएँ,]
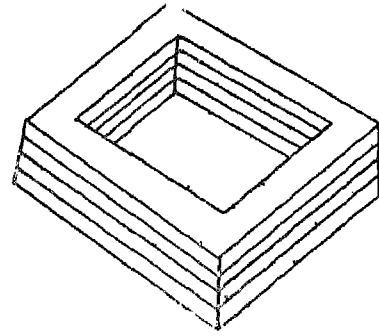
चित्र 14.34 : वैद्युत शक्ति को वोल्टता पर संचारित करने से लाइन क्षय कम हो जाते हैं G—जनित्र T—उपचायी ट्रांसफार्मर, S—भार

जिनको कम करने के लिए परलित क्रोड काम में ली जाती है (चित्र 14.34)। कुछ क्षय चुंबकीय फ्लक्स के क्षरण से भी होता है, किन्तु यह नगण्य होता है।

वैद्युत शक्ति का संचारण (Transmission of Electric Power) बिजलीघर प्राय: बस्ती से दूर स्थित होते है, जहाँ बिजली पैदा करना सस्ता पड़ता है। वहाँ वैसे द्युत शक्ति को दूर-दूर उपयोग के लिए संचारित करना होता है। इसके लिए बिजलीघर से दो समांतर तारों वाली संचारण लाइन बिछानी होती हैं, जो धारा के जाने तथा आने का परिपथ पूरा करती है।

नियत शक्ति $P = EI$ के संचारण के लिए हम को

बढ़ा या घटा कर I को क्रमशः घटा या बढ़ा सकते है। संचारण में प्रयुक्त तार मे ऊष्मीय प्रभाव के कारण I^2R शक्ति का क्षय होता है। इसे कम करने के लिए I को घटाना, अतः E को बढ़ाना होता है। इसलिए जनित्र से जिस वोल्टता पर विद्युत निर्गत होती है, उसे उपचायी ट्रांसफार्मर की सहायता से अत्यन्त उच्च वोल्टता तक परिवर्तित किया जाता है। फलत: अल्प-वोल्टता-अधिक-धारा वाली वैद्युत शक्ति उच्च-वोल्टता-अल्प धारा वाली शक्ति में परिणत हो जाती है। धारा कम होने से क्षय I^2R कम हो जाता है। वैद्युत शक्ति को उच्च वोल्टता पर ले जाकर संचरित करने से प्राप्त बचत निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगी।

माना एक वैद्युत जनित्र 25 किलोवाट शक्ति 250 वोल्ट पर उत्पन्नकरता है, और इस शक्ति को सुदूर स्थान पर भेजना है, जिसके लिए लाइन का प्रतिरोध 1 ओम है। स्पष्ट है कि 25000 वाट शक्ति को 250 वोल्ट पर भेजने के लिए धारा 100 ऐंपियर होगी, फलत: लाइन पर क्षय होगा $I^2R = 100^2 \times 1 = 10000$ वाट $= 10$ किलोवाट। इस प्रकार शक्ति का 40 प्रतिशत भाग लाइन-क्षय में चला जायेगा। यदि वोल्टता 2500 वोल्ट तक उपचयित कर दें, तो धारा 10 ऐंपियर रह जायगी और I^2R का मान $10^2 \times 1 = 100$ वाट $= 2.1$ किलोवाट रह जायगा जो नगण्य है।

सामान्य बिजलीघर का जनित्र 1,000 किलोवाट उत्पादन 6,600 वोल्ट पर देता है। संचरण बहुत दूर-दूर तक करना होता है इसलिए वोल्टता को 132,000 वोल्ट तक उपचयित करते है। वैद्युत शक्ति के संचारण के लिए ऊँचे स्टील-फ्रेम से बने खंभों पर पोर्सलीन रोधियों पर लगे तार काम में आते है। उच्च वोल्टता के कारण रोधी विशेष प्रकार के बनाने होते है।

प्रायः यह होता है कि विभिन्न बिजलीघरों के बीच शक्ति के उत्पादन और शक्ति की आवश्यकता के बीच सामंजस्य नहीं होता। वितरण में सामंजस्य के लिए एक विशाल क्षेत्र के सब बिजलीघरों के शक्ति उत्पादन को एक सर्वविष्ट 'ग्रिड' में जोड़ देते है। यह ग्रिड सारे क्षेत्र के लिए सार्व भंडार का काम करता है, ताकि जहाँ जितनी आवश्यकता हो उतनी शक्ति का उपयोग कर लें। वैद्युत शक्ति के वितरण में यह प्रणाली दक्षता बढाती है। साथ ही किसी एक बिजलीघर के फेल हो जाने के कारण संभावित कठिनाई से भी रक्षा करती है। ग्रिड से विभिन्न उपभोक्ता स्थानों को बिजली 33,000 वोल्ट पर भेजी जाती है (यह अपचयन उस स्थान के निकट ही किया जाता है), फिर छोटे-छोटे उपक्षेत्रों में उप-स्टेशन द्वारा इसे 6,600 वोल्ट पर लाते हैं। बड़े उपभोक्ताओं (यथा कारखानों) को इसी वोल्टता पर सप्लाई कर देते है, जिसे वे आवश्यकतानुसार अपचयित कर लेते है। सामान्य उपभोक्ता के उपयोग के लिए अंततः 220 वोल्ट पर ही लाकर बिजली दी जाती है।

प्रश्न-अभ्यास

14.1 चुम्बकीय फ्लक्स की विमाएँ क्या हैं।

14.2 चित्र 14.35 में द्वितीयक वेष्ठनों में धारा की दिशा उस समय के लिए बताइए जब परिपथ का स्विच बंद किया जाए।

14.3 सिद्ध कीजिए कि लैंज का नियम ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त का परिणाम है।

14.4 किसी विद्युत परिपथ में प्रेरित वि० वा० ब० का मान किन बातों पर निर्भर होता है ? वि० वा० ब० की दिशा किन बातों से निश्चित होती है ?
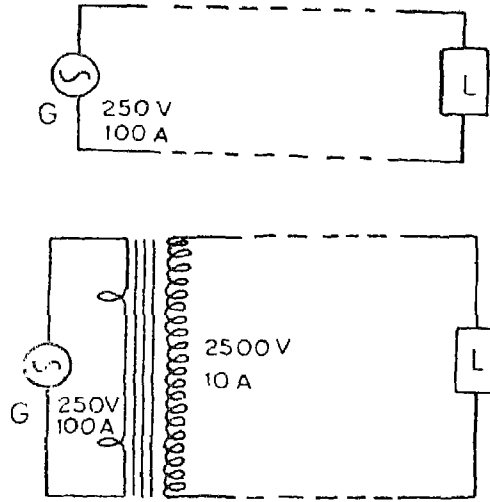
चित्र 14.35

14.5 0.16 मी² काट-क्षत्रफल की एक 200 वेष्ठन वाली कुंडली में गुजरने वाला चुम्बकीय बलक्षेत्र एक-समान दर से 0.02 सेकंड में 0.10 वेबर/मी² से बढ़कर 0.50 वेबर/मी² हो जाता है। प्रेरित वि० वा० ब० परिकलित कीजिए। (640 वोल्ट)

14.6 स्व-प्रेरण और अन्योन्य प्रेरण में विभेद कीजिए।

14.7 यदि किसी जनित्र की चाल बढ़ाएँ तो (i) महत्तम उत्पन्न वि० वा० ब० पर, और (ii) वि० वा० ब० की आवृति पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

14.8 घर में बिजली की मुख्य लाइन 220 वोल्ट 50 हट्‌र्ज अंकित है। वोल्टता के तात्कालिक मान के लिए समीकरण लिखिए। (310 sin 100 πt)

14.9 एक 15 सेमी × 40 सेमी की आयताकार कुंडली में 200 वेष्ठन हैं। वह अपने तल में स्थित और 0.08 वेबर/मी तीव्रता के चुम्बकीय क्षेत्र से लम्ब अक्ष पर 50 हट्‌र्ज से घूम रही है। उस क्षण प्रेरित वि० वा० ब० का क्या मान होगा जब कुंडली के तल और चुम्बकीय क्षेत्र के बीच का कोण (i) 0° (ii) 60° (iii) 90° हो। (301, 151, 0 वोल्ट)

14.10 प्रत्यावर्ती धारा और दिष्ट धारा में क्या अंतर होता है? दि० धा० की तुलना में प्र० धा० में क्या लाभ है? क्या हम 15 हट्‌र्ज की प्र० धा० को प्रकाश व्यवस्था में काम में ले सकते हैं?

14.11 तात्क्षणिक धारा के ऋणात्मक मान का क्या आशय होता है?

14.12 प्रतिरोध, प्रतिघात और प्रतिबाधा में विभेद कीजिए।

14.13 आवृत्ति के साथ किसी (i) संधारित्र (ii) प्रेरक का प्रतिघात किस प्रकार बदलता है, इसे प्रदर्शित करने के लिए ग्राफ खींचिए।

14.14 किसी प्रेरक का प्रतिघात दिष्ट धारा के लिए कितना होता है? किसी संधारित्र का प्रतिघात से क्या तात्पर्य है?

14.15 किसी प्रेरक में प्रवाहित धारा उसके सिरों के विभवांतर से पश्चता में होती है। इस कथन का आशय समझाइए।

14.16 किसी प्रतिरोध और प्रेरक वाले श्रेणीबद्ध परिपथ में एक संधारित्र श्रेणी में जोड़ दें तो परिपथ की प्रतिबाधा घट जाती है। समझाइए क्यों ?

14.17 यदि किसी 50 हट्र्ज के प्र० धा० परिपथ में प्रभावी धारा 5 ऐं हो तो निम्नलिखित के मान बताइए : (i) धारा का महत्तम मान, (ii) शून्य से गुजरने के 1/300 सेकंड बाद धारा का मान (7.0 ऐं, ±6.1 ऐं)

14.18 किसी कुंडली पर 100 वोल्ट दिष्ट विभव लगाने से धारा 1 ऐं प्रवाहित होती है। उसी कुंडली पर 100 वोल्ट 50 हट्र्ज का प्रत्यावर्ती विभव लगाने पर 0.5 ऐ की धारा प्रवाहित होती है। कुंडली का प्रतिरोध, प्रतिबाधा और प्रेरकत्व परिकलित कीजिए। (100, 200, 0.55)

14.19 एक 25.0 μF का संधारित्र, एक 0.10 हेनरी का प्रेरक और एक 25.0 ओम का प्रतिरोध एक $E=310 \sin 314\,t$ वोल्ट वि० वा० ब० के स्रोत से श्रेणीबद्ध जुड़े हैं। बताइए—

(i) दिए गए वि० वा० ब० की आवृत्ति क्या है ?
(ii) परिपथ की प्रतिघात कितना है ?
(iii) परिपथ की प्रतिबाधा कितनी है ?
(iv) परिपथ में धारा कितनी है ?
(v) धारा आरोपित वि० वा० ब० से कितनी पश्चता या अग्रता में रहती है ?
(vi) परिपथ में तात्क्षणिक धारा का व्यंजक क्या है ?
(vii) संधारित्र प्रेरक और प्रतिरोध के सिरों पर प्रभावी वोल्टताएँ क्या हैं ?
(viii) इन वोल्टताओं का वेक्टर आरेख खीचिए।
(ix) प्रेरक को बदलकर कितना करें कि परिपथ की प्रतिबाधा न्यूनतम हो जाए ?

उत्तर : (i) 50 हट्र्ज (ii) 96 ओम संधारित्रीय
(iii) 99.2 ओम (iv) 2.22 से
(v) अग्रता 75.4° (vi) 3.13 (314+1.31)
(vii) $V_0=283$ वोल्ट; $V_L=70$ वोल्ट; V_R 55.5 वोल्ट
(ix) 0.406 हेनरी

14.20 यदि किसी परिपथ की अनुनाद आवृत्ति fr है तो निम्नलिखित आवृत्तियों की वोल्टता लगाने पर परिपथ की धारा वोल्टता से पश्चता, अग्रता या समान कला मे होगी ?

(i) $f=fr$
(ii) $f<fr$
(iii) $f>fr$

14.21 सिद्ध कीजिए कि यदि वोल्टता $V=V_0 \cos 2\pi ft$ किसी परिपथ में प्रतिरोध पर लगे, तो प्रतिरोध में औसत शक्ति-क्षय

$$P=V_{eff}^2/R$$

होगा, जहाँ $V_{eff}=V_0/\sqrt{2}$

14.22 एक ट्रांसफार्मर 220 वोल्ट को 22 वोल्ट तक अपचयित करता है, और उसे 220 ओम प्रतिबाधा के उपकरण पर लगाया जाता है। इस ट्रांसफार्मर के प्राथमिक में धारा कितनी होगी, यदि ट्रांसफार्मर क्षय नगण्य मानें ? (0.01 ऐं)

14.23 हम सामान्य चल-कुंडली धारामापी को प्रत्यावर्ती धारा या वोल्टता को मापने के काम में क्यों नहीं ले सकते ?

अध्याय 15

विश्व (Universe)

15.1 प्रारंभिक परिचय (Introduction)

विश्व रचना का अध्ययन खगोलिकी के अंतर्गत आता है, जो संभवतः सबसे प्राचीन विज्ञान है। विश्व के जिस भाग में हम रहते हैं उसे सौर मंडल कहते है। उसमें सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा, अन्य ग्रह और उनके उपग्रह, ग्रहिकाएं धूमकेतुगण और उल्काएं सम्मिलित हैं। सौर मंडल का दूरतम ग्रह प्लूटो हमसे 6×10^{12} मीटर दूर है। उससे परे, कहीं अधिक दूरियों पर, तारे हैं जो बहुत कुछ हमारे सूर्य के समान हैं। उनमें कुछ अलग-अलग होते है, कुछ युग्म-तारों के रूप में, और कुछ तारा-गुच्छों जैसे (कृत्तिका) के रूप में। हम अपने नग्न नेत्रों से लगभग 5000 तारे सारे आकाश में देख पाते हैं, जिनमें से किसी एक समय स्वच्छ रात्रि में 2500 दिखाई देंगे। इनको नग्न नेत्र तारे कहते हैं। किन्तु दूरबीनों की सहायता से लाखों तारे देखे जा सकते हैं।

तारों के बीच की दूरियाँ अत्यधिक होती हैं। हमसे निकटतम तारा एल्फा सेंटारी लगभग 4 प्रकाश-वर्ष* की दूरी पर है। तारों के बीच का स्थान एकदम रिक्त नहीं है उसमें गैस और धूल के रूप में बहुत हलकी घनता के साथ पदार्थ बिखरा हुआ है, जिसे अन्तरातारकीय पदार्थ कहते हैं।

स्वच्छ आकाश वाली अंधेरी रात्रि में हम आकाश में एक वृहद् वृत्त के रूप में फैली चौड़ी श्वेत प्रकाश-पट्टी को स्पष्टतः पहचान सकते हैं। इसे आकाशगंगा कहते हैं। यदि दूरबीन से इसे देखें तो इसमें लाखों मंद-प्रकाश वाले तारे दिखाई देते हैं जो एक विशाल चपटा तारकीय समुदाय है, नग्न-नेत्र तारागण और हमारा सूर्य आकाशगंगा समुदाय के ही अंग हैं, जिसमें एक खरब (10^{11}) से भी अधिक तारे हैं। इसलिए हम आकाशगंगा को 'अपनी गैलेक्सी' कहते हैं, विश्व में इसी प्रकार की करोड़ों गैलेक्सियाँ हैं। किंतु केवल निकटस्थ कुछ गैलेक्सियाँ ही नग्न नेत्रों को दिखाई देती हैं, शक्तिशाली दूरबीनों से लिए गए चित्रों में लाखों मंद-प्रकाश गैलेक्सियाँ प्रकट होती हैं। विश्व की रचना में गैलेक्सी सबसे बड़ी इकाई है।

---

* प्रकाश के वेग (3×10^8 मी/से) से एक वर्ष में पूरी की गई दूरी को प्रकाश वर्ष कहते हैं इसका मान 9.5×10^{15} मी होता है।

विज्ञान की अन्य शाखाओं तथा खगोलिकी मे एक अन्तर यह है कि यह प्रायोगिक विज्ञान नही है, प्रेक्षण आधारित विज्ञान है। यों कह सकते है कि "प्रयोग" तो प्रकृति करती है—तारों की सतहों तथा अन्तरंग में एवं अंतरातारकीय आकाश में। इन प्रयोगों की परिस्थितियों पर हमारा नियंत्रण प्रयोगशाला की भांति नहीं है किंतु इस कारण से खगोलिकी में हमारी वैज्ञानिक रुचि तथा आकर्षण में कमी नहीं होती। वास्तव में आकाशीय पिंडों पर परिस्थितियाँ इतनी चरम सीमाओं मे उपस्थित होती है जिन्हें हम पृथ्वीतल पर अपने प्रयोगों में उत्पन्न नहीं कर सकते। इसलिए खगोलिक अध्ययन में कुछ विशेष आकर्षण है। विशेष संतोष और कौतूहल की बात यह है कि हमने अपनी प्रयोगशाला मे प्रकृति के जो नियम प्राप्त किए है, वे नियम विश्व के सभी भागों मे तथा पिंडों पर लागू होते है— अर्थात् ये नियम विश्वव्यापी या सार्वत्रिक हैं।

पृथ्वी की सीमा से बाहर अन्तरिक्ष यंत्र या यान भेजने में तो हम पिछले दो दशकों में ही सफल हुए हैं— वह भी अपने निकटतम पड़ौसियों—चंद्रमा और ग्रहों तक ही। मूलतः हम तारों और अन्य आकाशपिंडों के बारे मे केवल उस विद्युतचुम्बकीय विकिरण का ही अध्ययन कर सकते हैं जो उनसे आता है, यथा—प्रकाश, रेडियो तरंगें, एक्स-किरणें, गामा-किरणें आदि। उदाहरणतः हम यह अध्ययन कर सकते है कि प्रकाश के आने की दिशा क्या है, और उसमें क्या परिवर्तन होते हैं। हम प्राप्त विकिरण की तीव्रता तथा उसमें होने वाले परिवर्तन माप सकते है, हम आने वाले प्रकाश का रंग देख सकते हैं या पूरा स्पेक्ट्रम (वर्णक्रम) लेकर रंग-वितरण का अध्ययन कर सकते हैं और प्रकाश के ध्रुवण का भी परीक्षण कर सकते है। इनके आधार पर हम तारों तथा ग्रहों के अनेकानेक गुण ज्ञात कर सकते है, तथा उनकी द्युति और दूरी, द्रव्यमान और साइज, पृष्ठीय ताप और संरचना, अंतरंग की दशा, उनकी गति तथा उनका क्रमिक विकास, आदि। इस अध्याय मे उन दूरस्थ संवेदी बिधियों तथा यंत्रों का अध्ययन करेंगें, जिन्हें खगोलिकों ने अपनाया है और उन्नत किया है।

15.2 खगोलीय यंत्र (Astronomical Instruments)

खगोलीय अन्वेषण मे प्रयुक्त उपकरणों को सुविधा के लिए दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहले वे जो प्रकाश या रेडियो-तरंगों को एकत्र करते हैं, दूरबीन कहलाते हैं। दूसरे अन्य अनेकानेक प्रकार के वे उपकरण जो इनके साथ काम आते हैं, विभिन्न राशियों का अभिलेख करते हैं। हमारे नेत्र प्रकाश के संग्रहकारी और अभिलेखी दोनों का ही कार्य करते हैं। किंतु संग्रहकारी के रूप में यह दक्ष नहीं

चित्र 15.1 : खगोलीय दूरबीन (*a*) अपवर्तक (*b*) परावर्तक O—अभिदृश्य, E—अभिनेत्र, N—समतल दर्पण
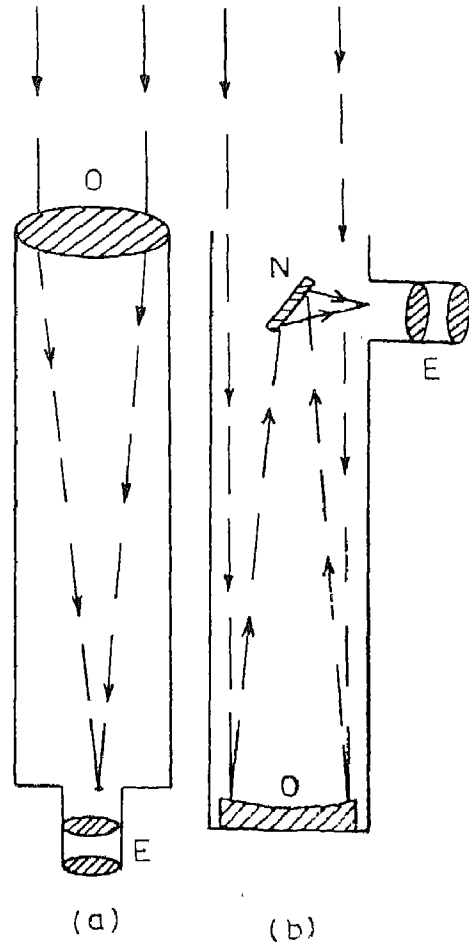
हैं, क्योंकि इसका आकार छोटा है, और अभिलेखी के रूप में यह परिमाणात्मक नहीं है। अतः हम सहायक उपकरणों के रूप में दूरबीन और फोटोग्राफी प्लेटों जैसी युक्तियों का उपयोग करते हैं।

प्रकाशीय दूरबीन (दूरदर्शी) दो प्रकार के होते है— अपवर्तक और परावर्तक (चित्र 15.1)। अपवर्तक दूरबीनों में एक उत्तल लेंस दूरबीन के अग्रभाग मे होता है, जो दूरस्थ वस्तु से प्राप्त समातर किरणों को एकत्र करके अपने फोकस तल मे उसका प्रतिबिब बनाता है। परावर्तक दूरबीन में यही कार्य एक अवतल परवलयी दर्पण द्वारा होता है। दोनों मे ही प्रकाश एकत्र करने वाले इस अंग को अभिदृश्य कहते है। दूरबीन की प्रकाश एकत्र करने की क्षमता उसके अभिदृश्य लेंस या दर्पण के क्षेत्रफल $\frac{\pi D^2}{4}$ के अनुपात में बढ़ती है, जहाँ D अभिदृश्य का अर्धव्यास या द्वारक है। मंद प्रकाश वाले पिंडों को देखने की क्षमता इसी अनुपात में बढ़ती है। उदाहरणतः अमेरिका की पालोमर वेधशाला का 200 इंच* द्वारक वाला दूरबीन एक छोटे 4 इंच द्वारक के दूरबीन से 2500 गुना प्रकाश एकत्र करता है। प्रतिबिंब में हम मूल पिंड का कितना सूक्ष्म विवरण देख पाते हैं यह भी द्वारक पर और प्रकाश के तरंगदैर्ध्य पर निर्भर करता है। अध्याय 7 के परिच्छेद 6 में हम देख चुके है कि द्वारक जितना बड़ा हो और तरंगदैर्ध्य जितनी कम हो उतनी ही अधिक बारीकी (स्पष्टता) प्रतिबिम्ब में प्राप्त होगी। किंतु व्यवहार में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि वायुमण्डल कितना स्वच्छ तथा विक्षोभरहित है इसका प्रतिबिंब की श्रेष्ठता पर गहरा प्रभाव होता है। इसलिए खगोलीय वेधशालाएँ सामान्यतः आबादी से दूर पहाड़ों की चोटियों पर स्थापित की जाती है, जहाँ वायु स्वच्छ और अपेक्षाकृत शांत होती है।

अपवर्तकों में वर्णिक त्रुटि होती है, जिसके कारण सब वर्णों का प्रकाश एक बिंदु पर फोकसित नहीं होता और फलतः प्रतिबिम्ब अस्पष्ट हो जाता है। इसके विपरीत परावर्तकों में वर्णिक त्रुटि नहीं होती, और उनको बनाना भी सरल होता है। इसीलिये संसार के बड़े-बड़े दूरबीन सभी परावर्तक हैं – यथा अमेरिका में पालोमर का 200 इंच वाला और रूस का 234 इंच वाला दूरबीन। भारत मे उस्मानिया विश्वविद्यालय का 48 इंच वाला दूरबीन, जो जापाल-रगपुर वेधशाला मे है, दक्षिण पूर्व एशिया का सबसे बड़ा दूरबीन है। यह भी परावर्तक है। भारतीय खगोल भौतिकी सस्थान, बंगलूर, द्वारा अपनी कावालूर वेधशाला के लिए एक 90 इंच का परावर्तक बनाया जा रहा है।

आकाशीय पिंडों से रेडियो तरगें भी प्राप्त होती है और उनका अध्ययन करने वाले यंत्र रेडियो दूरबीन कहलाते है। ये भी परावर्तक होते है और शक्ल में परवलयी या बेलनाकार होते है। रेडियो तरंग का तरंगदैर्ध्य प्रकाश की तुलना मे बहुत अधिक होने के कारण यह आवश्यक है कि यदि प्रकाशीय दूरबीन के बराबर बारीकी देखना है, तो रेडियो दूरबीन का द्वारक कहीं अधिक होना चाहिए। इंग्लैड के जोड्रेल बैंक में जो बड़ा रेडियो दूरबीन है उसका अभिदृश्य एक 250 फीट (3000 इंच) व्यास की परवलीय डिस्क है। *भारत मे ऊटकमंड मे जो बड़ा रेडियो दूर*-बीन है वह 500 मीटर लम्बाई और 50 मीटर चौड़ाई का बेलनाकार है।

सूर्य, ग्रहों और तारामंडलों के प्रतिबिम्बों के अभिलेख के लिए मुख्यतः फोटोग्राफी प्लेट का उपयोग होता है। स्थायी अभिलेख, तारों की स्थितियाँ तथा द्युतियाँ मापने या सूर्य अथवा ग्रहों के तल के लक्षण आदि का अध्ययन करने में काम आते है। किंतु फोटोग्राफी प्लेटों में कुछ अपने दोष होते हैं विशेषकर यह कि उनपर उत्पन्न कृष्णता आपाती प्रकाश के अनुपात में नहीं होती। अतः परिमाणात्मक कार्य के लिये प्रकाश-सेल श्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि प्रकाशोत्पादित विद्युतधारा प्रकाश की तीव्रता से समानुपाती होती है। किंतु उसके साथ हम एक समय मे एक ही तारे का अध्ययन कर सकते हैं। इसलिए व्यवहार में हम फोटोग्राफी और प्रकाशविद्युत तकनीक, दोनों का समुचित सामंजस्य काम में लेते है। रेडियो दूरबीन को सामान्यतः एक विशिष्ठ अल्प-रव रेडियोग्राही से संलग्न किया जाता है, जो एक अचर तरंगदैर्ध्य पर कार्य करता है।

आकाशीय पिंडों से जो अवरक्त, पराबैंगनी, एक्स-किरण

* 1 इंच=2.54 सेमी

और गामा किरण कोटि का विकिरण प्राप्त होता है उसे पृथ्वी का वायुमंडल अवशोषित कर लेता है। किंतु कृत्रिम उपग्रहों और पृथ्वी की परिक्रमा करती प्रयोगशालाओं के आविर्भाव से अब इनका भी अध्ययन संभव हो गया है, जिससे विश्व के अध्ययन के लिए खगोलिकी के नए पथ प्रशस्त होंगे।

15.3 सौरमंडल का अध्ययन (The Study of the Solar System)

केपलर के समय से यह ज्ञात हो गया है कि सभी ग्रह सूर्य के गिर्द दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में परिक्रमा करते है जिन के एक फोकस पर सूर्य स्थित है। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के अधीन ग्रहों की गति की व्याख्या अध्याय 3 में हम कर चुके हैं। यहाँ हम सौर मंडल के विभिन्न पिंडों के भौतिक गुणों को प्रेक्षणों के द्वारा ज्ञात करने की विधियों पर विचार करेंगे। सारणी 15.1 में ये परिणाम व्यक्त हैं।

(क) दूरी (Distance) : खगोलविदों द्वारा आकाशीय पिंडों की दूरियाँ ज्ञात करने की विधि सिद्धांततः ठीक वही है जो भूमि की पैमाइश के लिए सर्वेयर काम में लेता है, अर्थात् त्रिभुजन की विधि, जिसका उल्लेख अध्याय 1 के परिच्छेद 2 में हुआ है। सौर मंडल के पिंड के लिए खगोलविद पृथ्वी पर स्थित दो सुदूर स्थानों A और B से एक साथ उस पिंड P (यथा चंद्रमा) को देखता है (चित्र 15.2)। इन दो प्रेक्षणों से वह दृष्टि रेखाओं के बीच का कोण APB ज्ञात कर लेता है। फिर पृथ्वी के केन्द्र O के सापेक्ष A और B की स्थितियों के ज्ञान से वह दूरी PO का परिकलन कर लेता है। यदि दूरी AB पृथ्वी की त्रिज्या ($6{\cdot}378 \times 10^6$ मी) के बराबर हो तो चंद्रमा के लिए कोण ABP$=57'$ पाया जाता है। अतः समीकरण 1.1 में $\phi=57'$ और $d=6.378 \times 10^6$ मी रखने पर चन्द्रमा की दूरी $3{\cdot}844 \times 10^8$ मी प्राप्त होती है।

जहाँ तक ग्रहों की बात है, उपरोक्त विधि से किसी एक ग्रह की दूरी ज्ञात कर लेना पर्याप्त है। अन्य ग्रहों की दूरियाँ फिर a^3T^2 नियम से प्राप्त हो जाती है (केपलर का तीसरा नियम), जिसमें a ग्रह के अर्ध दीर्घ अक्ष की लंबाई है और T परिक्रमण काल है। कुछ वर्ष पूर्व शुक्र की दूरी राडार प्रतिध्वनि वाली सीधी विधि से यथार्थता से प्राप्त की गई है। शुक्र को राडार संकेत भेजा जाता है और वहाँ से परावर्तित संकेत को राडार स्टेशन पर प्राप्त किया जाता है, यदि बीच का समय अंतराल 2t हो तो शुक्र की दूरी $r=ct$ जहाँ c प्रकाश का वेग है, जिससे राडार संकेत भी चलता है।

जब शुक्र ग्रह की दूरी हमसे (अर्थात पृथ्वी से) किसी एक समय ज्ञात हो गई, तो फिर केपलर का तृतीय नियम
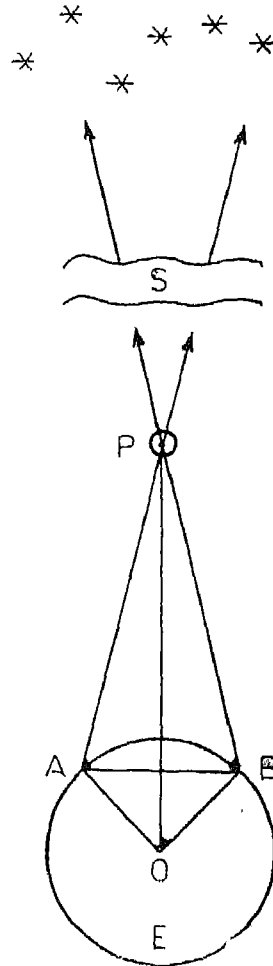
चित्र 15.2 : सौर मंडल के पिंडों की दूरियां ज्ञात करना

लगाकर हम शुक्र और पृथ्वी दोनों की दूरी सूर्य से ज्ञात कर सकते हैं और उसके बाद किसी भी अन्य ग्रह की भी। पृथ्वी की सूर्य से दूरी इसी प्रकार ज्ञात की गई है। यह दूरी 1.496×10^{11} मी है और इसे दूरी का खगोलीय मात्रक (A.U.) कहते हैं। सूर्य से सभी ग्रहों की दूरियाँ A.U. मात्रक में सारणी 15.1 के कालम 3 में दी गई है।

(ख) आकार (size) : कोण की परिभाषा चित्र 15.3 से ही स्पष्ट है कि यदि दूरी r पर स्थित पिंड नेत्र पर
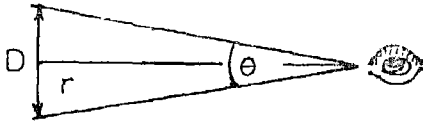
चित्र 15.3 : रैखिक साइज और कोणीय साइज के बीच सम्बन्ध

कोण θ रेडियन बनाता हो, तो पिंड का साइज D निम्नलिखित संबंध से प्राप्त होगा।

$$D = r\theta \qquad \cdots\cdots(15.11)$$

उदाहरणतः सूर्य की कोणीय त्रिज्या 960″ या 0·00465 रेडियन है, और पृथ्वी से उसकी दूरी 1.496×10^{11} मी, तो गुणा करने पर सूर्य की त्रिज्या 6.956×10^{8} मी प्राप्त होती है। इस प्रकार सूर्य की त्रिज्या पृथ्वी से लगभग 109 गुनी है। इसी विधि से अन्य ग्रहों की जो त्रिज्याएं प्राप्त हुई है उनको पृथ्वी की त्रिज्या के मात्रक में सारणी 15·1 के कालम 4 में बताया गया है। ठीक इसी प्रकार किसी ग्रह और उसके उपग्रह के बीच की कोणीय दूरी को पृथ्वी से ग्रह की दूरी से गुणा करने पर ग्रह से उपग्रह की वास्तविक दूरी प्राप्त हो जाती है।

(ग) परिभ्रमण (Rotation) : हम जानते हैं कि पृथ्वी 1 वर्ष में एक बार सूर्य की परिक्रमा करने के अतिरिक्त अपने उत्तर-दक्षिण अक्ष पर 23 घंटे 56·1 मिनट में परिभ्रमण भी करती हैं। अन्य ग्रह भी इसी भांति अपने-अपने केन्द्र से गुजरने वाले अक्ष पर परिभ्रमण करते है। इनके परिभ्रमण काल ज्ञात करने के लिए इनके पृष्ठों के निश्चित चिह्नों की गति का या उनके ऊपर बादल के धब्बे हों तो उनका अध्ययन किया जाता है। विभिन्न ग्रहों के परिभ्रमण काल सारणी 15.1 के कालम 5 में दिए गए हैं। अधिकांश ग्रहों मे परिभ्रमण पृथ्वी की ही भाँति पश्चिम से पूर्व की ओर है। बुध पर कोई पृष्ठीय चिह्न उपलब्ध नहीं है और शुक्र पर सदा बादलों की एक घनी परत बनी रहती है। इनके परिभ्रमण काल एक विशिष्ट राडार प्रतिध्वनि तकनीक से हाल ही में प्राप्त किए जा सके हैं। ये दोनों ही ग्रह बहुत धीमे परिभ्रमण करते है, और शुक्र का परिभ्रमण तो पश्चगतिक है, अर्थात पूर्व से पश्चिम की ओर।
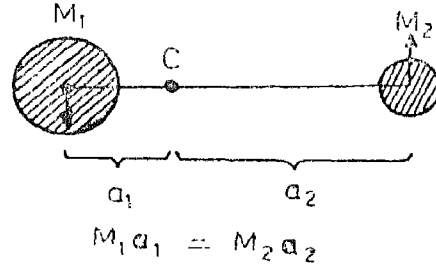
चित्र 15.4 : किसी युग्म व्यवस्था का द्रव्यमान केन्द्र के बीच परिक्रमण

(घ) द्रव्यमान (Mass) : मान लीजिए किसी M_1 द्रव्यमान से भारी केन्द्रीय पिंड जैसे सूर्य के गिर्द एक अपेक्षाकृत हलका M_2 द्रव्यमान का पिंड जैसे ग्रह त्रिज्या a के वृत्तीय कक्ष में परिक्रमा करता है। तो वास्तविकता यह होती है कि दोनों ही पिंड द्रव्यमान केन्द्र C के इर्द परिक्रमा करते हैं, जैसा चित्र 15·4 में दिखाया गया है। द्रव्यमान केन्द्र के हिसाब से

$$M_1a_1 = M_2a_2 \text{ जहाँ } a_1 + a_2 = a$$

जिससे $$\frac{a_1}{a_2} = \frac{M_2}{M_1} \rightarrow \frac{a_1 + a_2}{a_2} = \frac{M_1 + M_2}{M_1}$$

अतः $$a_2 = \frac{M_1 a}{M_1 + M_2} \text{ और } a_1 = \frac{M_2 a}{M_1 + M_2}$$

यदि ये पिंड अपने पथ पर क्रमशः v_1 और v_2 चालों

से गति कर रहे हों, और परिक्रमण काल T हो तो

$$v_1 = \frac{2\pi a_1}{T} \text{ और } v_2 = \frac{2\pi a_2}{T}$$

पिंडों पर अभिकेन्द्री बल $M_1 v_1^2/a_1$ तथा $M_2 v_2^2/a_2$ होगे जो दोनों ही पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण बल के तुल्य है। किसी एक पर यह लागू करने से

$$G\frac{M_1 M_2}{a^2} = \frac{M_2 v_2^2}{a_2} = 4\pi^2 \frac{M_2 a_2}{T^2}$$

दोनों ओर M_2 से भाग देने तथा a_2 का मान a के पदों में रखने से

$$\frac{GM_1}{a^2} = \frac{4\pi^2}{T^2} \frac{M_1 a}{M_1 + M_2}$$

या $$M_1 + M_2 = \frac{4\pi^2}{G} \frac{a^3}{T^2} \qquad ...(15.2)$$

अब, सूर्य और ग्रह निकाय के लिये M_2 का मान M_1 से बहुत ही कम है। अतः समीकरण (15.2) काफी निकटता से यह हो जाता है—

$$M_1 = \frac{4\pi^2}{G} \frac{a^3}{T^2} \qquad ...(15\ 3)$$

क्योंकि समस्त ग्रहों के लिए केन्द्रीय पिंड सूर्य ही है, इसलिए समीकरण (15.3) मे M_1 स्थिरांक है, फलतः $a^3 \propto T^2$ जो केपलर का तृतीय नियम है। गणितीय दृष्टि से यह कथन वृत्तीय ही नहीं दीर्घवृत्तीय कक्षाओं के लिए भी सत्य पाया जाता है, यदि a को अर्ध-दीर्घ-अक्ष लें।

समीकरण (15·3) को सूर्य-पृथ्वी युग्म पर लागू करने पर हम पाते हैं $a = 1.496 \times 10^{11}$ मी, $T = 365.25$ दिन $= 3{\cdot}158 \times 10^7$ सेकड और हमें ज्ञात है कि एम० के० एस० पद्धति में $G = 6{\cdot}668 \times 10^{-11}$ अतः M(सूर्य) $= 1{\cdot}989 \times 10^{30}$ किग्रा $\cong 329000\ M$(पृथ्वी)। समीकरण (15·2) को हम ग्रह-उपग्रह युग्म पर भी लगा सकते है, जहाँ M_1 ग्रह का द्रव्यमान होगा, तथा M_2 उपग्रह का। उदाहरणतः वृहस्पति के एक उपग्रह I_0 के लिए $a = 4{\cdot}22 \times 10^8$ मी, $T = 1{\cdot}769$ दिन $= 1{\cdot}525 \times 10^5$ सेकंड। अतः समीकरण (15.3) से M (वृहस्पति) $= 1{\cdot}9 \times 10^{27}$ किग्रा $= 318\ M$ (पृथ्वी) जिन-जिन ग्रहों पर उपग्रह हैं उन सबके लिए यह विधि काम मे ली जाती है। सारणी 15·1 के कालम 6 मे ग्रहों के द्रव्यमान दिए गए है। द्रव्यमान और त्रिज्या दोनों ज्ञात होने पर हम सरलता से मध्यमान घनत्व की गणना कर सकते हैं ($3M/4\pi R^3$) और साथ ही ग्रह के तल पर गुरुत्वीय त्वरण भी (GM/R^2)। ये मान सारणी 15·1 के कालम 7 और 8 में दिए गए है।

उदाहरण : चन्द्रमा के लिए $M = 7{\cdot}349 \times 10^{22}$ किग्रा और $R = 1.738 \times 10^6$ मी। उसका मध्यमान घनत्व और उसके तल पर गुरुत्वीय त्वरण ज्ञात कीजिए। यदि किसी व्यक्ति का भार पृथ्वी पर 60 किग्रा है तो चन्द्रमा पर कितना होगा ?

चंद्रमा का औसत घनत्व $= \dfrac{3M}{4\pi R^3}$

$$= \frac{3 \times 7{\cdot}349 \times 10^{22}}{4 \times 3{\cdot}142 \times (1{\cdot}738 \times 10^6)^3}$$

$= 3{\cdot}34 \times 10^3$ किग्रा/मी³ $= 3{\cdot}34$ ग्रा/सेमी³

चंद्रमा के तल पर गुरुत्वीयत्वरण $= \dfrac{GM}{R^2}$

या g (चंद्रमा) $= \dfrac{6{\cdot}668 \times 10^{-11} \times 7{\cdot}349 \times 10^{22}}{(1{\cdot}738 \times 10^6)^2}$

$= 1{\cdot}62$ मी/से² $= \frac{1}{6} g$ (पृथ्वी)

किसी वस्तु का भार $= mg$

$\dfrac{\text{चंद्रमा पर भार}}{\text{पृथ्वी पर भार}} = \dfrac{g \text{ (चंद्रमा)}}{g \text{ (पृथ्वी)}} = \dfrac{1}{6}$

अतः उस मनुष्य का चद्रमा पर भार $= 60 \times \frac{1}{6}$ $= 10$ किग्रा।

पृष्ठीय ताप (Surface Temperature) : ग्रह सूर्य से प्राप्त प्रकाश के परावर्तन के कारण ही चमकते है। सौर विकिरण का एक अंश परावर्तित होता है, शेष अवशोषित हो जाता है और ग्रह के पृष्ठ को गरम करता है, जिसके फलस्वरूप वह पृष्ठ स्वयं भी ऊर्जा का विकिरण करता है। यह विकिरण विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के अवरक्त और रेडियों क्षेत्रों मे होता है। ग्रह के इस स्व-विकिरण को माप कर स्टीफान का नियम $E = \sigma T^4$ लगाने से हमे ग्रह का पृष्ठीय ताप T ज्ञात हो जाता है। सारणी 15·1 के कालम 9 में ग्रहों के इस प्रकार प्राप्त ताप दिए गए है। ज्यों-ज्यों हम सूर्य से दूर जाते हैं, प्रेक्षित ताप कम होता जाता है, क्योंकि

ग्रह को व्युत्क्रम वर्ग नियम के अनुसार क्रमशः कम सौर ऊर्जा प्राप्त होती है। इसमें शुक्र एक अपवाद है, क्योंकि उस पर कार्बन-डाई-आक्साइड का एक घना वातावरण है, जो एक कम्बल की भाँति उसके पृष्ठ को गर्म रखता है।

(च) वायुमंडल (Atmosphere) : हमारी पृथ्वी के चहुंओर एक वायुमंडल है, जिसमें लगभग 80% नाइट्रोजन और 20% आक्सीजन है। कुछ कार्बन-डाई-आक्साइड और जल वाष्प भी है। किसी ग्रह या उपग्रह पर वायुमंडल है या नहीं इसका ज्ञान दो प्रकार से हो सकता है। एक यह कि बादल और आंधी सम्बन्धी मौसम-विज्ञान का अध्ययन करें; दूसरा यह कि स्पेक्ट्रोग्राफ की सहायता से वायुमंडलीय गैसों की पहचान करें। बादल, प्रकाश के श्रेष्ठ परावर्तन होने के कारण, ग्रह की परावर्तकता बढ़ा देते है, इसे एल्बेडो कहते है। सारणी 15.1 के कालम 10 में विभिन्न ग्रहों तथा चंद्रमा के एल्बेडो दिए गए है। हम देखते है कि चंद्रमा और बुध, सूर्य के प्रकाश का केवल 6 या 7 प्रतिशत परावर्तित करते हैं, जो पृथ्वी की चट्टानों के तुल्य है। अतः हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि इन पिंडों पर वातावरण नहीं है। इस तथ्य की पुष्टि अब बृहस्पति अंतरिक्ष खोजी यंत्रों से हो चुकी है। शुक्र, पृथ्वी, शनि, यूरेनस और नेपट्यून ग्रहों के एल्बेडो उच्च है, जिसका आशय यह है कि इन पर बादली वायुमंडल है। शुक्र की परावर्तकता सर्वोच्च है–85%–क्योंकि उसका सारा पृष्ठ सदा ही घने बादलों से ढका रहता है। शुक्र का यह वातावरण इतना घना है कि उसका पृष्ठीय दाब पार्थिव वायुमंडलीय दाब से 100 गुना होता है। मंगल और प्लूटो के एल्बेडो मध्यम कोटि के है, अतः उनका वायुमंडल पतला है, मंगल पर वायुमंडलीय दाब पार्थिव वायुमंडलीय दाब का मात्र 6000वां अंश ही है।

किसी ग्रह के वायुमडल का रासायनिक संघटन उसके स्पैक्ट्रम से ज्ञात होता है, इस स्पैक्ट्रम में उन गैसीय अणुओं की लाक्षणिक अवशोषण पट्टियाँ प्रकट होती है जो ग्रह के वायुमंडल में उपस्थित हैं (अध्याय 7.9)। इसी विधि से शुक्र और मंगल के वायुमंडल में मुख्यतः कार्बनडाई-आक्साइड का होना ज्ञात किया गया था। बृहस्पति और शनि पर हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन और अमोनिया है, जबकि यूरेनस और नेपट्यून पर हाइड्रोजन, हीलियम और मीथेन ही हैं।

यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि कुछ ग्रहों पर वायुमंडल क्यों नही है, और अन्य पर विभिन्न घनता के वायुमंडल क्यों हैं। इसमे दो कारक हे : गुरुत्वीय त्वरण (g) और ताप। चंद्रमा जैसे छोटे पिंड पर गुरुत्वीय त्वरण g बहुत कम है, इसलिए पलायन वेग कम है (अध्याय 3·11)। वायुमंडलीय गैस के अणु एक-एक करके पलायन कर जाएंगे और फलतः वायुमडल में कुछ बचेगा ही नहीं। बुध, मंगल और प्लूटों पर g कुछ अधिक है, इसलिए उनमे वायुमंडल बनाये रखने की क्षमता होनी चाहिए। इनमें से बुध सूर्य से अति निकट होने के कारण बहुत उच्च ताप पर है और इसलिए उसका वायुमंडल पूर्णतः पलायन कर गया है। जैसा अध्याय 8.5 में बताया है। उच्च ताप का आशय है अणुओं की औसत गतिज ऊर्जा अधिक होना, अर्थात माध्य वेग अधिक होना, जो गुरुत्व के प्रभाव को विजित करने के लिए पर्याप्त है। यह भी उल्लेखनीय है कि समान गतिज ऊर्जा हो तो हलके अणुओं का वेग अधिक होता है (अध्याय 8·6, ऊर्जा के समविभाजन का नियम)। फलतः भारी अणुओं की तुलना में वे अधिक सरलता से पलायन कर सकते है। यही कारण है कि शुक्र, पृथ्वी और मंगल ग्रहों से हाइड्रोजन और हीलियम, जो सबसे हल्के अणु है, पूर्णतया लुप्त हो चुके हैं। इसके विपरीत बृहस्पति और शनि जो भारी ग्रह है, सब गैसों को वायुमंडल में बनाये हुए है, जिनमें हाइड्रोजन तथा हीलियम शामिल हैं।

15.4 अंतरिक्ष अन्वेषण और पार्थिवेतर जीवन के लिए खोज (Space Exploration and Search for Extra-Terrestrial life)

अंतरिक्ष का अन्वेषण रूस द्वारा 6 अक्टूबर 1957 को प्रथम स्पुतनिक के प्रक्षेपण से प्रारंभ हुआ। मानव-सहित अंतरिक्ष यात्रा 12 अप्रैल 1961 को यूरी गागरिन द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा के साथ शुरू हुई। सभी अंतरिक्ष उड़ानों का उद्देश्य सौरमंडल के विभिन्न भागों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना तथा उन पर जीवों की उपस्थिति की

खोज है। प्रारंभ में तो पार्थिव उपग्रह इसलिए छोड़े गए कि पृथ्वी के वायुमंडल के ऊपरी भागों का अध्ययन हो। इस क्रम में एक्सप्लोरर 1 ने जनवरी 1958 मे एक महत्व-पूर्ण खोज यह की कि पृथ्वी के ऊपरी वायुमंडल मे चुम्ब-कीय क्षेत्र से बद्ध आविष्ट वर्गों की पट्टियाँ विद्यमान है, जिन्हें वान एलेन पट्टियाँ कहा जाता है। इसके अति-रिक्त पृथ्वी से 1000 किमी ऊँचाई तक के वायुमंडल के घनत्व, ताप और संघटन के बारे में बहुत सी सूचनाएं हमें मिलीं उसके बाद अंतरिक्ष वैज्ञानिक चंद्रमा तथा अन्य ग्रहों की ओर उन्मुख हुए।

(क) चन्द्रमा (Moon) : हमारी पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह चंद्रमा है। अंतरिक्ष में यह हमारा निकटतम पड़ोसी है, इसलिए अंतरिक्ष यंत्रों ने इसका विशद अध्ययन किया है। चंद्रमा अपनी धुरी पर ठीक उसी आवर्तकाल से परिभ्रमण करता है, जिससे वह पृथ्वी के चारों ओर अपनी परिक्रमा पूरी करता है। फलतः चंद्रमा का एक ही अर्धभाग सदा पृथ्वी की ओर रहता है। चंद्रमा के पिछले भाग के पहले फोटोग्राफ रूसी अंतरिक्ष खोजी यंत्र लूना-3 ने 1960 में प्राप्त किए। उस पर भी क्रेटर (गड्ढे) अँधेरे मैदान और हलकी छाया वाले पहाड़ ठीक उसी प्रकार दिखाई दिए जैसे अग्र भाग पर हमें दिखाई देते हैं। दूरबीन द्वारा अध्ययन से यह पहले ही ज्ञात था कि चंद्रमा का पृष्ठ उजाड़ और अनाकर्षक है। वह एक वायुरहित और जलविहीन रेगिस्तान है, जिसमें चट्टानें चाहे हों, हरि-याली, जीवन या ध्वनि का सर्वथा अभाव है। वायुमंडल के अभाव और बहुत लंबे दिन (वहाँ का दिन पृथ्वी के 15 दिन के बराबर होता है) के कारण चंद्रमा पर दिन का ताप 110° से तक चढ़ जाता है और रात्रि का 150 से तक गिर जाता है। इसीलिए अमेरिका ने पहले सर्वेयर और आर्बिटर नाम अंतरिक्ष के यान भेजे, जो चंद्रमा के निकट चक्कर लगाकर निकटता से उसका निरीक्षण करें, और उसके बाद ही जुलाई 1969 में अपोलो 11 अंतरिक्ष यान में अंतरिक्ष यात्री आर्मस्ट्रांग, एल्ड्रिन और कॉलिन्स को भेजा। वे चंद्रमा के प्रथम विजेता कहे जा सकते हैं। वहाँ से वे चंद्रमा की मिट्टी और चट्टानों के नमूने लाए, ताकि हमारी प्रयोगशालाओं में उनका अध्ययन हो सके। रूस ने जनवरी 1973 में लूनाखोड नामक मानवरहित यान भेजा जो यांत्रिक मानव के तुल्य था और पृथ्वी से प्रेषित संकेतों से नियंत्रित होता था। यह यांत्रिक मानव चंद्रमा से अनेक नमूने लेकर लौटा। चंद्रमा से प्राप्त पदार्थ के विश्लेषण से पता लगता है कि वह पृथ्वी की ऊपरी पपड़ी के समान ही है। चन्द्र चट्टानों की आयु पृथ्वी तथा उस पर गिरे उल्कापिंडों की आयु के समान ही है। ये सब लगभग 4 अरब वर्ष पुरानी हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि सौर मंडल के सभी पिंड लगभग एक साथ ही उत्पन्न हुए होंगे।

(ख) बुध (Mercury) : अमेरिका का अंतरिक्ष यान मैरिनर 10 फरवरी 1973 में बुध से निकट कुछ हजार किलोमीटर से कम दूरी से गुजरा था। उस समय जो फोटो-ग्राफ लिए गए उनसे पता लगता है कि बुध के पृष्ठ पर भी, चंद्रमा की भाँति ही, सभी आकारों के क्रेटर हैं। वायुमंडल के अभाव और ताप की विषमताओं के कारण बुध पर जीवन की उपस्थिति संभव नहीं है।

(ग) शुक्र (Venus) : त्रिज्या, द्रव्यमान और घनत्व में शुक्र एक प्रकार से पृथ्वी का ही समरूप है। अतः उसके पृष्ठ पर घने बादलों की परत से यह कल्पना होती है कि वहाँ पृथ्वी की भाँति पानी और जीवन भी होगा। किंतु 1965 से 1971 के बीच रूस द्वारा शुक्र की खोज के लिए भेजे गए अंतरिक्ष यानों से पता लगा कि शुक्र के घने वायुमंडल में 95% कार्बनडाईआक्साइड है, शुक्र-पटल पर दाब पार्थिव वायुमंडलीय दाब से 100 गुना है, और पृष्ठीय ताप 480° से है। शुक्र के वायुमंडल में कुछ जल है—0.7 प्रतिशत किंतु अन्यथा बादलों का संघटन सर्वथा भिन्न है। इन परिस्थितियों में शुक्र पर जीवन होने की कोई संभावना नहीं लगती।

(घ) मंगल (Mars) : इस ग्रह का मिट्टी के समान लाल रंग, लगभग 24 घंटे का परिभ्रमण काल, पीले बादल, नीली धुंध और श्वेत ध्रुवीय टोपियाँ—ये सब इतने पृथ्वी तुल्य लगते हैं कि यदि मानव रूपी जीव के रहने योग्य कोई ग्रह है तो वह मंगल ही हो सकता है। मंगल पर मौसम के साथ रंग बदलता रहता है, जिससे प्रायः वनस्पति की उपस्थिति का चिह्न माना गया है। अतः रूस ने मंगल के लिए विशेष अंतरिक्ष-यान भेजे और अमरीका ने मैरिनर

अंतरिक्ष खोजी यंत्र 1971 के बाद इस आकर्षक ग्रह का अध्ययन करने के लिए भेजे। यह बात तो वैज्ञानिक स्पेक्ट्रोस्कोप द्वारा अध्ययन कर पहले ही तय कर चुके थे कि मंगल का हल्का वायुमंडल मुख्यत: कार्बन डाई आक्साइड से बना है। उन्होंने कुछ अंश पानी भी पाया था और कल्पना की थी कि ध्रुवीय टोपियाँ ठोस रूप पानी (बर्फ) की बनी हो सकती है। किन्तु अंतरिक्ष यानों से जो प्रेक्षण प्राप्त हुए उनसे पता लगा कि ये टोपियाँ ठोस रूप कार्बन डाई आक्साइड की है, जिसे शुष्क बर्फ कहते हैं। इनमें कुछ ही प्रतिशत पानी है। इस प्रकार की शुष्क (जल-विहीन) ठंडी और आक्सीजन-रहित परिस्थितियों के बावजूद यह कल्पना बनी रही कि जीवन के प्रारंभिक स्वरूप-यथा लाइकेन-मंगल पर हो सकते हैं।

सन् 1971-72 के दौरान मैरिनर 9 ने मंगल के निकट से जो फोटोग्राफ लिए, उनसे चंद्रमा की भाँति क्रेटरों की उपस्थिति ज्ञात होती है। किंतु इन क्रेटरों की सीमाएं तीखी नहीं, चिकनी हैं। यह संभवत: मंगल के पृष्ठ पर बहने वाली पवन के अपरदनकारी प्रभाव से हुआ होगा, जो प्राय: अंधड़ का रूप ले लेती है और मंगल पर रेत के टीले पैदा करती है। यह भी पाया गया कि मंगल पर ज्वालामुखी का विस्फोट, कैनियनों का बनना और उठे हुए पठार जैसी भूवैज्ञानिक घटनाएँ भी होती है। फोटो से सूखी हुई नदी के पथ भी दिखाई दिए हैं, जिसका आशय यह हुआ कि भूतकाल में कभी मंगल अपेक्षाकृत गरम रहा होगा और उसके पृष्ठ पर पानी स्वतन्त्रता से बहता होगा। अभी तो मंगल ग्रह अपने शीतल हिमनदीय काल से गुजर रहा लगता है, जिसमें समस्त पानी उसकी पृष्ठीय चट्टानों के नीचे स्थाई तुषार के रूप में जम गया है। ज्वालामुखीय क्रिया से यह पानी कुछ निम्नस्तरीय गर्म भागों में पृष्ठ के ऊपर आ सकता है, और वहाँ जीवन का निर्वाह हो सकता है। अमेरिका के वाइकिंग 1 और 2 अंतरिक्षयान यही ज्ञात करने के लिए भेजे गये थे कि मंगल पर किसी भी स्वरूप के जीव हैं या नहीं। पहला वाइकिंग 20 जुलाई 1976 को मंगल पर बिना किसी झटके के उतरा, उसने वहाँ के अनेक श्रेष्ठ फोटो लिए और जीवन का पता लगाने के लिए तीन विशिष्ट प्रयोग वहाँ की मिट्टी के किए। दुर्भाग्य से परिणाम नकारात्मक रहे हैं। संभवत: सौर-मंडल मे हमारी पृथ्वी ही जीवन को आश्रय देने का एक मात्र स्थल है। हाँ, अन्य दूरस्थ तारों के गिर्द घूमने वाले ग्रहों मे जीवन होने की संभावना अच्छी है।

(ङ) अन्य ग्रह (Other Planets) : मंगल से आगे के सभी ग्रह इतने ठंडे हे कि वहां पर जीवों के निर्वाह की कोई संभावना नहीं है। साथ ही इनके वायुमंडलों में मीथेन और अमोनिया जैसी विषैली गैसें भी है। अमेरिका ने पायनियर और वायेजर नामक अंतरिक्षयानों को इन ग्रहों के निकट अध्ययन के लिए भेजा था, जिनका उद्देश्य यह भी था कि कम से कम सौरमंडल की उत्पत्ति ही हम समझ सकें।

(च) सौरमंडल के अन्य पिंड (Other objectives in the Solar System) : ग्रहों और उपग्रहों के अतिरिक्त सौर-मंडल में तीन अन्य प्रकार के पिंड है, ऐस्टेराइड (ग्रहिकाएँ), उल्काएँ और धूमकेतु (पुच्छल तारे)। ऐस्टेराइड 1600 से अधिक छोटे-छोटे पिंडों का एक समूह है, जो सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं, इनके कक्ष मंगल और बृहस्पति के कक्षों के बीच हैं। इनमें से सबसे बड़ा सीरिस है जिसकी त्रिज्या 350 किमी है, और संभवत: सबसे छोटा केवल 100 मी व्यास का है। कल्पना यह है कि ये किसी बड़े ग्रह के अंग है, जो बृहस्पति के गुरुत्वीय प्रभाव के कारण खण्ड-खण्ड हो गया होगा। ऐस्टेराइडों का घनत्व और रासायनिक संघटन बहुत कुछ चंद्रमा के तत्संगत गुणों के समान ही हैं।

धूमकेतु पानी, अमोनिया और मीथेन के सम्मिलित बर्फ की ढीली गेंदें है जिनमें धात्वीय कण भी अंत:स्थापित होते हैं। ये बहुत ही दीर्घवृत्तीय कक्षा में चलते हैं और अधिकांश समय सूर्य से बहुत दूर बिताते हैं। प्रत्येक धूमकेतु में लगभग 10 किमी व्यास का एक केन्द्रक होता है, जो अधिकांश समय तो दृश्य नहीं होता। किंतु जब धूमकेतु सूर्य के पास आता है तो सौर विकिरण उसके पदार्थ को गर्म करता है, जिसकी वाष्प लगभग 10,000 किमी तक फैलाव ले लेती है। सूर्य के और निकट आने पर धूमकेतु में एक पूंछ पैदा हो जाती है, जो सूर्य के प्रकाश के दाब के कारण होती है, और इसीलिए सदैव सूर्य से दूर

की ओर रहती है। इसी कारण धूमकेतु को पुच्छल-तारा भी कहते है, यद्यपि यह तारों की कोटि में नही है। यह देखा गया है कि अनेक धूमकेतु सूर्य के बहुत निकट आने पर छोटे टुकड़ों में विभक्त हो जाते है। जब कभी पृथ्वी का कक्ष धूमकेतु के कक्ष को काटता है, तो ये टुकड़े पृथ्वी पर उल्कावृष्टि के रूप मे गिरते है। अधिकाश उल्काएँ छोटी होती है और पृथ्वी के वायुमण्डलीय घर्षण के कारण जलकर नष्ट हो जाती हैं। किंतु कुछ बड़े टुकड़े बच जाते और पृथ्वी पर पत्थर या लोह-उल्कापिड के रूप में गिरते है। इनमें से भी जो बड़े होते है वे तो पृथ्वी के तल पर क्रेटर (गड्ढा) बना देते है। चंद्रमा, बुध और मंगल पर भी क्रेटरो का कारण यही है।

1980 के दशक मे अमेरिका द्वारा एस्टेराइडो और धूमकेतुओं को लक्ष करके अंतरिक्ष यान भेजने की योजना है।

15 5 सूर्य का अध्ययन (Study of the Sun)

हमारा सूर्य आकार, द्रव्यमान और द्युति के विचार से एक औसत तारा है। यह सब तारों से चमकीला और बड़ा इसलिए दीखता है कि यह पृथ्वी से केवल 8 प्रकाश-मिनट की दूरी पर है। इसी कारण से अन्य तारो की अपेक्षा इसका अध्ययन हम अधिक बारीकी से कर सकते है। अन्य तारे इतनी दूर है कि बड़ी से बड़ी दूरबीनों मे भी वे प्रकाश के बिन्दुमय स्रोत से बड़े नही दीखते। हम परिच्छेद 15.3 मे देख चुके है कि सूर्य की दूरी और द्रव्यमान कैसे ज्ञात किए जाते हैं। यहाँ हम बतायेगे कि सूर्य की ज्योति दीप्तता, ताप और अन्य गुण कैसे प्राप्त किए जाते है।

(क) पृष्ठीय ताप (Surface Temperature) : हम किसी वस्तु के काले पृष्ठ को धूप में रखकर उसकी तापवृद्धि ज्ञात करके सूर्य से प्राप्त विकिरण की तीव्रता ज्ञात कर सकते हैं (चित्र 15.5)। प्रयोग बताते है कि पृथ्वी पर सूर्य की किरणों से लम्बवत् कोई पृष्ठ लें तो उसके प्रत्येक वर्ग सेमी क्षेत्रफल पर 2 कैलॉरी प्रति मिनट सौर विकिरण प्राप्त होता है। इसे सौर-स्थिरांक कहते हैं, और
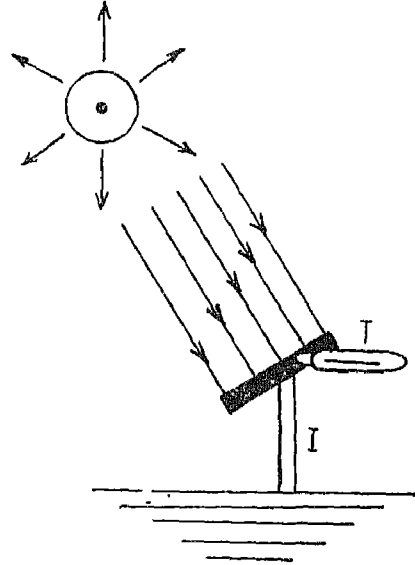
चित्र 15.5 : सौर स्थिरांक का मापन, T—तापमापी

उपरोक्त कथन के अनुसार उसका मान 1.388×10^3 वाट/मी² आता है। अब एक गोले की कल्पना करें जिसकी त्रिज्या r एक खगोलीय मात्रक के बराबर हो (चित्र 15.6), अर्थात् सूर्य से पृथ्वी की दूरी के बराबर। तो इस
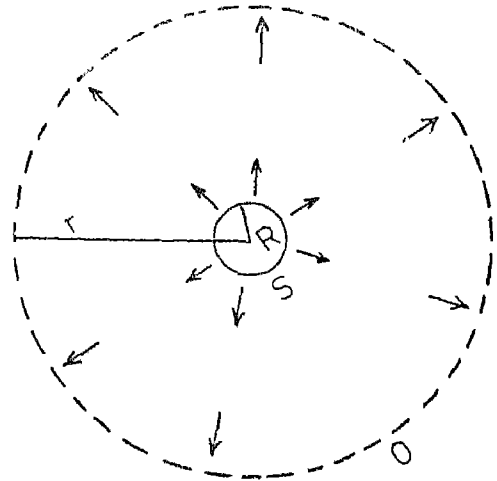
चित्र 15 6 : सौर द्युति और ताप का परिकलन

गोले के पृष्ठीय क्षेत्रफल $4\pi r^2$ को पार करने वाला विकिरण 3.9×10^{26} वाट होगा; यही सूर्य की समस्त ज्योति दीप्ता है। अब सूर्य की त्रिज्या R लें और उपरोक्त $4\pi r^2$ से भाग दें तो सूर्य के पृष्ठ से प्रकाश फ्लक्स $F = 6.41 \times 10^7$ वाट/मी^{2} प्राप्त होता है। अन्त में स्टीफान बोल्टजमान नियम $F = \sigma T^4$ को, $\sigma = 5.66 \times 10^{-8}$ वाट मी$^{-2}$ डिग्री$^{-4}$ लेकर, लागू करें तो सूर्य का पृष्ठीय ताप यह होगा

$$T = \sqrt[4]{\frac{6.41 \times 10^7}{5.66 \times 10^{-8}}} = 5800 \text{ केल्विन}$$

$$\simeq 5500° \text{ से}$$

स्पष्ट है कि यह पृष्ठीय ताप ही है। कोई भी ज्ञात पदार्थ इस ताप पर द्रव या ठोस अवस्था में नहीं रह सकता।

(ख) सूर्य की आंतरिक दशायें (Conditions at the Centre) : सूर्य के पृष्ठ से ज्यों-ज्यों भीतर जाएंगे, ताप, दाब और घनत्व बढ़ता जाएगा, क्योंकि बाहरी परतों में उपस्थित पदार्थों के कारण संपीडन होगा। गणना से ज्ञात होता है कि सूर्य के केन्द्र पर ताप 1.4 करोड़ (14×10^6) केल्विन होना चाहिए। स्पष्ट है कि सूर्य का पृष्ठ ही नहीं समस्त अंग गैसीय स्वरूप का ही होगा। यह गैस अधिकांशत: हाइड्रोजन है, जो द्रव्यमान में सूर्य का 70 प्रतिशत भाग है। शेष में लगभग 28 प्रतिशत हीलियम है, और 2 प्रतिशत में लीथियम से यूरेनियम तक के सभी तत्व आ जाते है। सूर्य का घनत्व पृष्ठ पर लगभग 10^{-4} किग्रा/मी^{3} है, जो केन्द्र तक पहुंचने पर 10^5 किग्रा/मी^{3} से अधिक हो जाता है। यदि पूरे सूर्य के द्रव्यमान और त्रिज्या से गणना करें तो औसत घनत्व पानी के घनत्व से लगभग 1.4 गुना आता है।

(ग) ऊर्जा का उत्पादन (Energy Production) : यदि सूर्य की ज्योति को हम उसके द्रव्यमान से भाग दें तो ज्ञात होता है कि सूर्य के पदार्थ के प्रत्येक ग्राम से प्रति सेकंड लगभग 2×10^{-7} जूल ऊर्जा उत्सर्जित हो रही है। सूर्य का पूरा जीवन $4\frac{1}{2}$ अरब वर्ष है, यह देखते हुए प्रत्येक ग्राम पदार्थ 3×10^{10} जूल ऊर्जा उत्सर्जित कर चुका है। ऊर्जा का इतना अधिक उत्पादन तेल के दहन अथवा बारूद के विस्फोट जैसी रासायनिक प्रक्रियाओं से असंभव है। सन् 1939 में बेथे ने बताया कि नियन्त्रित ताप-न्यूक्लीय प्रक्रिया सौर ऊर्जा के उत्पादन के लिए उत्तरदायी है। दो प्रकार की प्रक्रियाओं का सुझाव है, जिन्हें कार्बन-नाइट्रोजन चक्र और प्रोटान-प्रो श्रृंखलीय प्रक्रिया कहते हैं। बाद वाली प्रक्रिया वही है जो हाईड्रोजन बम में होती है। दोनों प्रक्रियाओं में हाइड्रोजन के 4 परमाणु संलयित होकर एक हीलियम परमाणु बनाते हैं। अब 4 हाइड्रोजन परमाणुओं का परमाणु भार 4.032 है और 1 हीलियम परमाणु का 4.003, इस प्रकार इस संलयन में लगभग 0.7 प्रतिशत द्रव्यमान की क्षति होती है। आइनस्टाइन के समीकरण $E = mc^2$ के अनुसार 0.7 प्रतिशत द्रव्यमान का ऊर्जा में परिवर्तन 5×10^{11} जूल प्रति किलो ग्राम के तुल्य है। जो सूर्य को बहुत समय तक चमकता रखने के लिये पर्याप्त है।

(घ) सूर्य के धब्बे और सौर क्षोभ (Sun Spots and Solar Activity): सूर्य के फोटोग्राफों में अनेक काले धब्बे दिखाई देते है, जिन्हें सूर्य-कलंक या सूर्य के धब्बे कहते है। वास्तव में सूर्य के शेष पृष्ठ की तुलना में इनके काले दीखने का कारण यह है कि इन भागों का ताप अपेक्षाकृत कम—लगभग 4500 केल्विन होता है। कुछ सूर्य-धब्बे इतने बड़े होते है कि पृथ्वी-तुल्य अनेक पिंड उसमें समा जाएं। सूर्य धब्बों का एक लक्षण यह है कि वहाँ 2 से 3 हजार गाउस तक तीव्रता के चुम्बकीय बलक्षेत्र होते हैं। सूर्य-धब्बों की संख्या प्रतिवर्ष बदलती रहती है, इसमें 11.1 वर्ष का चक्र पाया जाता है, इसे सूर्य-कलंक चक्र कहते है। सूर्य पटल पर सूर्य-धब्बे प्रतिदिन खिसकते भी रहते हैं, जिससे यह तात्पर्य निकलता है कि सूर्य परिभ्रमण करता है। यह परिभ्रमण काल सूर्य की विषुवत रेखा पर 25 दिन के लगभग पाया गया है।

अनेक बार ऐसा भी होता है कि सूर्य के कुछ भागों से आने वाले प्रकाश में H_α प्रकाश की तीव्रता अचानक बढ़ जाती है। इस घटना को सौर क्षोभ कहते हैं। क्षोभ के दौरान सूर्य से प्रोटॉनों, इलेक्ट्रॉनों और एल्फा-कणों की धाराएँ फूटती है, जो लगभग एक दिन बाद पृथ्वी तक पहुंचती हैं। परिणामत: संसार-भर में चुम्बकीय आँधियाँ और रेडियो विक्षोभ प्रकट होते हैं। यह सब सौर क्रिया सूर्य-कलंक चक्र के आवर्तकाल से बदलती रहती हैं। यह पाया

गया है कि वृक्षों का विकास भी सौर-कलंक चक्र द्वारा प्रभावित होता है; इसका प्रमाण यह है कि पेड़ के तनों का अनुप्रस्थ काट में प्रतिवर्ष के सूचक वलय होते है उनकी मोटाई इसी आवर्तकाल से बदलती है।

15.6 तारागण (The Stars)

(क) पहचान (Identification) · आकाश में जो सबसे चमकीले तारे है उनको नाम दे दिए गए हैं—यथा व्याध (सीरियस), अगस्ति (केनोपास), चित्रा (स्पाइसा), स्वाति (आर्कटुरस), ध्रुव (पोलारिस) आदि। अनेक चमकीले और मंद तारे मिलकर समूह बनाते है, जिनको तारामंडल कहते हैं। तारामंडलों के श्रेष्ठ उदाहरण वे है जो राशियों के प्रतीक हैं—यथा मेष (एयरीज), वृषभ (टारस), आदि। ये राशि-द्योतक तारामंडल आकाश मे सूर्य के पथ पर स्थित हैं। सप्तर्षि (ग्रेट बीयर) और त्रिशंकु (सदर्न क्रास) वे तारामंडल है जो आकाश मे क्रमश: पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवो की ओर दिखाई देते हैं। भारत में हम वैदिक काल से ही नक्षत्रों का उपयोग करते रहे है। ये भी आकाश में सूर्य और चन्द्रमा के आभासी पथ के निकट स्थित हैं क्योंकि चन्द्रमा को एक चक्र पूरा करने में 27.32 दिन लगते हैं, तारों में 27 नक्षत्र माने गए है, अर्थात प्रत्येक दिन के लिये एक। प्रत्येक दिन उस नक्षत्र के नाम से जाना जाता है जिसमें सूर्योदय के समय चन्द्रमा स्थित हो। आधुनिक खगोलविदों ने समस्त आकाश को 88 तारामंडलों मे विभाजित किया है। यह विभाजन पृथ्वी के गोले पर देशों के विभाजन के समान है।

(ख) परिमाण (Magnitudes) : 2000 से अधिक वर्ष पहले एक ग्रीक खगोलविद् हिप्पारकस ने, जिसने पहला तारकीय मानचित्र बनाया, नग्न-नेत्र तारों को उनकी द्युति के आधार पर छ: परिमाण वर्गों में बाँटा था। सबसे चमकीले तारे प्रथम परिमाण वर्ग में रखे गए। उनसे क्रमश: कम चमक के अनुसार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और षष्ठ परिमाण के वर्गों में तारों को रखा गया। इस प्रकार सबसे मंद प्रकाश वाले नग्न-नेत्र तारे षष्ठ वर्ग में रखे गए। उन्नीसवी सदी मे जब दूरबीनों के साथ फोटोमीटर लगाकर द्युतियों का यथातथ मापन किया गया तो क्रमिक दो परिमाण कोटियों के बीच द्युति का अनुपात 2.512 पाया गया, अर्थात प्रथम परिमाण का तारा षष्ठ परिमाण के तारे से $(2.512)^5=100$ गुना अधिक द्युति मान हुआ। इस प्रकार के मापन के बाद यह पाया गया कि प्रथम परिमाण कोटि में रखे गए कुछ तारों की द्युति उस कोटि के औसत तारों से कहीं अधिक है। इसलिए बाद मे शून्य परिमाण और ऋणात्मक परिमाण का भी समावेश किया गया। दूसरी ओर दूरबीन सशक्त होते जाने के साथ मदतर तारे भी दीखने लगे। फलत: षष्ठ से आगे भी परिमाण पैमाने को बढाने की आवश्यकता हुई। द्युति 2.512 गुनी घटने के साथ परिमाण पैमाना एक-एक संख्या में बढ़ाया गया। 200 इंच के दूरबीन से 22वें और 23वें परिमाण कोटि के तारे भी देखे जा सकते है। आशा यह है कि 90 इंच का अंतरिक्ष दूरबीन जब 1980 के दशक मे पृथ्वी के गिर्द कक्ष मे रख दिया जायगा तो उससे 28वें परिमाण तक के तारे दिखाई देंगे, जो हमारे सूर्य से 10^{22} गुनी मंद श्रुति के होंगे।

(ग) तारों की दूरियाँ और निरपेक्ष द्युति (Distance and Absolute Brightness of Stars) : अब तक हम तारों की उस द्युति का उल्लेख कर रहे थे जो हमें दिखाई देती हैं, अर्थात हम आभासी परिमाण की बात कर रहे थे। किंतु तारे के द्युतिमान दिखाई देने के दो कारण हो सकते है: वह मूलत: द्युतिमान हो, या, निकटतर होने के कारण अधिक द्युतिमान लगता हो। सूर्य समस्त तारों से द्युतिमान इसलिए लगता है कि वह हमसे निकटतम है। वास्तव में वह अनेक उन तारों से काफी मंद द्युति का है जो दीर्घ दूरियों के कारण क्षीण दिखाई देते हैं—यथा बेटेलग्यूज। यदि सभी तारों को एक मानक दूरी पर लाएं और फिर उनकी द्युतियों की तुलना करें तो इस प्रकार प्राप्त फल को हम प्रत्येक तारे की निरपेक्ष द्युति कहते हैं।

तारों की दूरियाँ त्रिभुजन की उसी विधि से मापी जाती है जिसका अध्याय 1 के परिच्छेद 2 में वर्णन किया गया है। कुछ आकाशीय पिंडों की दूरियाँ पृष्ठ 99 में दी सारणी में दी गई हैं।

वस्तु	दूरी
एल्फा सेंटारी	4.35 प्रकाश वर्ष
सीरियस	8.48 प्रकाश वर्ष
प्लीएडीज (कृत्तिका)	410 ,,
ग्लोबूलर गुच्छ M^{13}	27000 ,,
एण्ड्रोमेडा गैलेक्सी	20 लाख ,,

किसी पिंड की आभासी द्युति दूरी के व्युत्क्रम वर्ग के अनुपात में बदलती है। इसलिए हम तारों की आभासी द्युति और दूरी के ज्ञान को मिला कर निरपेक्ष द्युति ज्ञात कर सकते हैं। इस आधार पर हम पाते है कि सीरियस और बेटेलग्यूज निरपेक्ष द्युति में हमारे सूर्य से क्रमशः 22 और 19000 गुने अधिक हैं। वे मंद इसलिए दीखते हैं कि बहुत अधिक दूरी पर हैं। तारों में निरपेक्ष द्युति की परास सूर्य की द्युति के 60000 गुनी से लेकर सूर्य की द्युति के 40000वां अंश तक है।

15.7 तारों के भौतिक गुण (Physical Properties of Stars)

(क) तारकीय स्पेक्ट्रम (Stellar Spectrum) : सूर्य के स्पेक्ट्रम की चर्चा अध्याय 7 के परिच्छेद 9 में हो चुकी है। सूर्य की ही भाँति तारागण भी सतत स्पेक्ट्रम दिखाते है जिन पर काली अवशोषण रेखाएं अध्यारोपित होती हैं। सतत स्पेक्ट्रम तारे के पृष्ठीय तल द्वारा उत्पन्न होता है। इस तल को तारे का प्रकाश-मंडल कहते हैं। वह एक कृष्णपिंड की भांति सब तरंगदैर्घ्यों का सतत विकिरण उत्सर्जित करता है। जब यह प्रकाश तारे के बाहरी शीतलतर तह से गुजरता है तो उसके द्वारा अवशोषण के कारण काली अवशोषण रेखाएं उत्पन्न होती है। इस तह को उत्क्रमण-मंडल कहते है (चित्र 15.7)। काली अवशोषण रेखाओं के तरंगदैर्घ्य उत्क्रमण-मंडल के पदार्थ के संगठन पर निर्भर होते है। इस प्रकार हम तारों के स्पेक्ट्रम में उपस्थित अणुओं और परमाणुओं की पहचान कर पाते हैं। यह पाया गया है कि तारों में वे ही 92 प्राकृतिक और लगभग एक दर्जन कृत्रिम तत्व होते हैं जिन्हें हम पृथ्वी पर पाते हैं।

सब तारों के स्पेक्ट्रम समान नहीं होते। स्पेक्ट्रम का तारों के रंग से सीधा संबंध होता है। तारकीय स्पेक्ट्रमों को
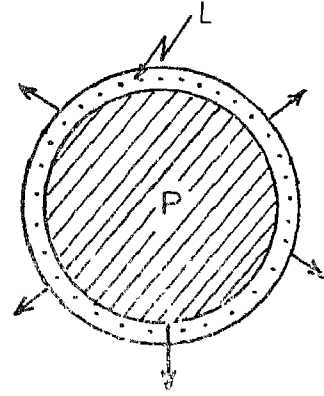
चित्र 15.7: तारकीय स्पेक्ट्रम में सतत स्पेक्ट्रम का उत्सर्जन और अवशोषण रेखाओं की उत्पत्ति

सात मुख्य कोटियों में बाँटा गया है, जिन्हें O,B,A,F,G,K और M संकेत दिए गए हैं। इनके गुण सारणी 15.2में दिए गए है। O तथा B कोटि के तारे नीले होते है और उनके स्पेक्ट्रम में हीलियम की रेखाएं आती है। A कोटि के तारे श्वेत होते है और उनके स्पेक्ट्रम में हाइड्रोजन बहुत प्रमुख है। F और G कोटि के तारे हरे और पीले रंग के होते है और वे आयनित या उदासीन धातु की रेखाएं दिखाते हैं। अंततः नारंगी रंग के K तारे और लाल रंग के M तारे अपने स्पेक्ट्रमों में टाइटेनियम-आक्साइड के आणविक अवशोषण बैंड दिखाते हैं।

(ख) तारकीय स्पेक्ट्रमों की व्याख्या (Interpretation of Stellar Spectrum) : किसी तारे का वर्ण वास्तव में उसके प्रकाशमंडल के ताप से संबंधित है। इसे हम वीन के विस्थापन नियम से समझ सकते हैं जिसके अनुसार $\lambda_m T =$ स्थिरांक है। ज्यों-ज्यों ताप T बढ़ता है, महत्तम तीव्रता का तरंगदैर्घ्य λ_m घटता है, और तदनुसार वर्ण बदलता है। उदाहरणतः यदि हम लोहे की किसी गेंद को गरम करें तो शीतल अवस्था में तो वह काली होती है, क्रमशः गरम होने पर पहले लाल होती है, फिर उसका रंग श्वेत और अंततः नीला हो जाता है। उसी प्रकार जो शीतलतम तारे हैं वे लाल या नारंगी वर्ण दिखाते है। उनसे गर्म तारे पीला या हरा,और तप्ततम तारे

श्वेत या नीला रंग दिखाते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्पेक्ट्रमी क्रम O,B,A,F,G,K,M वास्तव में तारों को घटते हुए ताप के क्रम में व्यक्त करता है।

पहले यह धारणा थी कि तारों के स्पेक्ट्रमों के अंतर उनके रासायनिक संघटन में अन्तर के कारण होंगे। उदाहरणत: O और B तारों को हीलियम तारे कहा जाता था, A तारे हाइड्रोजन से बने माने जाते थे, और F तथा G तारे धातु रचित। भारतीय वैज्ञानिक मेघनाद साहा ने 1922 में बताया कि सभी तारे एक ही रासायनिक संघटन के है और उनके स्पेक्ट्रमों के अंतर मूलत: उनके पृष्ठीय तापों में भिन्नता के कारण है। कुछ हजार डिग्री के ताप तक तो गैसें अणुओं के रूप मे रहती है, जैसा M कोटि के तारों मे है। ताप बढ़ने से पहले तो अणु उदासीन परमाणुओं के रूप मे विभक्त होते हैं, फिर और ताप बढ़ने से उनका आयनीकरण होता जाता है। धातुओं का आयनीकरण विभव अल्प होता है,इसलिए वे अपेक्षाकृत अल्प ताप पर ही आयनीकृत हो जाते है। M और K प्रकार के तारों से G और F प्रकार के तारों की ओर जाने में यही क्रम होता है। जब तक ताप 10000 केल्विन के लगभग पहुंचता है यथा A कोटि के तारों में सभी धातुएं अपने अनेक संयोजी इलेक्ट्रॉन खो बैठती है, और हाइड्रोजन भी उत्तेजित हो जाती है, जिससे बामर रेखाएं प्रबलता से स्पेक्ट्रम में आती है। इसके बाद 20000 केल्विन तक ताप बढ़ने पर हाइड्रोजन भी पूर्णत: आयनित हो जाती है और हीलियम जिसका उत्तेजन विभव अधिक है, उत्तेजित हो जाती है। इस प्रकार B तारों के स्पेक्ट्रम में उदासीन हीलियम की रेखाएँ प्रमुख होती हैं। अंतत: सबसे तप्त तारों में ताप 35000 केल्विन तक पहुंच जाता है; O तारे इस कोटि के हैं, और उनमें हीलियम भी आयनित हो जाती है। इस प्रकार साहा के तापीय आयनीकरण के सिद्धांत से हम स्पेक्ट्रम का उपयोग करके तारों के पृष्ठीय ताप ज्ञात कर सकते हैं। सारणी 15.2 के कालम 5 में कुछ तारों के ये ताप दिए गए हैं।

ताप जानने के बाद किसी भी तारे के वायुमंडल का वास्तविक रासायनिक संघटन ज्ञात करना सरल है। इस कार्य में रसैल अग्रणी रहा है; उसने तथा बाद के वैज्ञानिकों ने पाया है कि सभी तारों का संघटन मूलत: वही है जो हमारे सूर्य का है। न केवल तारे, बल्कि अंतरातारकीय आकाश मे जो गैस और धूल है वह सब भी इसी संघटन के पदार्थ से बनी है। इस विश्वीय (कास्मिक) मिश्रण में हाइड्रोजन जो सबसे हल्का तत्व है, सर्वाधिक बहुल घटक है। विश्व के समस्त परमाणुओं मे 88 प्रतिशत हाइड्रोजन परमाणु हैं, 11 8 प्रतिशत हीलियम परमाणु और शेष 0.2 प्रतिशत आबादी में बाकी सब भारी परमाणु है।

(ग) तारों की त्रिज्याए (Radii of Stars) : सबसे बड़े दूरबीन से भी तारे केवल बिंदुमय स्रोत जैसे ही लगते है। इसलिए तारों के कोणीय व्यास का माप उस प्रकार से नहीं हो सकता जिसका हमने इस अध्याय के परिच्छेद 3 में उल्लेख किया है। हमें कोई परोक्ष विधि काम मे लेनी होती है। यदि हम मान लें कि तारे कृष्ण-पिंड की भाँति प्रकाश उत्सर्जित करते है, तो उनके पृष्ठ के प्रति एकांक क्षेत्रफल से $\sigma T^4 = F$ फ्लक्स उत्सर्जित तारे होगा, जहाँ T पृष्ठीय ताप है। यदि तारे की त्रिज्या R माने तो पृष्ठीय क्षेत्रफल $4\pi R^2$ होगा, और तारे की कुल ज्योति दीप्तता $L = 4\pi R^2 \times \sigma T^4$ होगी। यदि हम तारे के निरपेक्ष परिमाण से ज्योति दीप्तता ज्ञात करें और स्पेक्ट्रम से T, तो स्पष्ट है कि तारे की त्रिज्या R ज्ञात हो जाएगी। सारणी 15.2 के कालम 8 में अनेक स्पेक्ट्रमी कोटियों के तारों की त्रिज्या भी दी गई हैं। उल्लेखनीय है कि अधिकांश तारों की त्रिज्याएँ सौर त्रिज्या से 20 गुनी से लेकर 1/10 अंश की परास मे है। कुछ अपवाद हैं : उदाहरणतया कैपेला और बेटेलब्यूज की त्रिज्याएँ क्रमश: 50 और 220 सौर त्रिज्याओं के बराबर है; इस प्रकार के तारों को साइज के कारण दैत्य और महादैत्य कहा जाता है। विपर्यास में सूर्य जैसे सामान्य तारे बौन कहलाते है। बहुत छोटे तारे भी हैं, यथा सीरियस, जिसका व्यास पृथ्वी के व्यास से केवल दो गुना है। इन बहुत छोटे तारों को श्वेत बौन कहते हैं।

(घ) तारों के द्रव्यमान (Masies of Stars): आकाशगंगा के लगभग आधे तारे युग्मतारे हैं। युग्मतारे में दो तारे होते है जो अपने द्रव्यमान केन्द्र के चहुं ओर परिक्रमण करते है। सेंटॉरी, सीरियस, स्पाइका सभी युग्मतारे हैं व तारों के द्रव्यमान के अध्ययन में युग्मतारों

का और केपलर के तृतीय नियम (समीकरण 15.2) का उपयोग होता है। सुविधा के लिए सूर्य के द्रव्यमान को हम द्रव्यमान का मात्रक मान लेते हैं, दूरी का मात्रक खगोलीय मात्रक को और समय का मात्रक एक वर्ष को। इन मात्रकों में G का मान $4\pi^2$ और समीकरण (15.2) का सरल रूप यह हो जाता है

$$M_1+M_2=\frac{a^3}{T^2} \quad ...(15.4)$$

युग्म तारे के प्रतिनिधि स्वरूप सीरियस का उदाहरण लें। इसके दो सदस्य हैं सीरियस A और सीरियस B, जिनकी मध्यमान कोणीय दूरी $\theta=7.6''=3.7\times10^{-5}$ रेडियन है। क्योंकि इस युग्मतारे की दूरी D=8.5 प्रकाश वर्ष $=5.4\times10^5$ A.U. है, इसलिये समीकरण (15.1) के उपयोग से

$a=3.7\times10^{-5}\times5.4\times10^5=20.3$ A.U.

प्रेक्षण बताते है कि सदस्य A और B अपने उभयनिष्ठ द्रव्यमान केंद्र के चहुं ओर 49.9 वर्ष में परिक्रमा करते है। अतः समीकरण (15.4) से

$$M_1+M_2=\frac{(20.3)^3}{(49.9)^2}=3.35\ M\ (\text{सूर्य})$$

यह भी पाया गया है कि द्रव्यमान केन्द्र से दो सदस्यों की दूरियों का अनुपात $\frac{a_2}{a_1}=2.35$ है। अतः

$M_1=2.35$ M (सूर्य), $M_2=1.00$ M(सूर्य)

लगभग 100 तारों के द्रव्यमान उपरोक्त विधि से ज्ञात किए गए है। सारणी 15.2 के कालम 7 मे कुछ तारों का द्रव्यमान स्पेक्ट्रमी कोटि से साथ बताया गया है। तारों के द्रव्यमान की दृष्टि से तप्ततम O तारे सूर्य से लगभग 40 गुने और शीतलतम तारे सूर्य से लगभग 1/10 अंश की परास में आते हैं।

श्वेत बौनों के अतिरिक्त लगभग सभी तारों के लिए यह पाया गया है कि उनकी ज्योति द्रव्यमान की $3\frac{1}{2}$ घात के अनुपात में होती है। उदाहरणतः सीरियस A सूर्य से 2.35 गुना द्रव्यमान में है और उसकी ज्योति 25 गुनी है, जो $(2.35)^{3.5}$ के निकट है। सौर द्रव्यमान से 40 गुने विशालतम तारे सूर्य से लगभग 10 लाख गुनी ज्योति रखते है, जबकि सबसे हलके तारे, जो द्रव्यमान में सूर्य के दशमांश हैं, ज्योति में सूर्य से लगभग 10 हजार गुने मंद है। सारणी 15.2 के कालम 9 और 10 में ये बातें व्यक्त है।

(ङ) तारों के अंतरंग (Interiors of Stars): किसी तारे के द्रव्यमान को आयतन से भाग दें तो उसका औसत घनत्व प्राप्त होता है। बौने तारों का मध्यमान घनत्व 10 किग्रा/मी³ से लेकर 50000 किग्रा/मी³ की परास में आता है, न्यूनतम मान तप्ततम O तारों के लिए और महत्तम मान शीतलतम M तारों के लिए होता है। सबसे कम घनत्व महादैत्य तारों में होता है; उदाहरणतया एंटोरस (α-स्कोर्पिआइ) का घनत्व वायु के घनत्व का लगभग 3000वाँ अंश ही है। सर्वाधिक घनत्व के तारे श्वेत बौने है; उदाहरणतया सीरियस का साथी सर्वाधिक घने तत्व प्लेटिनम के घनत्व से भी 5000 गुने घनत्व का है। प्रायः यह कहा जाता है कि ऐसे तारे से यदि माचिस की डिब्बिया मे भरकर द्रव्य लाएँ तो पृथ्वी पर उसका भार एक टन होगा।

सूर्य की भाँति ही प्रत्येक तारे में भी पृष्ठ से केन्द्र की ओर जाने पर तापमान और घनत्व बढ़ते जाते है। श्वेत तारों के केन्द्र पर घनत्व कुछ हजार किग्रा/मी³ से लेकर 10^5 किग्रा/मी³ तक होता है; न्यूनतम मान O तारों का, और क्रमशः बढते हुए मान F,G,K और M तारों के हैं। केन्द्रीय ताप प्रारंभिक O और B तारों में महत्तम (लगभग 3 करोड़ डिग्री) से लेकर M कोटि के तारों मे न्यूनतम (लगभग 1 करोड़ डिग्री) होता है।

15.8 तारों का विकास (Stellar Evolution)

हर चीज की तरह तारा भी जन्म लेता है, कुछ समय तक जीवित रहता है और फिर मर जाता है। किसी तारे की जीवनगाथा तब से प्रारंभ होती है जब अंतरातारकीय धूल का कोई बड़ा बादल स्वयं अपने ही गुरुत्वीय बल के

कारण सिकुडना प्रारंभ करता है। गणना से पता लगता है कि ऐसी घटना के लिए बादल का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से कम से कम 1000 गुना होना चाहिए। ज्यों-ज्यों बादल सिकुड़ता है, गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा की मुक्ति और संपीडन के कारण वह गर्म होता है। इस ऊर्जा का कुछ भाग विकिरित हो जाता है, जिसमे बादल और सिकुड़ता है। किसी स्तर पर यह बादल अनेक खण्डो में टूट जाता है, जो साइज में तारकीय परिमाण में होते हैं। और प्रत्येक खण्ड सिकुड़ने की क्रिया जारी रखता है। जब ये टुकड़े पर्याप्तत तप्त हो जाते हैं तो अपने पृष्ठ से प्रकाश का विकिरण करते है। इस प्रकार प्रत्येक खण्ड स्व-दीप्त बन जाता है और तारों का एक गुच्छ जन्म लेता है।

गुच्छ का प्रत्येक तारा अपना सिकुड़ना जारी रखता है, जब तक कि केन्द्रीय ताप 1 करोड डिग्री या अधिक न हो जाए। इन तापों पर ताप न्यूक्लीय क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं, जिनका उल्लेख इस अध्याय के परिच्छेद 5 में किया गया है। कार्बन-नाइट्रोजन चक्र और प्रोटान-प्रोटान श्रृंखलीय प्रक्रिया से हाइड्रोजन हीलियम मे बदलती है और इन क्रियाओं से मुक्त ऊर्जा तारे को करोड़ों वर्षो तक दीप्तिमान रखती है। बौने तारे, जो समस्त तारकीय जनसंख्या के लगभग 90% है, अभी विकास की इस अवस्था में है। यह अवस्था तब तक रहती है जब तक तारे की 10% केन्द्रीय क्रोड मे हाइड्रोजन समाप्त नहीं हो जाती। O तथा B कोटि के अधिक द्रव्यमान वाले तारे ईंधन खर्च करने की इस क्रिया में अधिक खर्चीले है, और 1 से 10 करोड़ वर्षो में पूँजी समाप्त कर देते है। सबसे कम द्रव्यमान वाले M कोटि के तारे जरा कंजूस है, वे 1000 अरब पूर्व से भी अधिक समय तक चमकीले बने रह सकते हैं। सूर्य का कुल जीवनकाल 10 अरब वर्ष आंका गया है, जिसमें से आज तक लगभग आधा समाप्त हो चुका है।

जब क्रोड से हाइड्रोजन समाप्त हो जाती है तो क्रोड सिकुड़ना आरंभ कर देती है और बाहरी खोल फैलने लगती है। इस प्रकार तारे की त्रिज्या बढ़ती है, किंतु पृष्ठीय ताप गिरता जाता है। अंततः तारा दैत्य या महादैत्य बन जाता है। सूर्य के लिए यह अवस्था आज से लगभग 5 अरब वर्ष बाद आएगी।

बौने की दशा मे तारा जितना जीता है उसकी तुलना मे दैत्य या महादैत्य अवस्था मे उसका जीवनकाल काफी कम होता है। यही कारण है कि आज हमें अधिकांश तारे बौनी अवस्था मे दिखाई देते है, और दैत्य तथा महादैत्य अवस्था तक विकसित तारे बहुत कम है। महादैत्य दशा के अंतिम भाग में तारे मे ऊर्जा का उत्पादन (क्रोड सिकुड़ने के फलस्वरूप) इतना अधिक और द्रुत होता है कि तारा विस्फोटित हो जाता है। इस विस्फोट से नोवा या अतिनोवा उत्पन्न होते हैं, जो अंतरातारकीय अंतरिक्ष मे उस तारे की ऊपरी खोल से फेकी गई धूल है। क्रोड, जो पीछे बच जाती है, तारे का शव या अवशेष है, जो तीन स्वरूप ले सकती है: (i) यदि तारे का प्रारंभिक द्रव्यमान 2 सौर द्रव्यमान या उससे कम हो तो हमे एक घना श्वेत बौना प्राप्त होता है जो 1.2 सौर द्रव्यमान से कम का होता है। न्यूक्लीय ईंधन तो इसमें बचा नहीं है, इसलिए यह क्रमशः ठंडा होता जाता है, और इसका रंग श्वेत से पीला, फिर लाल हो जाता है, और अंततः वह एक अदृश्य पिंड बन जाता है। (ii) यदि तारे का प्रारंभिक द्रव्यमान 2 से 5 सौर द्रव्यमान के बीच होता है तो अतिनोवा विस्फोट की प्रतिक्रिया से क्रोड का संपीडन इतना हो जाता है कि घनत्व न्यूक्लीय घनत्व के बराबर हो जाता है, और तारा एक न्यूट्रॉन तारा बन जाता है। न्यूट्रॉन तारे का द्रव्यमान 2 सौर द्रव्यमान से कम होता है और उसकी त्रिज्या लगभग 10 किमी मात्र होती है। न्यूट्रॉन तारों पर अत्यन्त प्रबल चुम्बकीय बल-क्षेत्र ($\sim 10^{12}$ गाउस) होते है। यदि तारे का चुम्बकीय अक्ष उसके परिभ्रमण अक्ष से कोण बनाता हो तो तारा नियत समय अंतराल से स्पंद देता है। ये स्पंद 30 मिलीसेकंड से 3 सेकंड तक के आवर्तकाल से पाए गए है। इन्हे पल्सार (स्पंद-स्रोत) कहते हैं, और पहले पल्सार की खोज रेडियोखगोलिकों ने 1967 में की थी। (iii) यदि तारे का प्रारंभिक द्रव्यमान 5 से अधिक सौर द्रव्यमान के बराबर हो तो अतिनोवा विस्फोट इतना भीषण होता है कि क्रोड अनंत सीमा तक सिकुड़ती ही जाती है, त्रिज्या निरंतर घटती है और g निरंतर बढता है, अंततः g इतना अधिक

हो जाता है कि पृष्ठ से उत्पन्न फोटॉन पलायन नहीं कर पाते हैं। दूसरी ओर कहीं और से कण या फोटॉन आ रहे हों तो उनको भी यह निगल जाता है। इसीलिए ऐसे पिंड को कृष्णछिद्र (ब्लेक होल) नाम दिया गया है। हाल ही मे साइग्नस XI नामक जिस X—किरण स्रोत की खोज हुई है उसका युग्म होना सिद्ध हो चुका है, जिसका एक अंग संभवत. कृष्णछिद्र है।

15.9 आकाशगंगा (The Milky Way)

(क) साइज और आकार (Size & shape) : हम पहले कह चुके हैं कि हमारा सौर मंडल और अधिकाँश नग्न-नेत्र तारे उस बहुत विशाल निकाय के सदस्य है जो हमें आकाशगंगा के रूप में दिखाई देता है। यह एक सपाट लैंस जैसे आकार का डिस्क है जो मध्य मे अपेक्षाकृत मोटी है और किनारों पर पतली होती जाती है। हम आकाशगंगा के मध्य तल के बहुत निकट स्थित हैं। इसीलिए यह आकाश मे हमें एक वृहद वृत्त के रूप मे दिखाई देती है। किन्तु आकाशगंगा सर्वत्र बराबर ज्योतिमान नहीं है। एक गोलार्ध में यह अधिक चौड़ी और ज्योतिमान है और दूसरे में कम। इसका कारण यह है कि सूर्य इस आकाशगंगा के केन्द्र पर नहीं है। केन्द्र सेगीटेरियस (धनुर-राशि) तारामंडल की दिशा मे है। इस गैलेक्सी (आकाशगंगा) का व्यास 10000 प्रकाश वर्ष और किनारों की ओर और भी कम (चित्र 15.8) है।

(ख) अंतरातारकीय पदार्थ (Interstellar Matter) : स्वच्छ रात्रि में हम आकाशगंगा की पट्टी में अनेक काले क्षेत्र देखते है। ये काले इसलिए नही दीखते कि यहाँ और दिशाओं की तुलना मे कम तारे है, बल्कि इसलिए कि बीच में धूल के बहुत घने बादल है जो दूरस्थ तारों को हमारी दृष्टि से छिपा लेते हैं। धूल और गैस तारों के बीच के स्थानो में होते ही हैं, कभी-कभी ये घने बादल बना लेते है, जिनमें 10^8 से 10^9 परमाणु/मी^{3} होते हैं। ये घनत्व हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल की तुलना मे तो नगण्य है, किंतु गहराई के कारण अतरातारकीय आकाश की यह गैस अपने पीछे के तारों के प्रकाश को वैसे ही मंद कर देती है जैसे पृथ्वीतल पर कोहरा। सूर्य उगते
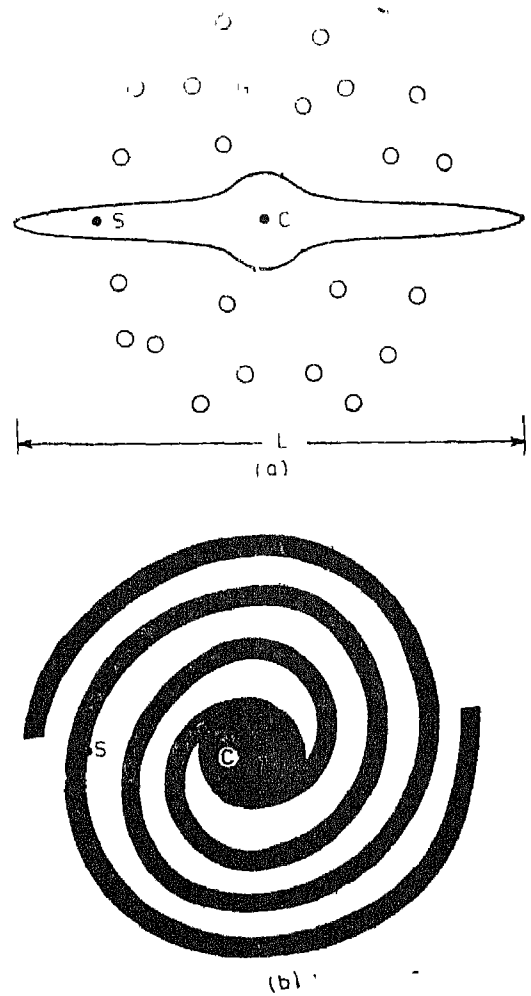
चित्र 15.8 (a) : आकाश गंगा का व्यवस्थात्मक चित्रण : क्रोड को देखते हुए।
C—गैलेक्सीय केन्द्र S—सूर्य की स्थिति
(b) आकाश गंगा का व्यवस्थात्मक चित्रण : क्रोड को देखते हुए।
C—गैलेक्सीय केन्द्र S —सूर्य की स्थिति

और डूबते समय लाल दिखाई देता है, क्योंकि उसके प्रकाश को इन समयों में वायुमण्डल में अधिक दूरी पार करनी होती है। ठीक इसी प्रकार वे तारे लालिमायुक्त हो

जाते है जिनके प्रकाश को धूल के बादलों से गुजरना होता है। कभी-कभी कोई धूल का बादल किसी गर्म तारे से इतना प्रकाशित होता है कि वह परावर्तित प्रकाश के कारण हमें दिखाई देता है; इसे दीप्त नीहारिका कहते है, यथा ओरिओन नीहारिका। अतरातारकीय पदार्थ का 90 प्रतिशत गैस है, और इसे लाक्षणिक स्पेक्ट्रम की सहायता से पहचाना जाता है, जो उत्सर्जन और अवशोषण दोनों ही स्वरूप का हो सकता है। सर्वाधिक बहुलता का तत्व हाइड्रोजन है, जिससे एक उत्सर्जन रेखा स्पेक्ट्रम के रेडियो क्षेत्र मे पैदा होती है; इसे 21 सेमी रेखा कहते है और आकाशगंगा मे हाइड्रोजन बादलों का पता लगाने में यह बहुत उपयोगी है।

(ग) तारा गुच्छ (Star Clusters) : आकाशगंगा मे तारों के अपेक्षाकृत छोटे समूह भी होते है; जिन्हे तारा-गुच्छ कहते है। दो प्रकार के तारागुच्छ ज्ञात किए गए हैं। खुले गुच्छ, जिनके श्रेष्ठ उदाहरण हैं कृत्तिका, रोहिण-शकट और पुष्य; इनमें 100 से 1000 तक तारे होते हैं जो फोटो पर अलग-अलग प्रकट होते है। गोलाकार गुच्छ, जिनका नाम उनकी गोलाकार शक्ल के कारण पड़ा है, इनसे बहुत भिन्न होते हैं। इसमे लगभग 100,000 तारे होते है, जो काफी निकटता से संकुलित (पैक) होते है। लगभग 100 गोलाकार गुच्छ हमे ज्ञात है, और ये सब सूर्य से 20000 प्रकाश वर्ष से अधिक दूरी पर हैं।

(घ) रचना (Structure) : हमारी आकाशगंगा की डिस्क सर्पिल रचना की है, जिसका एक उदाहरण एण्ड्रोमिडा गैलेक्सी है (चित्र 1 1)। सामान्य दृश्य दूर-बीन उसकी विस्तृत रचना के अध्ययन के लिए अपर्याप्त है। अंतरातारकीय धूल के कारण हम सूर्य के पड़ोस वाले कुछ भाग को ही देख पाते है। किंतु रेडियो तरगें इन धूल के बादलों को पार कर सकती हैं; इसलिए आकाश-गंगा की रचना का विस्तृत अध्ययन हाल के वर्षों में रेडियो दूरबीन द्वारा हाइड्रोजन की 21 सेमी तरंगदैर्घ्य की रेखा के प्रेक्षण से किया गया है।

हमारी गैलेक्सी (आकाशगंगा) का मध्य भाग एक अविरल गोलाभ जैसा दीखता है और अनेक प्रकार से एक विशाल गोलाकार गुच्छ से मिलता-जुलता है। इस केन्द्रीय अग के बाहर सर्पिल भुजाएं स्थित है, जो लगभग 1200 प्रकाश वर्ष चौड़ी है और जिनके बीच लगभग 500 प्रकाश वर्ष की दूरियाँ हैं। ऐसी ही एक सर्पिल भुजा ओरिओन नीहारिका से गुजरती है उस भुजा की भीतरी कोने के निकट हमारा सूर्य स्थित है। आकाशगगा के सबसे कम आयु के पिंड सर्पिल भुजाओं मे होते हैं। इसमें गैस और धूल, खुले गुच्छ और तप्त नीले तारे शामिल है। भुजाओं के बीच के क्षेत्रो मे कुछ पुराने तारे होते है। किंतु सबसे पुराने तारे गैलेक्सी के प्रभामडल में और गोलाकार गुच्छो मे होते है। चित्र 15.8 में हमारी गैलेक्सी (आकाशगंगा) के दो दृश्य दिखाए गए है, एक किनारे की दृष्टि से, दूसरा सामने की दृष्टि से।

(ङ) परिभ्रमण और द्रव्यमान (Rotation and Mass) : आकाशगंगा स्थिर नहीं है, वह अपने केन्द्र से गुजरते एक अक्ष पर घूम रही है। वास्तव में उसका आकार चपटी डिस्कनुमा होने का मूल कारण यह परि-भ्रमण है। गोलाकार गुच्छ परिभ्रमण मे पूरा भाग नहीं लेते, इसलिए वे गैलेक्सी के चारों ओर एक गोलीय प्रभा-मंडल बनाते हैं। गैलेक्सी किसी ठोस पहिए की भाँति नही घूमती, प्रत्येक तारा केन्द्र के चहुंओर एक दीर्घ वृत्त या वृत्तीय कक्ष मे वैसे ही घूमता है जैसे सूर्य के चहुंओर ग्रह। केन्द्र से निकटस्थ तारे दूरस्थ तारों की अपेक्षा तीव्रतर गति करते है। हमारा सूर्य गैलेक्सी के केन्द्र के चारों ओर 250 किमी/से चाल से चलता है। इस प्रकार गैलेक्सी के केन्द्रक की एक परिक्रमा पूरी करने मे उसे 24 करोड़ वर्ष लग जाते है, जिसे हम गैलेक्सीय वर्ष कह सकते है। यहाँ भी सूर्य की वृत्तीय गति से उत्पन्न अप-केन्द्री बल को केन्द्रक द्वारा उत्पन्न गुरुत्वीय बल के बराबर रखने से हम पाते है कि

$$M\ (\text{गैलेक्सी}) = a\,\frac{v^2}{G}$$

$a = 30{,}000$ प्रकाश वर्ष $= 3 \times 10^{20}$ मी,

$v = 2.5 \times 10^3$ मी/से,

और $G = 6.67 \times 10^{-11}$ मी० कि० से० मात्रक मे। अतः गैलेक्सी (आकाशगंगा) का द्रव्यमान $= 3 \times 10^{41}$ किग्रा $= 150 \times 10^{9}$ सौर द्रव्यमान।

अब यदि हम कल्पना करें कि आकाशगंगा सूर्य जैसे औसत तारों से बनी है, तो उसमे 150 अरब तारे होने चाहिए।

15.10 गैलेक्सियाँ और विश्व (Galaxies and the Universe)

(क) सामान्य गैलेक्सियाँ (Normal Galaxies) : विश्व रचना की बड़ी घटक गैलेक्सियाँ है, जिनमें हमारी आकाशगंगा एक है। प्रत्येक गैलेक्सी तारों का एक विशाल समुदाय है। आधुनिक शक्तिशाली दूरबीनों से लाखों गैलेक्सियों के फोटो लिए जा चुके हे उनमे से दूरतम हमसे लगभग एक अरब प्रकाश वर्ष दूर है।

सब गैलेक्सियाँ एक समान नही दीखतीं; और इस आधार पर उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। लगभग 3 प्रतिशत गैलेक्सियाँ आकार मे अनियमित होती है, इन्हे अनियमित गैलेक्सियाँ कहते है। कुछ अधिक गैलेक्सियों में सर्पिल भुजाएँ दृष्टिगोचर होती है और इन्हें सर्पिल गैलेक्सी कहते है। हमारी आकाशगंगा और एण्ड्रोमिडा गैलेक्सी इस श्रेणी के श्रेष्ठ उदाहरण है। सबसे अधिक सख्या मे दीर्घवृत्तीय गैलेक्सियाँ होती है, जो फोटो मे दीर्घवृत्तीय डिस्क जैसी दीखती हे।

(ख) रेडियो गैलेक्सियाँ और क्वासार वर्ग (Radio galaxies and Quasars) : सामान्य गैलेक्सियाँ प्रकाशीय उत्सर्जन के अतिरिक्त कुछ रेडियो विकिरण भी देती है। किन्तु कुछ रेडियो स्रोत ऐसे है जो सामान्य गैलेक्सियों से लाखों गुना अधिक विकिरण रेडियो क्षेत्र में देती है। इन्हे दो कोटियों में बाँटा जा सकता है : रेडियो गैलेक्सियाँ और क्वासार वर्ग। रेडियो गैलेक्सियाँ वे विचित्र प्रकाशीय गैलेक्सियाँ हैं जिनमें विस्फोट के प्रमाण होते है। इनका रेडियो विकिरण स्वयं गैलेक्सी से नहीं आता। सदैव ही यह पाया जाता है कि इस विचित्र गैलेक्सी के दोनों ओर सममिति से दो रेडियो स्रोत होते है, वैसे ही जैसे मनुष्य के चेहरे के दोनों ओर कान (चित्र 15.9)। विश्वास यह है कि इस केन्द्रीय गैलेक्सी मे एक विशाल विस्फोट हुआ होगा जिससे आवेशित कणों के दो बादल व्यास के दो ओर फिंके होंगे।
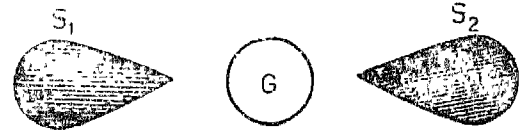
चित्र 15.9 : एक रेडियो गैलेक्सी
G—केन्द्रीय दृश्य गैलेक्सी
S_1, S_2—रेडियो स्त्रोत के दो भाग

दूसरी कोटि के प्रबल रेडियो स्रोत तारेनुमा पिंड के तुल्य माने जाते हे, इन्हे अर्धतारकीय रेडियो स्रोत (क्वासी-स्टेलर रेडियो सोर्स) अथवा क्वासार कहते है। क्वासारों मे प्रकाश के वेग के 90 प्रतिशत के बराबर प्रतिसारी त्रिज्यीय वेग पाए जाते है। फलतः उनकी स्थिति सबसे दूर जो गैलेक्सियाँ है उनसे भी बहुत परे है। ये इतनी अधिक ऊर्जा कैसे निर्गत करते है यह अभी भी रहस्य ही है। फिर भी इनकी अत्यधिक दूरियों के कारण इनका विशेष महत्व ब्रह्माण्ड के रहस्यों का पता लगाने में हैं, जैसा हम अगले चरण में देखेंगे।

(ग) फैलता हुआ विश्व (The Expanding Universe) . गैलेक्सियों का एक विशिष्ट तथ्य यह है कि वे सब हमसे दूर जाती हुई प्रकट होती है। दूर गमन की चाल v गैलेक्सी की दूरी r के अनुपात मे बढती जाती है, और हम $v = Hr$ सूत्र लिख सकते है, जिसे हबल का नियम कहते है। हबल का स्थिरांक H का मान प्रति दस लाख प्रकाश वर्ष के लिए 16000 मी/से है। हबल के नियम से ही हम रेडियो गैलेक्सी और क्वासार जैसे दूरस्थ पिंडों की दूरी ज्ञात करते हैं। हबल के नियम का आशय यह हुआ कि विश्व प्रसारित हो रहा है। इस प्रेक्षित तथ्य के आधार पर विश्व की उत्पत्ति और विकास के बारे में अनेक ब्रह्माण्डीय सिद्धांत प्रस्तुत किए गए है।

विशाल धमाका (बिग बेंग) सिद्धांत के अनुसार विश्व का समस्त द्रव्य—प्रारम्भ मे एक अत्यन्त घने और तप्त गोले के रूप में था। लगभग 2 खरब वर्ष पहले एक बहुत विशाल विस्फोट हुआ और तभी से विश्व का सारा पदार्थ निरंतर गैलेक्सियों के रूप में बाहर की ओर चलता

जा रहा है। हबल के स्थिरांक का उपयोग करने से पता लगता है कि 2 खरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर प्रसार की गति प्रकाश के वेग के बराबर हो जाती है। इस दूरी पर स्थित गैलेक्सियों का प्रकाश हमारे पास कभी नहीं पहुंच सकता है। इसलिए इस दूरी को प्रेक्षणीय विश्व का सीमान्त मानते हैं। निरंतर प्रसार से और गैलेक्सियां इस सीमान्त के पार होती जाएंगी और फलतः हमारे प्रेक्षण के लिए खो जाएंगी, साथ ही विश्व के प्रति एकांक आयतन में गैलेक्सियों की संख्या घटती जाएगी और अंत में एक रिक्त विश्व बचा रहेगा।

यदि विश्व का कुल द्रव्यमान एक सीमा से ऊपर हो तो यह संभव है कि गुरुत्वीय आकर्षण के कारण यह प्रसार-क्रिया रुक जाए और फिर संपीडन प्रारंभ हो जाए। इस प्रकार विश्व एकांतर से प्रसार और संपीडन वाला स्पंद-कारी विश्व हो सकता है। इंग्लैंड के गोल्ड और हॉइल ने एक तीसरी संभावना प्रस्तुत की है। उनका अभिग्रहण यह है कि रिक्त आकाश से नई-नई गैलेक्सियाँ निरंतर उत्पन्न हो रही हैं जो विश्व के प्रेक्षणीय भाग से दूर जाने वाली गैलेक्सियों की जगह भरती जा रही है। इस प्रकार विश्व एक अपरिवर्ती रचना में बना रहता है। इसे 'अपरि-वर्ती' अवस्था सिद्धांत कहते है।

गैलेक्सियों और क्वासार-वर्ग के विषय में उपलब्ध प्रेक्षण के आधार पर हम अभी यह तय करने में असमर्थ हैं कि तीनों में से कौन-सा सिद्धांत सही है। किन्तु एक स्वतंत्र सूचना ऐसी है जो अपरिवर्ती अवस्था-सिद्धांत के विरुद्ध है। यह पाया गया है कि कुछ मिलीमीटर तरंग-दैर्ध्य का रेडियो विकिरण आकाश के सभी भागों से आ रहा है। यह विकिरण 3 केल्विन ताप से संगत है और विश्वास यह किया जाता है कि यह उस प्रारंभिक 10^{10} केल्विन ताप के विकिरण का अवशेष है जो विशाल धमाके (बिग बैंग) के समय उपस्थित था। किंतु इस प्रश्न का कोई उत्तर अभी नहीं है कि विश्व निरंतर फैलता ही जाएगा या स्पंद करता रहेगा। विश्व के औसत घनत्व का ज्ञान पर्याप्त यथार्थता से होने पर शायद कुछ उत्तर मिल सके।

सारणी 15.1

सौर मंडल के विभिन्न पिंडों के भौतिक गुण

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
पिंड का नाम	परिक्रमा काल वर्ष में (सूर्य के चारों ओर)	दूरी A.U.R में	त्रिज्या (पृथ्वी) के मात्रक में	परिभ्रमण	द्रव्यमान M (पृथ्वी) के मात्रक में	माध्य, घनत्व किग्रा/मी³ $\times 10^{-3}$	$\frac{g}{g(\text{पृथ्वी})}$	ताप (से)	एल्बेडो	पृष्ठीय दाब (वायुमंडलों में)	वायुमंडल की रासायनिक रचना	उपग्रहों की संख्या
चंद्रमा	—	—	0.27	27.32 दिन	0.0123	3.34	0.170	110 दिन, —150 रात्रि	0.07	0	निर्वात	—
बुध	0.241	0.387	0.38	58.6 दिन	0.056	5.4	0.367	340 दिन, —120 रात्रि	0.06	0	निर्वात	0
शुक्र	0.615	0.723	0.96	243 दिन	0.815	5.1	0.986	480 पृष्ठ, 40 बादल	0.85	100	CO_2 (95%)	0
पृथ्वी	1.000	1.000	1.00	23 घं 56 मि	1.0000	5.52	1.000	45 विषुवत रेखा, —50 ध्रुव	0.45	1	N_2 (80%), O_2 (20%)	1
मंगल	1.881	1.524	0.53	24 घं 37.4 मि	0.107	3.97	0.383	30 विषुवत रेखा, —130 ध्रुव	0.15	0.006	CO_2 (97%) N_2 (3%)	2
सीरिम (महत्तम एस्टेरायड)	4.603	2.67	0.055	9 घं 5 मि	0.0001	3.34	0.18	—	0.07	0	नहीं	**
बृहस्पति	11.864	5.203	11.23	9 घं 50 मि	317.9	1.33	2.522	—140 (बादल)	0.45	—	H_2, He, CH_4, NH_3	14
शनि	29.46	9.540	9.41	10 घं 14 मि	95.2	0.70	1.074	—175 (बादल)	0.61	—	H_2, He, CH_4, NH_3	10 तथा वलय
यूरेनस	84.01	19.18	3.98	10 घं 49 मि	14.6	1.33	0.922	—220 (बादल)	0.35	—	H_2, He, CH_4	5 तथा वलय
नेपट्यून	164.1	30.07	3.88	15 घं	17.2	1.66	1.435	—230 (बादल)	0.35	—	H_2, He, CH_4	2
प्लूटो	247	39.44	0.5	6.39 दिन	0.11	4.9	4.44	— 240	0.14		?	नहीं
हेली का धूमकेतु	76.2	17.8	*		10^{18} ग्राम	10^{13}						

टिप्पणी : 1 वर्ष = 365.257 दिन, A.U. = 1.496×10^8 किमी, R (पृथ्वी) = 6378 किमी, M (पृथ्वी) = 5.977×10^{24} किग्रा g (पृथ्वी) = 98.2 मी/से²

* धूमकेतु का न्यूक्लीय अर्धव्यास 10 मी, पूंछ 10000 किमी ** कुल एस्टेराइड > 1600

सारणी 15 2

भिन्न-भिन्न कोटियों के तारों के गुण

1	2	3	4	5	6	7	8	9
स्पेक्ट्रमी कोटि	वर्ण	उदाहरण	स्पेक्ट्रम का वर्णन	ताप	$\frac{M}{M(\text{सूर्य})}$	$\frac{R}{R(\text{सूर्य})}$	विशुद्ध परिमाण (द्युति) Mv	$\frac{L}{L(\text{सूर्य})}$
O	वहुत नीला	ओरियोनिस	आयनित हीलियम की रेखाएँ	35000	40	20	—6.0	10^5
B	नीला	स्पाइस (चित्रा)	उदासीन हीलियम की रेखाएँ	20000	15	7	—3.1	10^4
A	श्वेत	सीरियस (व्याध)	हाइड्रोजन की बामर रेखाएँ	9500	2.3	1.8	1.4	25
F	हरा	प्रोसीएन	हाइड्रोजन तथा आयनित धातुओं की रेखाएँ	7000	1.4	1.2	2.7	3
G	पीत	सूर्य	आयनित और उदासीन धातुओं की रेखाएँ	5800	1.0	1.0	4.8	1
K	नारंगी	$\in$ ऐरीडानी	उदासीन धातुओं की रेखाएँ आणविक बैण्ड	4500	0.7	0.8	6.1	0.4
M	लाल	क्रूगर 60	TiO के साँख्यक बैण्ड	3500	0.3	0.4	11.8	1/40
M	लाल	बीटेलग्यूज (आर्द्रा)	TiO बैण्ड	3000	20	220	—6	5×10^4
A	श्वेत	सीरियस	हाइड्रोजन की चौड़ी लाइनें	9500	1.0	1/50	11.5	1/200

प्रश्न-अभ्यास

15.1 (क) विश्व के विभिन्न अंगों की सूची बनाइए ।

(ख) खगोल विज्ञान और भौतिकी जैसे अन्य विज्ञानों मे क्या भिन्नता है ?

15.2 (क) खगोलीय प्रेक्षणों में काम आने वाली विभिन्न दूरबीनों का वर्णन कीजिए और उनकी परस्पर तुलना कीजिए ।

(ख) हमारे नेत्र के लैंस का व्यास 8 मिमी है । सबसे क्षीण नग्न-नेत्र तारे की तुलना मे 120 सेमी द्वारक के दूरबीन से हम कितना क्षीणतर तारा देख सकते है ?

15.3 (क) मध्यमान वियुति पर मंगल के उपग्रहों के फोबोस की दूरी 25″ और डीमोस की 62″ है, जबकि मंगल की पृथ्वी से दूरी 0.524 A.U. है । इन दो उपग्रहों की मंगल से दूरी A.U. में तथा मीटर में परिकलित कीजिए ।

(ख) यदि फोबोस का परिक्रमण-काल 0.319 दिन और डीमोस का 0.262 दिन है, तो समीकरण (15.3) के उपयोग से मंगल का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान के मात्रक मे ज्ञात कीजिए, जो 5.977×10^{24} किग्रा है ।

15.4 (क) समझाइए कि सौरमंडल के कुछ ग्रहों पर वायुमंडल क्यों नही है, जबकि औरो पर है ।

(ख) सौरमंडल के विभिन्न ग्रहों पर जीवन की संभावनाओं का विश्लेषण कीजिए ।

15.5 चंद्रमा का परिक्रमा-काल 27.32 दिन है और पृथ्वी से उसकी मध्यमान दूरी 384400 किमी है । समीकरण 15.2 के उपयोग से पृथ्वी और चंद्रमा के द्रव्यमानों का योग ज्ञात कीजिए । यदि यह ज्ञात है कि पृथ्वी-चंद्रमा निकाय का द्रव्यमान-केन्द्र पृथ्वी के केन्द्र से 4.75×10^{6} मी दूर है, तो पृथ्वी तथा चंद्रमा के अलग-अलग द्रव्यमान निकालिए ।

15.6 (क) बृहस्पति सूर्य से 5.2 A.U. दूर है । इस दूरी पर सौर स्थिरांक का परिकलन कीजिए । स्टीफान नियम का उपयोग करके बृहस्पति पर स्थित कृष्णपिंड का ताप ज्ञात कीजिए ।

(ख) सूर्य ऊर्जा कैसे उत्पन्न करता है, समझाइए ।

15.7 (क) सारणी 1 के कालम 4 और 6 में दिए गए न्यासों से कालम 7 और 8 में दिए गए माध्य घनत्व और गुरुत्वीय त्वरण के मानों की पुष्टि कीजिए ।

(ख) एक आदमी का वजन पृथ्वी पर 70 किग्रा है । सौर मंडल के विभिन्न पिंडों पर उसका वजन परिकलित कीजिए ।

15.8 सारणी 2 के न्यासों से विभिन्न प्रकार के तारों के माध्य घनत्व और उनके पृष्ठों पर g के मान ज्ञात कीजिए । प्रश्न 7 (ख) के आदमी का सूर्य के पृष्ठ पर भार क्या होगा ?

15.9 (क) प्रोसिओन के दो अंगों की दूरी 4.5″ है और आवर्तकाल 40.6 वर्ष है । यदि यह युग्मतारा 11.3 प्रकाश वर्ष दूरी पर है, तो इस युग्म का कुल द्रव्यमान सौर मात्रक में ज्ञात कीजिए । यदि दो अंगों के द्रव्यमान 3 : 1 अनुपात में हो, तो प्रत्येक का द्रव्यमान निकालिए ।

(ख) यदि प्रोसिओन के दोनों अगों के स्पेक्ट्रम समान हो, किंतु एक की द्युति दूसरे से 15000 गुनी हो, तो उनकी त्रिज्याओ का अनुपात ज्ञात कीजिए।

15.10 एक तारे की सम्पूर्ण जीवनगाथा बतलाइए।

15.11 आकाशगंगा के स्वरूप तथा रचना का वर्णन कीजिए।

15.12 (क) सामान्य गैलेक्सी का वर्णन कीजिए और समझाइए कि रेडियो गैलेक्सी और क्वासर इससे किन अर्थों मे भिन्न हैं ?

(ख) विश्व की उत्पत्ति और विकास के बारे में जो तीन मुख्य ब्रह्माण्डीय सिद्धात है उनका संक्षिप्त विवेचन कीजिए।